गणित जगत की सैर

अंक गणित *

H M
121
25544

डॉ ब्रह्मदेव शर्मा

गणित जगत की सैर

गणित जगत की सैर

डॉ० ब्रह्मदेव शर्मा
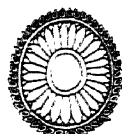
थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड, प्रकाशन विभाग
नयी दिल्ली

आदरणीय प्रोफ़ेसर नारायणसिंह

को

सादर समर्पित

प्राक्कथन

स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय साधारण व्यक्ति ने भावी जीवन का एक स्वर्णिम रूप अपनी कल्पना में सँजोया था। इस नव विहान में बौद्धिक और सांस्कृतिक उद्बोध की निस्सीम संभावनाएँ निहित थीं। आर्थिक क्षेत्र में भी तीव्रतर प्रगति की आशा थी।

परंतु यह कल्पना-लोक साकार न हो सका। उसकी आस्था के विपरीत हमारा समाज लगभग दो परस्पर अपरिचित समाजों में विभाजित होता जा रहा है। पहला है, जनसाधारण के विराट् समुदाय का तथा-कथित परम्परागत समाज; और दूसरा है, अल्प-संख्यक उच्च वर्गों का तथा-कथित आधुनिक समाज। इस समाज का जनसाधारण की परम्पराओं, उसकी समस्याओं, जनजीवन की आकांक्षाओं एवं राष्ट्रीय जीवन के बुनियादी प्रश्नों के सही ज्ञान व उचित दिशा में उनके निराकरण के हित प्रयासों से कोई ख़ास वास्ता नहीं है। यह समाज, जिस पर भारतीय जीवन से अधिक पश्चिमी जीवन, पश्चिमी दृष्टि-कोण का अधिक गहरा और व्यापक प्रभाव है, अपनी संकुचित मान्यताओं, अपने स्वार्थपूर्ण आदर्शों में जीता है तथा पश्चिमी जीवन-रस से सिंचित अपनी मान्यताओं को जातीय जन-जीवन पर आरोपित कर समस्त समस्याओं का स्थायी उत्तर पा लेने का दावा भी करता है। इन्हें स्वीकार कर सकना जन-साधारण के लिए न तो संभव है, न उचित। यह द्वैधात्मक सामाजिक संरचना दिनोंदिन अधिक पुष्ट और अधिक दृढ़ होकर समाज के लिए चिन्ता का कारण बन गई है।

दुर्भाग्य से हमारी शिक्षा भी इस द्वैध स्थिति को समाप्त करने में सहायक न हो उसे और भी मज़बूत कर रही है। हमारे विद्यामंदिर विभिन्न प्रदेशों में विशाल जनसाधारण के मध्य उनकी समस्याओं से अनभिज्ञ नितांत एकाकी जीवन-यापन कर रहे हैं। विश्वविद्या-लयीय नगरों में भी किसी उच्च सांस्कृतिक या बौद्धिक जीवन के वातावरण का उद्भव प्रतीत नहीं हो रहा है। इन मंदिरों की ज्ञान-रश्मियाँ अपने चारों ओर के विशाल प्रदेश को आलोकित न कर, अपनी स्वयं की बनाई हुई अभेद्य दीवारों से टकरा कर नष्ट हो जाती हैं।

यह अभेद्य दीवार है भाषा की, मान्यताओं की और जीवन दृष्टि की। यही दीवार समाज के द्वैधात्मक रूप को संपोषित कर रही है। जब तक यह दीवार ढह नहीं जाती, जब तक सांस्कृतिक और बौद्धिक जीवन में समाज के सभी अंगों में निर्बाध आदान-प्रदान प्रारंभ नहीं हो जाता, राष्ट्रीय जीवन के उत्थान के पुण्य कार्य में पूरा जन-जीवन भागीदार नहीं हो सकता।

और, जब तक प्रत्यक व्यक्ति आगे बढ़ने का प्रयास नहीं करता, देश आगे नहीं बढ़ सकता।

इस दिशा में प्रयास करना सभी का कर्त्तव्य है। जहाँ प्रयास करनेवाले अनेक हों, फिर चाहे प्रत्येक व्यक्ति थोड़ा प्रयास ही क्यों न करे, वह थोड़ा-थोड़ा प्रयास भी एक बड़ी शक्ति का रूप धारण कर सकता है। व्यक्तिगत अल्प प्रयास, उस दशा में अल्प नहीं रह जाता। जन-जीवन की भावनाओं और समस्याओं को अभिव्यक्ति देना और उसके अनुरूप सामाजिक प्रक्रियाओं को दिशा देना एक पहलू है तथा आधुनिक जगत का ज्ञान जन-साधारण तक पहुँचाना इस वैचारिक आदान-प्रदान का दूसरा पहलू। उसी एक पक्ष के एक अत्यल्प भाग को पूरा करने का प्रयास मात्र है 'गणित जगत की सैर'।

विश्व में आज विज्ञान इतनी तेज़ी से उन्नति कर रहा है कि उसकी कल्पना करना भी कठिन है। इस उन्नति के पीछे यदि सबसे बड़ा योगदान किसी एक ज्ञान-राशि का है तो वह निस्संदेह 'गणित' है। आए दिन समाचार-पत्रों में हम नील आकाश में उपग्रहों के उड़ने के समाचार पढ़ते हैं और वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य निःशंक अंतरिक्ष में विचरण कर सकेगा। यह उन्नति गणित की एक अन्यतम उपलब्धि मानी जाती है। एक छोटी-से-छोटी त्रुटि, यहाँ तक कि एक लक्षांश की त्रुटि भी, चाहे उपग्रह को छोड़ने की दिशा में हो, चाहे उसकी उड़ान के विभिन्न चरणों में निश्चित मात्रा में शक्ति देने के संबंध में, उसे कहीं का कहीं फेंक सकती है। उसका दिशा-निर्देशन, गति इत्यादि सभी कुछ शुद्धतम परिगणना पर निर्भर है। साथ ही ग्रहों तथा तारा पिण्डों का स्थान निश्चय करना, उनकी आकर्षण शक्ति का ठीक-ठीक पता लगाना इत्यादि आवश्यक जानकारी भी गणितीय सिद्धांतों के उचित प्रयोग पर आश्रित है।

इस शताब्दी में गणित की अनेक निराली उपलब्धियाँ हैं जिन्होंने उच्चगणित से अनभिज्ञ साधारण लोगों का भी ध्यान आकृष्ट किया और जिनके फलस्वरूप गणित उनकी प्रशंसा का पात्र बना। इस श्रेणी की प्रथम उपलब्धि थी नेप्चून ग्रह के अस्तित्व की गणितीय तर्क के आधार पर स्थापना और उसके बहुत समय बाद दूरबीन से उसे देखकर गणितीय तर्क की संपुष्टि करना। दूसरी उपलब्धि थी प्रकाश-रश्मि का आकाश के पिण्डों के पास से गुज़रते समय उनके गुरुत्वाकर्षण से उनकी ओर झुक जाने की सैद्धांतिक रूप से स्थापना और उसके बाद वैज्ञानिकों द्वारा प्रत्यक्ष परीक्षण से संपुष्टि।

आज गणित की प्रगति की संभावनाओं अथवा सीमाओं के संबंध में दो मत नहीं हैं। न्यूटन के शब्दों में 'अभी हम समुद्र के किनारे पड़े कंकड़-पत्थर ही बीन रहे हैं, अथाह जलराशि का मंथन तो शेष ही है।' आज पश्चिम में जब दो देशों की शिक्षा-शक्ति की तुलना की जाती है तब गणित की शिक्षा का मूर्धन्य स्थान होता है। अमरीका में गणित के स्नातकों का रूस की अपेक्षा कम होना उसके लिए एक चिन्ता का विषय बन गया है। वैज्ञानिक प्रगति अब गणितीय प्रगति का पर्याय बन गया है।

जहाँ गणित का व्यावहारिक महत्त्व इतना अधिक हो गया है, उसके अध्ययन के लिए विज्ञान की अन्य शाखाओं की भाँति कोई बहुत बड़ी आवश्यकताएँ सामने नहीं आ रही हैं। पुस्तकों और शोध-पत्रिकाओं के अलावा और किसी सामग्री की आवश्यकता

नहीं। कुछ मेधावी व्यक्तियों को तो उनकी भी आवश्यकता नहीं, वे अपना मार्ग स्वयं ही निकाल सकते हैं। इस शताब्दी के सबसे बड़े गणितशास्त्री रामानुजन धनाभाव के कारण कालेज की शिक्षा भी नहीं पा सके थे। परंतु हाई स्कूल गणित की बुनियाद पर उन्होंने एक गगनचुंबी अट्टालिका बनाई। इस उपलब्धि ने विश्व के प्रख्यात गणितज्ञों को भी चकित कर दिया। गणित जगत का मार्ग इतना सुगम है, पर फिर भी आधुनिक गणित में इने-गिने व्यक्तियों को छोड़ कर एक सामूहिक अथवा राष्ट्रीय रूप से भारत का कोई उल्लेखनीय प्रदेय नहीं है।

मेधा और जिज्ञासा, काग़ज़ और पेंसिल, यदि गणितीय अन्वेषण की यही आवश्यक सामग्री है तो कोई कारण नहीं कि भारतीय वैज्ञानिक संसार में कम-से-कम इस क्षेत्र में ऐसा योगदान न दे सकें, जिस पर भारत गर्व कर सके। मेधा समाज के सभी वर्गों में और देश के सभी कोनों में बराबर रूप से बिखरी पड़ी है। शिक्षा का प्रसार भी अब तीव्र गति से हो रहा है। इस स्थिति में दो आवश्यक बातें हैं। प्रथम, ज्ञान सरोवर और उसके आकांक्षी व्यक्तियों के बीच बनी भाषा की अभेद्य दीवार को तोड़ना है। दूसरे, मेधावी व्यक्तियों में सहज जिज्ञासा का बीज बोना है। रामानुजन के समान न जाने कितने मेधावी बालक गाँवों में हल चला रहे होंगे और न जाने कितने अपनी प्रतिभा के प्रस्फुटन के लिए समुचित क्षेत्र न पाकर इतर कार्यों में उसका अपव्यय कर रहे होंगे।

गणित का इतिहास भी इसका साक्षी है। छोटी-छोटी घटनाओं ने पश्चिम में न जाने कितने मेधावी व्यक्तियों की जिज्ञासा को जाग्रत कर उनके जीवन का मार्ग ही बदल दिया। यूरोप के प्रसिद्ध गणितज्ञ साइमन पाँज़ाँ को उनके माता-पिता ने एक वकील से लेकर एक चिकित्सक तक, सब कुछ बनाने की कोशिश की पर किसी ओर भी उनकी अभिरुचि जाग्रत नहीं हुई। एक बार मार्ग में उन्हें एक साधारण-सी समस्या मिली। समस्या थी, ८ सेर दूध को बराबर-बराबर दो भागों में बाँटना। परंतु इसके करने के लिए तराज़ू नहीं था, केवल तीन पात्र थे, जिनमें क्रमशः ८ सेर, ५ सेर और ३ सेर दूध आ सकता था। उन्होंने कुछ समय में ही यह समस्या सुलझा ली। समस्या तो छोटी-सी थी, पर उसने उन्हें अपने आगामी जीवन की सही दिशा का आभास करा दिया। गणित में ही उनकी सहज रुचि है, इसका उन्हें एकाएक ज्ञान हुआ और वह उसी ओर मुड़ कर अपने समय के बड़े गणितज्ञों की श्रेणी में पहुँच गए।

इस प्रकार की समस्याएँ भारत के भी सभी प्रदेशों में, सभी कोनों में छोटे-छोटे विद्यार्थियों को विनोद प्रदान करती रहती हैं। पर अपने ज्ञान के सब दरवाज़े बंद पाकर उनके जिज्ञासु जीवन का आदि और अंत उन्हीं समस्याओं में हो जाता है—जीवन भर अपने सीमित क्षेत्र में पटुता से पहेलियाँ बुझाने तक ही सीमित।

समस्या यहीं तक सीमित नहीं है। ये मेधावी व्यक्ति न केवल अपनी छोटी परिधि के बाहर देखने में समर्थ हैं, वरन् उन्हें इन छोटी पहेलियों का गणित से कोई सीधा संबंध भी नहीं प्रतीत होता है। साधारणतः गणित के विषय में भावना यही है कि जोड़, बाक़ी, गुणा, भाग तथा इन्हीं पर आधारित कुछ अन्य साधारण प्रश्नों से आगे गणित कुछ है ही नहीं। जब लेखक ने कालेज में गणित को अध्ययन का विषय चुना तब यह अनुमान करना

कठिन था कि आगे कौन-सा अज्ञात ज्ञान-सरोवर इस क्षेत्र में है। न जाने कितने मित्रों ने प्रश्न किया कि 'क्या पढ़ते हो गणित में'?

इस संबंध में एक अन्य धारणा भी साधारणत: पाई जाती है कि गणित एक अत्यंत नीरस विषय है। इसका मूल कारण गणित के विषय में साधारण जन में समुचित और यथार्थ ज्ञान न होना ही है। इसके परिणामस्वरूप विश्वविद्यालयों में केवल वे ही लोग गणित लेते हैं, जो या तो गणित में इतनी अधिक रुचि रखते हैं कि वे अन्य कोई विषय लेने की सोच ही नहीं सकते अथवा फिर जिन्हें अन्य विषयों के पढ़ने का अवसर नहीं मिलता। बहुत से मेधावी विद्यार्थी अज्ञान के कारण दूसरे विषयों की ओर चले जाते हैं।

यह आश्चर्य की बात है कि गणित के समान रोचक विषय के बारे में इतनी भ्रांतिपूर्ण धारणाएँ हों। इसके लिए सबसे अधिक उत्तरदायी है गणित के पढ़ाने का ढंग। गणित में सर्व साधारण के लिए पुस्तकों का अभाव इसका दूसरा कारण है। इधर विदेशों में गणित के व्यावहारिक महत्त्व को देख कर कुछ उत्सुकता बढ़ी है और उस माँग को पूरा करने के लिए अनेक पुस्तकें अंग्रेज़ी तथा अन्य विदेशी भाषाओं में प्रकाशित हुई हैं। भारतीय भाषाओं में इनका सर्वथा अभाव है। इस अभाव की पूर्त्ति में समय लगेगा। अनेक मूर्धन्य विद्वानों का प्रयास भी इस आवश्यकता को आंशिक रूप से ही पूरा कर सकेगा क्योंकि आवश्यकता और उपलब्धि के बीच की खाई बहुत ही गहरी है। यह निर्विवाद है कि जन साधारण के लिए लिखना विद्वानों का ही काम है। तब भी लेखक ने यह दुस्साहस इसलिए किया है कि यदि इस नयी इमारत में यह पुस्तक एक ऐसी ईंट का काम भी कर सके जो बाद को निकाल फेंकी जाए तो भी बड़े गर्व की बात ही होगी। हो सकता है कि सफलता विशेष न मिले पर यदि उसके असफल प्रयासों पर सफलता के चरण आगे बढ़े तो वह असफलता ही सबसे बड़ी सफलता होगी। इसी भावना से यह लघु-प्रयास किया जा रहा है।

मेरी इच्छा गणित के प्रत्येक पहलू पर एक पुस्तक प्रस्तुत करने की है: अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति, ज्योतिष, सांख्यिकी तथा आधुनिक गणित। पाठकों का कैसा स्वागत होगा इस प्रयास के लिए, उसी पर आगे क्षेत्र विस्तार का प्रश्न निर्भर होगा। उसी के ऊपर इन छ: पुस्तकों की योजना भी अवलंबित होगी।

इस पुस्तक में हम गणित के मूलभूत और प्राचीनतम क्षेत्र अंकगणित का दिग्दर्शन करेंगे। इसका आयोजन बारह अध्यायों में किया गया है। प्रथम अध्याय में संपूर्ण गणित की भूमिका देने का प्रयास किया गया है। उसमें गणित की परिभाषा, उसका सार तथा उसकी प्रकृति पर सामान्य चर्चा है। इस प्रारंभिक अध्याय के बाद हम विषय का विवेचन प्रारंभ करते हैं। सर्वप्रथम अध्याय २ में मनुष्य की विचार प्रक्रिया में संख्या संबंधी ज्ञान के उद्गम पर विचार किया गया है। पशु-पक्षियों में इस ज्ञान के कुछ आश्चर्यजनक उदाहरण मिलते हैं और यह कहा जा सकता है कि आदिम अवस्था में मनुष्य उनसे बहुत आगे नहीं था। अनेक भाषाओं के संख्या शब्दों से भी यह स्पष्ट है। इस अति-क्षीण आधार से प्रारंभ कर संख्या की व्यापक-परिकल्पना तक पहुँचने की कहानी मानव-बुद्धि की विलक्षण शक्ति की परिचायक है।

आगामी अध्याय में संख्या के ज्ञान का अंक-संकेतों द्वारा व्यक्त करने की दिशा में प्रयासों का वर्णन है। लोगों ने विभिन्न देशों में भिन्न परिपाटियाँ अपनाईं परंतु सभी जगह एक निश्चित सीमा तक जाकर यह प्रगति अवरुद्ध हो गई। गणित में, अथवा यों कहिए कि मानव सभ्यता के इतिहास में ही, शून्य का आविष्कार एक ऐसा मोड़ कहा जा सकता है, जिसने सभ्यता की प्रगति की संभावनाओं को निस्सीम बना दिया। भारत में शून्य का प्रचलन कब हुआ, यह नहीं मालूम, पर दशमलव प्रणाली भारत की विश्व को सबसे बड़ी देन है, इसमें संदेह नहीं। इस अध्याय में इस प्रणाली के प्रादुर्भाव और विकास पर भी प्रकाश डाला गया है।

संख्या-कल्पना के विस्तार एवं गणित के अन्य गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करने के पूर्व पूर्णांकों पर ही आधारित चार मूलभूत गणितीय प्रक्रियायों—जोड़ना, घटाना, गुणा करना और भाग देना—को अध्याय चार में स्पष्ट किया गया है। दशमलव प्रणाली के अलावा अन्य प्रणालियाँ, यथा द्वि-आधारी तथा द्वादश-आधारी प्रणालियाँ, भी संभव हैं। आगामी अध्याय में इन सभी का तुलनात्मक विवेचन है। इस प्रकार इन अध्यायों में हमें प्रचलित संख्या एवं अंक-संकेतों के विकास-क्रम से परिचय प्राप्त होता है। तत्पश्चात् हम संख्या-संकल्पना के विस्तार का सूत्र ग्रहण करते हैं। जोड़ना, घटाना, गुणा और भाग इन्हीं क्रियाओं को सभी संभव स्थितियों में सार्थक करने के रूप में संख्या-संकल्पना का विस्तार आगामी अध्यायों में विवेचित है।

प्रकृति जगत में मनुष्य का प्रथम परिचय पूर्णांकों से हुआ और उन्हें प्राकृतिक अंकों की संज्ञा दी गई। उसके बाद भिन्न संख्याएँ आईं। बहुत समय तक ऋणात्मक संख्या का कोई अर्थ ही नहीं था। ऋणात्मक संख्या का मनुष्य के बौद्धिक विकास में एक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह ऐसी संख्या की कल्पना थी जिसका उस समय स्थूल जगत से कोई सीधा संबंध नहीं प्रतीत होता है। यहाँ स्थूल जगत के आधार को छोड़ कर बुद्धि विचार जगत के सूक्ष्म आधार पर अग्रसर हुई। इस प्रकार कल्पना ने मूर्त्त से अमूर्त्त को ग्रहण करना सीखा। 'ऋण' शब्द भी इसी का द्योतक है कि पहले इसकी विचारणा लेन-देन व्यापार में प्रारंभ हुई होगी। कालांतर में ऋणात्मक संख्याएँ साधारण रूप में कार्य में आने लगीं और वे संख्या समुदाय का अभिन्न अंग हो गईं। भिन्न और ऋणात्मक संख्याओं को मिला कर परिमेय संख्या-परिवार की स्थापना इस अध्याय में की गई है। आगामी अध्याय में परिमेय संख्या-परिवार का आतिथ्य स्वीकार कर उनकी कुछ अन्य गतिविधियों का समीप से निरीक्षण किया गया है।

पर धीरे-धीरे मालूम हुआ कि कुछ संख्याएँ तब भी ऐसी बच रहती हैं जिनको भिन्नों के रूप में नहीं लिखा जा सकता है। यदि एक समकोणीय त्रिकोण की दो भुजाएँ एक-एक इंच की हों तो तीसरी भुजा कितनी होगी यह एक जटिल प्रश्न है और इसका उत्तर पाने में बहुत समय लगा। इसी समस्या के समाधान के प्रयास में अपरिमेय संख्याओं का उदय और विकास हुआ। अन्य संख्याओं, जैसे बीजीय और अबीजीय (बीजातीत), का आविर्भाव भी एक दिलचस्प कहानी है जिनका विवेचन कर अध्याय ९ में वास्तविक संख्या-क्रम के पूर्ण विकसित रूप से हमें परिचय प्राप्त हो सकता है इस अध्याय में

अधिकल्पित संख्याओं की ओर संकेत मात्र कर थोड़ा-सा परिचय करवा दिया गया; उनका विस्तृत विवेचन अलबत्ता संभव नहीं हो सका।

भारत में बहुत प्राचीन काल से ही बड़ी संख्याओं का अच्छा ज्ञान था। बड़ी संख्याओं से संबंधित कई मनोरंजक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। उपनिषद् काल में 'अनंत' के यथार्थ रूप से पूर्ण परिचय होना उनके इस कथन से कि 'पूर्ण में से पूर्ण निकालने पर पूर्ण बच जाता है' पुष्ट होता है। तत्कालीन पश्चिमी विचारणा में एक हज़ार से बड़ी संख्या के लिए संख्या-संकेत नहीं थे। गणित में बृहत् संख्या विषयक ज्ञान अब बहुत आगे बढ़ चुका है और उनका एक अपना ही निराला गणित है। जैसे कि अनंत में कुछ भी जोड़ने से, कुछ भी घटाने से या किसी अंक से गुणा करने पर भी निर्गुण ब्रह्म की भाँति कोई विकार नहीं उत्पन्न होता है। इन्हीं समस्याओं का परिचय अध्याय १० में कराने का प्रयास है।

अंतिम दो अध्यायों में से प्रथम अध्याय का उद्देश्य पाठक के समक्ष संख्या-सिद्धांत के कुछ सरल प्रमेयों को प्रस्तुत करना है। इस परिचय से यदि कुछ और जानने के लिए जिज्ञासा उत्पन्न होती है तो वह तद्विषयक पुस्तकों के सहारे इस क्षेत्र में आगे बढ़ सकता है। अंतिम अध्याय में हम कुछ सरल प्रश्न और पहेलियाँ प्रस्तुत करके पाठक को गणितीय उपवन के प्रथम सोपान पर स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था कर आगामी पुस्तक में उसके साथ अन्य प्रदेशों का विचरण प्रारंभ करने तक के लिए अवकाश ग्रहण करते हैं।

नई दिल्ली,
जन्माष्टमी, वि० सं० २०१४

डॉ० ब्रह्मदेव शर्मा
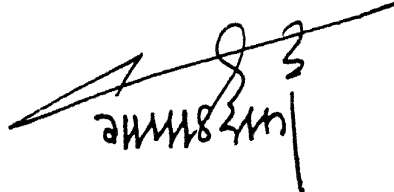
दो शब्द

हिन्दी के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा मंत्रालय के तत्त्वावधान में पुस्तकों के प्रकाशन की विभिन्न योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं। हिन्दी में अभी तक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध नहीं है, इसलिए ऐसे साहित्य के प्रकाशन को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह तो आवश्यक है ही कि ऐसी पुस्तकें उच्च कोटि की हों, किंतु यह भी ज़रूरी है कि वे अधिक महँगी न हों ताकि सामान्य हिन्दी पाठक उन्हें ख़रीदकर पढ़ सकें। इन उद्देश्यों को सामने रखते हुए जो योजनाएँ बनाई गई हैं, उनमें से एक योजना प्रकाशकों के सहयोग से पुस्तकें प्रकाशित करने की है। इस योजना के अधीन भारत सरकार प्रकाशित पुस्तकों की निश्चित संख्या में प्रतियाँ ख़रीदकर उन्हें मदद पहुँचाती है।

प्रस्तुत पुस्तक इसी योजना के अंतर्गत प्रकाशित की जा रही है। इसके अनुवाद और कॉपी राइट इत्यादि की व्यवस्था प्रकाशक ने स्वयं की है तथा इसमें शिक्षा-मंत्रालय द्वारा स्वीकृत शब्दावली का उपयोग किया गया है।

हमें विश्वास है कि शासन और प्रकाशकों के सहयोग से प्रकाशित साहित्य हिन्दी को समृद्ध बनाने में सहायक सिद्ध होगा और साथ ही इसके द्वारा ज्ञान-विज्ञान से संबंधित अधिकाधिक पुस्तकें हिन्दी के पाठकों को उपलब्ध हो सकेंगी।

आशा है यह योजना सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय होगी।

(गोपाल शर्मा)
निदेशक

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

विषय-सूची

अध्याय १

विषय प्रवेश

लगभग २२५० वर्ष पूर्व।

भूमध्य सागर में साइरेक्यूज़ का सुविस्तृत समुद्र तट।

हेमंत ऋतु।

दोपहर के बाद क्षितिज की ओर ढलता हुआ सूर्य।

सुनहली सांध्य बेला में तट पर एक वृद्ध अपने विचारों में मग्न बैठा था। उसने सामने रेत पर कुछ आड़ी-तिरछी रेखाएँ बना रखी थीं। वह उन्हीं की ओर एक टक देख रहा था मानो उन्हीं में पूरा विश्व व्याप्त हो। कभी-कभी उसकी दाहिनी भुजा यंत्रवत् उठ जाती और उसकी तर्जनी किसी रेखा को रेत में और भी गहरा कर देती थी।

सहसा उस प्रशांत वातावरण को भेदता हुआ कहीं दूर पदचाप हुआ। वह धीरे-धीरे तीव्रतर होता गया। पर वृद्ध का ध्यान न टूटा। कुछ समय में एक मानव आकृति समीप आकर रुक गई। उसकी कर्कश आवाज़ भी वृद्ध की समाधि को भंग न कर सकी। मानव आकृति उसके और भी समीप आ गई। उसकी छाया वृद्ध एवं उसके सामने खिंची रेखाओं पर पड़ी।

बिना दृष्टि उठाए ही वृद्ध ने दृढ़ स्वर में कहा—'कौन हो तुम? सूर्य और मेरे बीच से हट जाओ।'

कोई उत्तर न मिला। परंतु एक तलवार उठी और उस योगी की ऐहिक लीला समाप्त हो गई। समुद्र में भी एक लहर उठी, आर्तनाद करती हुई तट से टकराई और उसी जलराशि में विलीन हो गई। सांध्य रश्मि अगाध सागर के प्रशांत वक्ष पर अठखेलियाँ करने लगी।

वह तलवार थी विजयी रोमी सेना के एक सैनिक की। और वह वृद्ध था विश्व का महानतम गणितज्ञ साइरेक्यूज़ निवासी आर्कमेडीज़।

और वह लीन था गणित के विचार जगत् में।

* * * *

कौन-सा रहस्य है इस गणित के विचार जगत् में जो मानव को आत्मसात् कर लेता है? हम इसी रहस्य के उद्‌घाटन का प्रयास करेंगे। इस जगत् को उसके प्रेमियों ने अनेक संज्ञाएँ प्रदान की हैं। किसी ने उसे मानव विचारणा की अनुपम उपलब्धि कहा तो

किसी ने शुद्ध सौंदर्य का प्रतीक। किसी ने उसमें सत्य की चिरंतन ज्योति का आभास पाया तो किसी ने उसे भगवत् प्राप्ति का अंतिम सोपान बताया। उसके सौंदर्य की अनुभूति कर प्रेमी हर्ष से विभोर हो कह उठा कि सत्य और सौंदर्य के दर्शन करना है तो यही है वह वाटिका। उसमें विचरण मात्र ही सत्य की साधना है; गणित सत्य है और सत्य ही ईश्वर है।

इसीलिए शुद्ध गणित के प्रेमी उसे स्थूल जगत् के लिए किसी प्रकार भी उपयोगी होना वांछनीय नहीं मानते। 'स्वांतः सुखाय' साधना में ही ज्ञान उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त कर सकता है। आर्कमेडीज़ ने भी अपनी यही इच्छा व्यक्त की थी कि भगवान करे गणित कभी भी किसी काम न आए। ध्यान रहे कि यह आकांक्षा किसी 'निठल्ले' गणितज्ञ की नहीं थी जिसे अन्य क्षेत्रों में सम्मान या उपलब्धियाँ न प्राप्त हुई हों। आर्कमेडीज़ अपने समय के ही नहीं वरन् आज तक के सबसे बड़े वैज्ञानिकों में एक था। उसी ने कहा था कि 'यदि मुझे खड़े होने का स्थान मिल जाए तो पूरी पृथ्वी को खिलौने की तरह उठा सकता हूँ।' यह उसकी कोरी कल्पना नहीं थी। उसने अपने कथन का प्रतिपादन वैज्ञानिक आधारों पर किया था। ऊपर वर्णित घटना के कुछ समय पूर्व तक वह वृद्ध दार्शनिक अपनी पूरी शक्ति रोमी आक्रमणकारियों से मातृभूमि की रक्षा में लगा रहा था। उसने अपनी सारी वैज्ञानिक सूझ-बूझ अपने प्रिय देश की सेवा में अर्पित कर दी थी। शत्रु इस बूढ़े यूनानी की मशीनों तथा युक्तियों से घबरा गए थे। एक दिन रोमी सेनानायक मार्केल्पस ने अपने सैनिकों को ललकारते हुए कहा था—'क्या हम इस ज्यामितीय सहस्रबाहु (ब्राइयेरस) के विरुद्ध युद्ध को कभी समाप्त नहीं कर सकेंगे? वह हमारे विशाल युद्ध पोतों को यंत्रों से ऐसे उठा लेता है मानो प्यालों से समुद्र में से पानी निकाल रहा हो। वह हमारे सेनानियों को अनंत छोटी-छोटी लकड़ियों के प्रहारों से बुरी तरह खदेड़ देता है। उसके एक साथ छोड़े हुए असंख्य आग्नेय प्रक्षेपास्त्र पौराणिक कथा के सहस्रबाहुओं वाले दैत्य के पराक्रम को भी अकिंचन बना देते हैं।' पर इस भर्त्सना का कोई असर नहीं हुआ। रोम के सैनिक जैसे ही नगर की दीवाल के ऊपर कोई रस्सी या लकड़ी निकली हुई देखते थे, वे 'वह देखो वहाँ है' चिल्लाते हुए भाग खड़े होते थे। उनका 'वह देखो वहाँ है' कहने से तात्पर्य था कि 'वह देखो अब आर्कमेडीज़ ने अपनी मशीन का उनकी ओर निशाना किया।'

रोमी सेना हार कर पीछे हट गई थी। साइरेक्यूज़ निवासी विजयोत्सव मना रहे थे। वृद्ध कर्मयोगी भी अपना कर्त्तव्य पूरा समझ उस विजयोत्सव के कोलाहल से कहीं दूर प्रशांत समुद्र तट पर साधना में लीन हो गया। रेत पर आड़ी-तिरछी रेखाओं का नवीन जगत् निर्माण कर उसमें खो गया। अवसर पाकर छद्मी रोमी सेना ने दूसरी ओर से आक्रमण कर दिया। साइरेक्यूज़ परास्त हुआ। न जाने कितने नागरिक तलवार के घाट उतरे। वृद्ध भी उनमें से एक था।

उस वृद्ध ज्यामितीय सहस्रबाहु ने युद्ध के 'खिलौनों' को कभी कोई महत्त्व नहीं दिया, वे तो उसके ज्यामिति-विनोद से विषयांयर मात्र थे। वस्तुतः उसके विचार में ये मशीनें तथा वह सभी ज्ञान और कला, जो किसी प्रकार के भी भौतिक लाभ तथा उपयोग

में सहायक हो सकते हों, कलंकित और बीभत्स हैं। वे लिखित इतिहास में स्थान पाने के सर्वथा अयोग्य हैं।

कितनी उदात्त थी यह धारणा जो आज भी मानव को मानव बना सकती है। प्रसिद्ध दार्शनिक व्हाइटहेड ने यूनानी और रोमी सभ्यताओं पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा था कि एक रोमी सिपाही के हाथ आर्कमेडीज़ की मृत्यु एक बहुत बड़े सामाजिक परिवर्त्तन का प्रतीक है। रोम निवासी एक महान् जाति थे परंतु उन्होंने व्यावहारिकता को जीवन में मूर्धन्य स्थान दिया था। फलस्वरूप वह जाति अतिव्यावहारिकता जन्य वैचारिक अनुर्वरता से अभिशापित रही। वे लोग कल्पना-जगत् के निस्सीम आकाश में विचरण करने में असमर्थ रहे। इसीलिए उन्हें नई दृष्टि न प्राप्त हो सकी जिससे वे प्रकृति की शक्तियों पर आधारभूत नियंत्रण कर सकते। रोम के किसी नागरिक को अपने जीवन से इस कारण हाथ नहीं धोना पड़ा क्योंकि वह किसी गणितीय आकृति के ध्यान में खोया हुआ था।

प्रोफेसर हार्डी बीसवीं शताब्दी के बहुत बड़ गणितज्ञ हो गए हैं। भारतीय गणितज्ञ रामानुजन को विश्व मंच पर ला खड़ा करने का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है। उन्होंने भी आर्कमेडीज़ की भाँति ही एक इच्छा व्यक्त की थी। उन्होंने एक बार कहा था: 'मेरा विश्वास है कि संभवत: नैंने अपने जीवन में कोई भी 'उपयोगी' काम नही किया।' उन्होंने जिन विद्यार्थियों को भी दिशा-निर्देश किया था वे भी उन्हीं की भाँति 'अनुपयोगी' कार्यों में ही व्यस्त रहे होंगे। यही एक शुद्ध गणितज्ञ की सबसे बड़ी साध है।

अतीत के गर्भ में

गणित का उद्गम खोजने के लिए हमें अतीत के उन पृष्ठों को लौटना होगा जिन पर लिखे चिह्न मिट चुके हैं। किंचित् संकेतों का आश्रय लेकर ही हम आगे बढ़ सकते हैं। वस्तुत: गणित और 'मानव-समाज' का प्रादुर्भाव लगभग एक साथ ही हुआ होगा। जब मनुष्य ने 'एक' और 'दो' के अंतर को समझना प्रारंभ किया उसी समय गणित का जन्म हुआ और उसी समय समाज का भी। आश्चर्य नहीं कि बालक शब्दों के उच्चारण के पूर्व ही एक और दो, थोड़े और बहुत में अंतर करना सीख लेता है। अक्षर ज्ञान के पहले गिनती भी माँ की गोद ही में सीखता है। वहीं से व्यक्ति की गणित की शिक्षा प्रारंभ हो जाती है।

गणना का शास्त्र गणित ?

मनुष्य जीवन से गणित के अति घनिष्ठ संबंध के कारण 'गणित न हो' ऐसी स्थिति की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। यही नहीं, गणित और सभ्यता की उन्नति में भी अन्योन्याश्रय संबंध होना स्पष्ट है। अत्यंत सरल समाज में गणित का क्षेत्र 'गणना' तक ही सीमित था। इसीलिए उसका नाम गणित पड़ा, गणित अर्थात् 'वह शास्त्र जिसमें

गणना की प्रधानता हो।' सभ्यता के विकास के साथ-साथ गणित का विकास हुआ अथवा गणित की आधारशिला पर समाज की उन्नति हुई। आज विज्ञान के चमत्कारों के पीछे गणित का बहुत बड़ा हाथ है। इसीलिए गणित को कभी 'सब विज्ञानों का सम्राट्' एवं कभी उसे 'सब विज्ञानों का सेवक' नामों से विभूषित किया जाता है। गणित सम्राट् भी है और सेवक भी। जहाँ गणित के स्वांतः सुखाय रूप की कल्पना है वहाँ उसे किसी दूसरे विज्ञान की आवश्यकता नहीं। उसके सिद्धांत स्वयमेव सुंदर और सत्य हैं। इस रूप में वह सभी विज्ञानों में अग्रगण्य है। वह निश्चय ही उनका सम्राट् है।

परंतु उसके सिद्धांत सभी विज्ञानों के साधारण काम-काज के लिए भी अपरिहार्य हैं। आज कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं जिसमें गणित की आवश्यकता न हो। भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र इत्यादि में तो गणित के अत्यंत उच्चकोटि के ज्ञान के सिवाय पैंठ ही नहीं है। अब तो समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र इत्यादि का भी इतना अधिक गणितीकरण हो चुका है कि उसमें भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए उच्चकोटि के गणित की आवश्यकता है। इस रूप में वह सभी विज्ञानों का सेवक है।

विज्ञान की आशुलिपि

गणित न जानने वालों की यह शिकायत है कि गणितज्ञ जिस क्षेत्र में भी गए उन्होंने उस विषय को अत्यंत दुरुह बना दिया और वह विषय साधारण जन की पहुँच के ऊपर हो गया। बात इसके बिल्कुल उलटी है। जब कोई शास्त्र अपने जीवन के उस मोड़ पर आया जहाँ उसे अपने फैलाव और विस्तार को समेटने की और उसे बोधगम्य बनाने की आवश्यकता हुई, गणित का सहारा लेना आवश्यक हो गया। गणित की सबसे बड़ी विशेषता है विज्ञान को ऐसे प्रसाधन उपलब्ध कराना जिससे विचार क्षेत्र में न्यूनतम प्रयास की आवश्यकता हो। इसीलिए गणित 'विज्ञान की आशुलिपि' भी कहलाता है।

ऐसा नहीं कि यह समस्या आज ही उठी हो। समाज के प्रारंभ से ही विभिन्न शास्त्रों के फैलाव और तदुपरांत उन्हें सौष्ठव प्रदान करने तथा बोधगम्य बनाने के लिए गणित के उपयोग में यह प्रक्रिया स्पष्ट दिखाई देती है। जब मनुष्य समाज बंजारों की-सी स्थिति में था और पशुपालन उसका मुख्य धंधा था, उसे केवल साधारण गिनती की ही आवश्यकता थी। वही उस समय संपूर्ण गणित था। धीरे-धीरे घुमक्कड़ मनुष्य नदियों की घाटियों में बसकर कृषि कार्य करने लगा। उसे इस कार्य के लिए ऋतुओं का ज्ञान तथा नक्षत्रों की गति और स्थिति को जानने की आवश्यकता हुई। उस समाज के 'गणितज्ञों' ने उस ओर ध्यान दिया, अपने शास्त्र में ज्योतिष को समाविष्ट कर लिया। जब व्यापार बढ़ा, दशमान प्रणाली का आविष्कार हुआ। साथ ही अंक-गणितीय प्रक्रियाओं का सरलीकरण भी आवश्यक हुआ। आज साधारण से साधारण व्यक्ति को उतना गणित मालूम है जितना ज्ञान उसे लगभग ४०० वर्ष पूर्व यूरोप के मूर्धन्य गणितज्ञों की कोटि में ला देता। मिस्र की महान् सभ्यता के पूर्ण विकास की स्थिति में उसके ज्ञान की टक्कर का कोई व्यक्ति नहीं मिलता।

हमारे समय में इस न्यूनतम गणितीय ज्ञान की आवश्यकता बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही है। जो विषय कल तक उच्च णित की कोटि में आते थे वे अब साधारण जन के आवश्यक उपकरण बनते जा रहे हैं पश्चिमी देशों के स्कूलों में अब उन प्रमेयों का पढ़ाना प्रारंभ हो गया है जो किसी समय वहाँ स्नातकोत्तर कक्षाओं में पढ़ाए जाते थे। 'ग्रुप' 'चलन कलन' इत्यादि शीघ्र ही प्रत्येक पढ़े-लिखे आदमी के सहज ज्ञान की सीमा में आ जाएँगे। इस प्रकार गणितीकरण के साथ गणित का ज्ञान भी जन-साधारण में बढ़ेगा। आज हम मध्य-कालीन युग के बारे में सोचते हैं कि उस समय लोग बिना दशमलव रीति के साधारण गणितीय समस्याओं को कैसे हल करते थे। ठीक उसी प्रकार आने वाली पीढ़ी के लोग आश्चर्य करेंगे कि हम इन नवीन उपकरणों के बिना किस प्रकार अपना कार्य व्यापार करते हैं।

गणित के अनेक रूप

प्रारंभ में गणित का विस्तार अंकगणित तक ही सीमित रहा होगा। धीरे-धीरे अलग-अलग देशों में गणित का विकास अनेक दिशाओं में हुआ। उसके कई उपविषय बन गए। भारत में अति-प्राचीन काल से ज्योतिष गणित का एक अंग था। कुछ समय के लिए तो स्वयं गणित ही ज्योतिष का एक अंग माना जाने लगा था। ज्योतिष के दो अंग थे—गणित और फलित। गणित से तात्पर्य ग्रहों तथा अन्य आकाशीय पिंडों की स्थान-स्थिति और गति का हिसाब लगाना इत्यादि था। बीजगणित भी भारतीय गणित का अति-प्राचीन काल से ही एक अंग रहा है।

पश्चिम में ज्यामिति का विकास प्राचीन काल में काफी कुछ हो गया था और वह गणित का एक महत्त्वपूर्ण अथवा यों कहें कि एक प्रमुख अंग था। ज्यामिति के वे सभी प्रमेय जो आज स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं उस समय सिद्ध किए जा चुके थे। वहाँ अंकगणित का विकास बहुत पिछड़ा था। इस दिशा में वास्तविक उन्नति भारतीय संख्या सिद्धांत तथा गणितीय क्रियाओं के फैलने के बाद ही हुई जो सत्रहवीं शताब्दी में वहाँ सार्वभौम हो सके।

भारत में मध्य-युग के बाद अब तक गणित का विकास अवरुद्ध-सा ही रहा है। इस काल में पश्चिम में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। वहाँ गणित और विज्ञान परस्पर एक दूसरे की उन्नति के कारण बने। भौतिक जगत् की उलझी हुई समस्याओं को सुलझाने के लिए गणितीय उपकरणों की आवश्यकता हुई। गणित में अनेक नई शाखाएँ पैदा हुईं और बढ़ीं। यहाँ तक कि कुछ शाखाएँ तो अब स्वतंत्र विज्ञान के रूप मं स्थापित हो गई हैं जैसे सांख्यिकी, ज्योतिष, गणितीय भौतिकी इत्यादि।

किसी समय यह संभव था कि एक व्यक्ति गणित के सभी अंगों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सके पर आज यह असंभव है। पूरा जीवन ज्ञान अर्जन में लगा देने के बाद भी कुछ अंगों से अधिक का ज्ञान तो क्या उनका सामान्य परिचय भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसीलिए आज कभी-कभी गणित की परिभाषा 'गणित वह जो गणितज्ञ करे' की जाती है।

स्थिति यह हो गई है कि कौन-सी चीज गणित की सीमा के बाहर है और कौन-सी उसके भीतर इसका निराकरण भी कठिन है। उदाहरण के लिए अर्थमिति (इकोनोमेट्रिक्स अर्थात् गणित के आधार पर अर्थशास्त्रीय सिद्धांतों का अध्ययन) गणित है अथवा अर्थशास्त्र, यह कौन कह सकता है ?

शुद्ध गणित और अनुप्रयुक्त गणित

पर इस परिभाषा में तो हम चक्कर में पड़ सकते हैं। 'गणित वह जो गणितज्ञ करे' तो ऐसा कथन है जिसे सुनने के बाद हमें उस विषय में किसी प्रकार की भी नई जानकारी प्राप्त नहीं होती। इसलिए इस परिभाषा को छोड़कर इसकी थोड़ी गहराई में उतरें तो अधिक अच्छा होगा।

ऊपर के विवेचन में गणित के दो रूप स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं—एक गणित का सम्राट् रूप और दूसरा उसका सेवक रूप। सम्राट् रूप है शुद्ध गणित और सेवक रूप अनुप्रयुक्त गणित। शुद्ध गणित अपने आप में पूर्ण है। उसे किसी वाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं। वह तो विचार जगत् में ही समाहित है। अनुप्रयुक्त गणित वह है जो भौतिक जगत् की किसी समस्या को सुलझाने में काम आए। यह कहना अत्यंत कठिन होगा कि शुद्ध गणित की सीमा कहाँ समाप्त होती है और अनुप्रयुक्त गणित कहाँ प्रारंभ होता है। केवल किसी प्रमेय का वास्तविक जगत् की समस्याओं में काम आने मात्र से उसे अनुप्रयुक्त गणित नहीं कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए संख्याओं का अध्ययन शुद्धतम गणित है। पर संख्या तो मनुष्य के जीवन के अनेक क्षेत्रों में काम आती ही है। फिर भी हम उस अध्ययन को अनुप्रयुक्त गणित नहीं कहते हैं। अनुप्रयुक्त गणित वह है जो शुद्ध गणित के सिद्धांतों का आधार लेकर केवल भौतिक जगत् की समस्याओं को हल करने के काम आए। उसका भौतिक समस्याओं से हट कर अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता है।

खगोल-शास्त्र पूर्ण रूप से अनुप्रयुक्त गणित है। उसमें सर्वप्रथम आकाशीय पिंडों की गति का निरीक्षण किया जाता है। तत्पश्चात् उनके आधारभूत संबंधों को गणितीय समीकरणों द्वारा व्यक्त करते हैं। पुनः शुद्ध गणित की ही सहायता से समीकरणों का समाधान कर आवश्यक निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। इस प्रकार शुद्ध गणितीय सूत्रों का उपयोग ही अनुप्रयुक्त गणित है। न्यूटन के पूर्व सदियों के निरीक्षण के आधार पर आकाशीय पिंडों की स्थिति और गति के विषय में बहुत कुछ सामग्री उपलब्ध हो चुकी थी। परंतु उसका रूप अत्यंत जटिल था। न्यूटन ने उसका गहन अध्ययन किया। उसे एक नया प्रकाश मिला। उन उलझे तत्त्वों में एक नए क्रम का आभास हुआ। इस आधार पर न्यूटन ने गुरुत्त्वाकर्षण का सिद्धांत प्रस्तुत किया। उसने कहा कि हम सभी पिंडों में गुरुत्त्वाकर्षण बल का होना मान सकते हैं। प्रथमतः यह बल उस पिंड के द्रव्यमान के अनुपात में होगा। यदि पृथ्वी से शुक्र 'क' गुना है तो शुक्र का गुरुत्त्वाकर्षण बल पृथ्वी के बल से 'क' गुना होगा। दूसरे, इस बल का दूसरे पिंडों पर प्रभाव उनकी दूरी पर निर्भर होगा। वस्तुतः उसने

अनुमान लगाया कि दूरी दुगुनी होने पर बल का प्रभाव१/४, तीन गुनी होने पर १/९, चौगुनी होने पर १/१६ हो जाएगा। इन्हीं तथ्यों को उसने सूत्ररूप में प्रस्तुत किया। आकाशीय पिंडों की गति, कक्षाएँ इत्यादि, सब कुछ इस सिद्धांत की पुष्टि करते हुए प्रतीत हुए और गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत एक वैज्ञानिक तथ्य के रूप में स्वीकृत हुआ।

गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत की स्थापना से अनेक खगोलीय तथ्य सुगम हो गए और अनुप्रयुक्त गणित ने एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कदम आगे बढ़ाया। सदियों की जटिल गणना को एक सुंदर रूप मिल गया। पूरी सृष्टि जो बिना किसी नियम के चलती प्रतीत होती थी, उसमें एक आंतरिक एकसूत्रता आ गई। वैज्ञानिक इस सरल नियम के सौंदर्य से प्रभावित होकर कह उठा कि 'यदि परमात्मा है तो वह एक महान् गणितज्ञ है।'

उल्लेखनीय यह है कि इस क्रम में शुद्ध गणित एक पग भी आगे नहीं बढ़ा। हाँ, उस समय तक कलन का, जो शैशवावस्था में था, नई समस्याओं में प्रयोग अवश्य हुआ। और साथ ही नई समस्याओं ने गणितज्ञों को शुद्ध-गणितीय खोजों के लिए प्रेरित भी किया। पर कलन के जन्म का उसके उपयोग से कोई संबंध नहीं था।

इसी प्रकार जब वर्त्तमान शताब्दी में आइंस्टाइन ने न्यूटन के गुरुत्त्वाकर्षण सिद्धांत के स्थान पर आपेक्षिकता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया तो इसका गणितीय आधार ५० वर्ष से भी अधिक पुराना सदिश विश्लेषण था। एक ओर सदिश विश्लेषण के बिना आपेक्षिकता का गणित असंभव था और दूसरी ओर आपेक्षिकता में उसके उपयोग से सदिश विश्लेषण के विकास को एक नई प्रेरणा मिली। अब सदिश विश्लेषण शुद्ध गणित का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है।

गणित, सौंदर्य और सत्य

शुद्ध गणितज्ञ अपने को सौंदर्य और सत्य का पुजारी मानता है। उसके अनुसार गणित केवल विचारों से ही संबंधित होता है, स्थूल जगत् की किसी वस्तु से नहीं। विचार स्थूल जगत् से अधिक स्थायी है। इसीलिए गणितीय ज्ञान चिरंतन है। १+१=२ सदा सत्य था, वर्तमान में भी सत्य है और सदा ही सत्य रहेगा। इसी विचारों की दुनिया को शुद्ध गणितज्ञ अपना सर्वस्व मानता है। प्रोफेसर हार्डी का कहना है कि सौंदर्य दो बातों पर निर्भर रहता है । प्रथम तो कोई वस्तु विचार जगत् से जितनी अधिक संबंधित हो उतनी ही सुंदर होगी। दूसरे वह जितनी अधिक अनुपयोगी हो उतना ही उसका सौंदर्य निखर उठता है। सौंदर्य और उपयोगिता परस्पर विरोधी हैं। उपयोग की भावना मात्र ही सौंदर्य को नष्ट कर देती है।

गणितीय सौंदर्य को सभी लोग अनुभव कर सकते हैं और उसका आनंद उठा सकते हैं। यह अवश्य है कि यदि यह पूछा जाए कि यह सौंदर्य क्या है तो उसकी परिभाषा बताना कठिन होगा। यह कठिनाई कोई गणित के साथ ही निराली नहीं है। उन सभी भावनाओं और विचारों की परिभाषा कठिन है जो मनुष्य के जीवन के अत्यंत निकट है । प्रेम को ही ले लीजिए। प्रेम क्या है ? उसकी व्याख्या असंभव-सी है। उसका अनुभव किया

जा सकता है, वर्णन नहीं। वह शब्दों की शृंखला में बँध नहीं सकता। सौंदर्य प्रेम की भाँति ही शब्दातीत है।

गणितीय सौंदर्य के उदाहरण सभी जगह मिलते हैं। जब हम गणित जगत् में पदार्पण करते हैं और उसके असीम सौंदर्य से परिचित होते जाते हैं तो संवेदनशील विद्यार्थी के आनंद का पार नहीं रहता। कक्षा में पढ़ाया जाता है कि प्रत्येक त्रिकोण के तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है। एकाएक विश्वास नहीं होता है। जिज्ञासु बालक अनेक त्रिभुज बनाकर नापता है। पर फल वही मिलता है। धीरे-धीरे उसे इस गणितीय सौंदर्य की अनुभूति होती है और वह आत्म विभोर हो जाता है।

एक और छोटा विद्यार्थी पहाड़े याद करता है। ५ का पहाड़ा याद कर रहा है। सहसा अनुभव होता है कि उसके अंतिम स्थान में ५ और ० की आवृत्ति होती है। बाद को मालूम होता है कि कितनी भी बड़ी संख्या क्यों न हो यदि उसके अंत का अंक ० या ५ है तो वह ५ से विभाजित हो जाएगी। संख्याओं के इस गुण का साक्षात्कार कर एक विशेष आनंदानुभूति होती है।

थोड़े उच्च गणित का एक अन्य उदाहरण लें। साधारण रूप से हमारी काम-काज की संख्याएँ पूर्णांक और भिन्नांक होते हैं। पूर्णांक जैसे १, २, ३, ४,. . . . . इत्यादि तथा भिन्नांक जैसे १/२, २/३, ७/१०,. . . . इत्यादि। प्राचीन काल में यह विश्वास था कि प्रत्येक राशि भिन्नांक के रूप में निरूपित की जा सकती है। परंतु यूनान के गणितज्ञों के सामने $\sqrt{२}$ (२ का वर्गमूल) एक समस्या बन कर आई। इस राशि को एक भिन्नांक के रूप में नहीं लिखा जा सकता है। कितनी सुंदर उपपत्ति दो हज़ार वर्ष पूर्व यूक्लिड ने दी, आइए देखें।

मान लीजिए कि $\sqrt{२}$ एक भिन्नांक है और उसको क/ख के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। क और ख पूर्णांक हैं। हम यह भी मान सकते हैं कि क और ख में कोई समान गुणनखंड नहीं हैं। क्योंकि यदि क और ख में कोई समान गुणनखंड हों तो उनको काट कर नए रूप में लिखा जा सकता है। उदाहरण के लिए १०/३६ में १०=२×५ और ३६=२×२×३×३। १० और ३६ में एक समान गुणनखंड है '२'। उसे हम काट सकते हैं:

$$\frac{१०}{३६}=\frac{२\times५}{२\times१८}$$

इसीलिए १०/३६ लिखने के स्थान पर उसी संख्या को ५/१८ के रूप में लिखा जा सकता है। अस्तु, हम मान सकते हैं कि भिन्नांक $\frac{क}{ख}$ में क और ख में कोई समान गुणनखंड नहीं है।

ऊपर के माने हुए संबंध को हम निम्न समीकरण के रूप में लिख सकते हैं:

$$\sqrt{२}=\frac{क}{ख}\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(१)$$

इसी समीकरण में दोनों ओर की राशियों का वर्ग करने पर निम्न समीकरण प्राप्त होता

$$\sqrt{२} \times \sqrt{२} = \frac{क}{ख} \times \frac{क}{ख} \quad \text{अथवा} \quad २ = \frac{क \times क}{ख \times ख}$$

अथवा $\quad क \times क = २ \times ख \times ख \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (२)$

अब यदि हम दाहिनी ओर की राशि देखें तो स्पष्ट है कि उसमें दो का भाग जा सकता है। अर्थात् दाहिनी ओर की संख्या सम है। चूँकि दाहिनी ओर बाईं ओर की राशियाँ समान हैं इसलिए बाईं ओर की संख्या भी सम संख्या होगी। परंतु यदि बाईं ओर की राशि क×क सम है तो स्वयं 'क' भी एक सम संख्या होनी चाहिए। मान लीजिए क=२ ट, तो समीकरण (२) को निम्न रूप में लिखा जा सकता है:

$$२ट \times २ट = २ \times ख \times ख \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (३)$$

इसी समीकरण में दोनों ओर एक समान गुणनखंड संख्या '२' है। उसे हम काट सकते हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि

$$२ \times ट \times ट = ख \times ख \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (४)$$

समीकरण (४) का ठीक वही रूप है जो समीकरण (२) का था। हम पुनः उसी प्रकार से तर्क करने पर यही पाएँगे कि 'ख' भी एक सम संख्या है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि 'क' तथा 'ख' दोनों ही सम संख्याएँ हैं। अर्थात् दोनों ही २ से विभाजित की जा सकती हैं। परंतु हम यह पहले मान कर चले थे कि क और ख में कोई समान गुणनखंड नहीं हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि इस विषय में हमारी मूल धारणा ही असत्य है। अर्थात् $\sqrt{२}$ को $\frac{क}{ख}$ के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता है। कितनी सुंदर है यह सरल-सी उपपत्ति।

सरलता और सौंदर्य अन्योन्याश्रित है। जो संबंध जितना ही सरल है वह उतना ही सुंदर है। एक अत्यंत सरल और सुंदर उदाहरण देखिए। रूढ़ संख्याएँ (अभाज्य संख्याएँ अर्थात् वे संख्याएँ जिनके कोई गुणनखंड नहीं हो सकते) दो वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। पहले वर्ग में हम उन संख्याओं को रखते हैं जिनमें ४ का भाग देने से १ शेष रहता है। ये संख्याएँ निम्न होंगी :

५, १३, १७, २९, ३७, ४१,......

तथा दूसरे में वे जिनमें ४ का भाग देने से ३ शेष बचता है जो निम्न संख्याएँ हैं :

३, ७, ११, १९, २३, ३१,......

प्रसिद्ध गणितज्ञ फर्मा ने यह बताया कि पहले वर्ग की सभी संख्याएँ दो पूर्णांकों के वर्गों के योग के रूप में लिखी जा सकती हैं, जैसे :

$$५ = १^२ + २^२ \qquad १३ = २^२ + ३^२$$
$$१७ = १^२ + ४^२ \qquad २९ = २^२ + ५^२ \text{ इत्यादि,}$$

पर दूसरे वर्ग की कोई भी संख्या इस प्रकार नहीं लिखी जा सकती। कितना सुंदर है संख्याओं का यह गुणा। प्रथम परिचय में हम जानने को उत्सुक हो जाते हैं कि इन संख्याओं के इस गुण का क्या रहस्य है

ज्ञान और जिज्ञासा

गुरु गोविंद दोनों खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपनो, जिन गोविंद दियो बताय ।।

गुरु और गोविंद में निश्चय ही मार्ग दिखाने वाला गुरु ही श्रेष्ठ है। ज्ञान और जिज्ञासा में जिज्ञासा का ही पलड़ा भारी है। यदि जिज्ञासा है तो ज्ञान प्राप्त होने की संभावना है। परंतु ज्ञान का अगाध समुद्र भी जिज्ञासा के बिना निरर्थक है। ज्ञान स्वयं में अपूर्ण है। वह सीमित अचल स्थिति का द्योतक है, परंतु जिज्ञासा निर्बाध, अनंत की।

गणित में यही संबंध प्रमेय और गणितीय प्रक्रियायों में है। प्रमेय रूप में प्रस्थापित गणितीय ज्ञान है। उसे सिद्ध करने का मार्ग जिज्ञासा रूप गणितीय प्रक्रिया है। महत्त्व गणितीय प्रक्रिया का है न कि एक समस्या विशेष के हल का। प्रक्रिया के आधार पर सभी प्रश्न हल किए जा सकते हैं। पर यदि प्रक्रिया पर अधिकार न हो तो कठिनाई होगी। एक समस्या का हल मालूम होने पर भी दूसरी समस्या दुर्गम प्रदेश बन जाती है। इसलिए स्कूलों में जो बच्चे गणित की विधि समझ लेते हैं, वे सभी प्रश्न सरलता से कर लेते हैं। पर जो प्रश्न को रट लेते हैं, वह प्रश्नों में किंचित् हेर-फेर होने पर भी हल करने में असफल हो जाते हैं।

मनोरम पहाड़ी और सुडौल हाथी

गणितीय प्रक्रियाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण कदम दी हुई समस्या के बाद केन्द्रीय प्रश्न को अनावश्यक विस्तार से पृथक् करना होता है। इस प्रक्रिया को हम अमूर्त्तीकरण कहते हैं। एक समस्या कुछ इस प्रकार है: 'एक अत्यंत रमणीय पहाड़ी है, उसके ढाल पर खिले फूलों की रंगीन आभा मन को मोह लेती है। इस पहाड़ी की चोटी पर एक स्थूलकाय हाथी विहार कर रहा है। एकाएक वह फिसल कर लुढ़कने लगता है। बताइए, उसके पहाड़ी के नीचे तक आने में कितना समय लगेगा?'

प्रश्न को हल करने लिए केवल दो मूलभूत तथ्यों को देखना होगा—उस पहाड़ की ऊँचाई और उसके ढाल का कोण। उसकी सुंदर हरी दूब को हम भूल जाएँगे। वह हाथी भी हमारे लिए एक सुंदर प्राणी न होकर एक बिन्दु मात्र रह जाएगा—यहाँ तक कि इस समस्या में हाथी के स्थान पर एक मच्छर भी दिया होता, तब भी क्रिया-विधि वही होती और समस्या-हल भी वही होता। इस प्रकार गणित की समस्या में उस सुंदर

पुष्पित हरित ढाल के प्राकृतिक दृश्य को एक सरल रेखा और उस सुडौल हाथी को एक विन्दु का रूप मिल गया। अव मुख्य समस्या है: गणितीय नियमों के अनुसार दी हुई सरल रेखा पर एक कोने से दूसरे कोने तक गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के अधीन इस विन्दु के गिरने का समय निकालना।

ध्यान देने की वात है कि हमें यह भी नहीं मालूम कि विन्दु क्या है और वह सरल रेखा क्या है? ज्यामितीय परिभाषा के अनुसार विन्दु की कोई लंवाई, चौड़ाई या मोटाई नहीं होती और सरल रेखा में केवल लंवाई ही होती है। कल्पना की सहायता के लिए कागज़ पर हम एक सरल रेखा और एक विन्दु बनाते हैं, पर उनका वास्तविक 'विन्दु' और 'सरल रेखा' से कोई संवंध नहीं। क्योंकि कागज़ पर जव विन्दु और रेखा वनाते हैं तो उनमें लंवाई और चौड़ाई कुछ न कुछ तो होगी ही चाहे वह कितनी भी थोड़ी क्यों न हो। इस प्रकार प्रश्न को हल करने के दौरान न हरी घास रही, न पहाड़, न हाथी। और जो चित्र वनाया, वह भी जो वनाना चाहा वह नहीं, कुछ और है (क्योंकि वास्तविक 'रेखा' और 'विन्दु' वनाए ही नही जा सकते)। परंतु इस प्रसाधन से हमने काम निकाल लिया, प्रश्न हल हो गया।

शब्द-जाल

ऊपर वर्णित अमूर्त्तीकरण गणितीय प्रक्रिया का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है। इसी प्रक्रिया को सुवोध रूप में हम पहेलियों में भी देख सकते हैं। पहेलियों में भी अनावश्यक बातों को छाँटते हुए उसके केन्द्र-बिन्दु पर पहुँचना होता है। जहाँ मुख्य बात पकड़ में आ गई, उसका हल स्पष्ट हो जाता है। जैसे एक पहेली है—'तीतर के दो तीतर आगे, तीतर के दो तीतर पीछे, आगे तीतर, पीछे तीतर, वीच में तीतर। तव बताओ कितने तीतर हैं कुल?' शव्द जाल को भेद कर समस्या को देखने मात्र से सही उत्तर मिल जाएगा। इस संवंध में फ़्लाबेयर ने गणित की पहेलियों से चिढ़कर अपनी वहन को एक पत्र लिखा था, वह उल्लेखनीय है:

"चूँकि तुम अव रेखागणित और त्रिकोणमिति पढ़ रही हो, मैं तुम्हें एक समस्या दे रहा हूँ। एक जहाज़ समुद्र पर जा रहा है। वह कलकत्ते वंदरगाह से पटसन का लदान लेकर चला था। उसका पूरा वजन लगभग दो हज़ार क्विंटल है। उसे कोलंवो जाना है। उस जहाज़ का मस्तूल टूटा हुआ है, केबिन का भृत्य जहाज़ की छत पर है, कुल वारह यात्री हैं, हवा का रुख दक्षिण-पूर्व की ओर है। घड़ी में दोपहर के सवा तीन वजे हुए हैं। मई का महीना है। तव बताओ कि जहाज़ के कप्तान की उम्र क्या है?"

फ़्लावेयर इस समस्या को देकर केवल अपनी वहन को चिढ़ा ही नहीं रहा था, अपितु वह इस भावना को व्यक्त कर रहा था कि साधारण पहेली मतिभ्रम तो करती ही है, पर उसमें अनेक व्यर्थ शव्द भी भर दिए जाते हैं। गणित की समस्याओं में सवसे पहला काम मतिभ्रम को दूर करना और साथ ही व्यर्थ शव्द-जाल को अलग हटाना होता है।

गणितीय समस्याओं के हल के विषय में और भी कई धारणाएँ प्रचलित हैं। कुछ लोगों का कहना है कि इसके लिए एक विशेष अंत:प्रज्ञा अथवा सहज-ज्ञान की आवश्यकता होती है और सर्वोत्कृष्ट गणित का सृजन इसी के आधार पर हुआ है। चोटी के गणितज्ञों की कुछ इस प्रकार की कार्य रीति भी इस धारणा की सम्पुष्टि करती है। रामानुजन के बारे में कहा जाता है कि वह सुबह उठकर कुछ प्रमेय लिख दिया करते थे। वह कहते थे कि देवी उन प्रमेयों को स्वप्न में बता देती थीं। ये सभी प्रमेय सत्य नहीं सिद्ध हुए। परंतु उनमें से कई अपने आप में गणित की महान् उपलब्धि हैं। उनमें से बहुतों को सिद्ध अथवा असिद्ध करने के लिए घंटों, दिनों, सप्ताहों, यहाँ तक कि वर्षों तक परिश्रम करना पड़ा। रामानुजन द्वारा लिखे हुए अभी भी कई प्रमेय ऐसे हैं, जो कठिन प्रयास के बाद भी न तो सिद्ध किए जा सके हैं और न असिद्ध ही।

फर्मा अपनी नोटबुक के हाशिए पर अक्सर गणितीय प्रमेय लिख दिया करता था। एक स्थान पर शुल्व प्रमेय $क^२ - ख^२ = ग^२$ का उल्लेख था। इस समीकरण के अनंत हल होते हैं। उदाहरण के लिए $३^२ - ४^२ = ५^२$, $६^२ - ८^२ = १०^२$। इसका आशय है कि कुछ वर्ग संख्याएँ ऐसी हैं जो दो वर्गों के योग के बराबर होती हैं। यहाँ पर स्वाभाविक रूप से एक प्रश्न उठता है कि क्या कोई घन संख्याएँ भी ऐसी हैं, जो दो संख्याओं के घन के योग के बराबर हों। फर्मा ने उसी स्थल पर लिख दिया कि 'सर्वीय रूप से ऐसे कोई पूर्णांक नहीं हैं, जिनके दो से बड़ी घातों का योग एक अन्य पूर्णांक का वही घात हो। वास्तव में मैंने इसका एक विस्मयकारक हल खोज लिया है, पर यह हाशिया इतना छोटा है कि वह इस पर लिखा नहीं जा सकता है।' इस प्रकार उसने ऊपर उठी जिज्ञासा का समाधान कर दिया। किन्हीं भी दो संख्याओं के घनों का योग एक घन संख्या नहीं हो सकती, इत्यादि। यदि फर्मा ने वास्तव में ऐसा हल मालूम कर लिया था तो उसके हाशिए पर स्थान की कमी बड़ी ही कीमती सिद्ध हुई। उसके बाद सभी बड़े गणितज्ञों ने इस कथन को सिद्ध करने के लिए न जाने कितना समय लगाया। दो सौ वर्षों के सतत् प्रयत्न के बाद भी अब तक किसी को यह कथन सत्य अथवा असत्य साबित करने में सफलता नहीं मिल सकी है।

यह अंत:प्रज्ञा क्या है, यह कहना कठिन है। इतना अवश्य कहा जाता है कि गणित विषयक अंत:प्रज्ञा जिससे गणितज्ञ को राशियों में छिपी हुई संगति और संबंधों की सहज अनुभूति हो जाती है, सबके पास नहीं होती। यह भी निश्चित है कि संगति तथा संबंधों का ज्ञान एक आकस्मिक घटना नहीं होती है, वरन् उसमें प्रबुद्ध मस्तिष्क द्वारा अनेक अन्य संभावनाओं में से किसी एक का सुचिंतित वरण होता है। एक गणितज्ञ में सौंदर्य के लिए अनुभूति और संख्याओं तथा आकृतियों में छिपी संगति और समरूपता को देख लेने की शक्ति का उसकी सफलता में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह भावनात्मक सम्वेद्यता ही अंत:प्रज्ञा की आधारशिला है।

इस विषय में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है अज्ञात रूप से मस्तिष्क के अंतरतम भागों में

समस्याओं के हल के लिए आवश्यक प्रक्रिया का होना। कभी-कभी एक समस्या को सुलझाने का प्रथम प्रयास असफल हो जाता है। बहुत प्रयास करने पर भी कोई रास्ता नहीं दिखाई देता है। फिर वह समस्या मस्तिष्क में उतर-सी जाती है। परंतु यदा-कदा कभी एक दिन, दो दिन या एक सप्ताह के बाद एकाएक एक प्रकाश-सा दिखाई पड़ता है और समस्या हल करने का मार्ग सूत्र रूप में स्पष्ट हो जाता है। बैठ कर काम करने पर समस्या हल हो जाती है। बाद में विस्मय होता है कि यह छोटा-सा रहस्य पहले क्यों नहीं मालूम हुआ ! इस पूरे काल में यद्यपि समस्या मूर्त्तरूप से तो हमारे मस्तिष्क में नहीं रहती, परंतु उसके गहन और गंभीर भागों में परोक्ष रूप से उसे हल करने की प्रक्रिया चालू रहती है। अंत में प्रकाश की एक रश्मि उस अंतरतम भाग से चेतन प्राण को मिलती है और समस्या का समाधान हो जाता है। यही प्रक्रिया रामानुजन तथा अन्य बड़े गणितज्ञों की अंतःप्रेरणा के आधार पर प्रमेयों के लिखने के पीछे है। वे विषय में इतने डूबे रहते हैं कि मस्तिष्क की विभिन्न गहराइयों में अदृश्य रूप से विभिन्न प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं। हम स्वयं भी साधारण गणित की समस्याओं के हल के आत्मानुभव से इस प्रक्रिया की पुष्टि कर सकते

गणित की चुनौती

गणित में सबसे कठिन कार्य उपलब्ध ज्ञान-राशि को जानने के बाद उसका स्वतंत्र रीति से अन्य समस्याओं के हल में उपयोग करना होता है। खेल और संगीत के क्षेत्र में व्यक्ति अभ्यास करने से निपुण होता जाता है। पर गणित में सभी प्रमेयों की उपपत्तियों को जान लेने के बाद भी साधारण-से-साधारण समस्या का स्वयं हल करना कठिन हो सकता है। वास्तव में गणितीय समस्याओं को सुलझाने के लिए सोचने की विधि महत्त्वपूर्ण है। गणित की प्रत्येक समस्या का हल करना एक नई खोज करना है। सरल समस्याएँ भी हमारी जिज्ञासा को चुनौती देती हैं और हमारी अन्वेषण-शक्ति को उत्तेजित करती हैं। इसलिए गणित का विद्यार्थी समस्याओं में उलझा रहता है और कोई अन्य व्यक्ति उस स्थिति में समस्या का हल बता दे तो उसे बड़ी झुँझलाहट होती है।

यही चुनौती गणित की जिज्ञासा को सहस्राब्दियों से जागृत रखे हुए है और प्रत्येक गणित के विद्यार्थी को उसके अग्रजों द्वारा किए कार्य को स्वयं करने और उसे आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन देती रहती है। देखने में छोटी-छोटी समस्याएँ न जाने कितना समय ले चुकी हैं। अभी हाल में ही मद्रास के एक गणितज्ञ ने दावा किया है कि उसने केवल पटरी और परकाल से किसी भी कोण को तीन बराबर भागों में विभाजित करने में सफलता प्राप्त कर ली है। यह समस्या आज से दो हज़ार वर्ष पुरानी है और उन तीन प्रश्नों में से एक है जो डेल्फी की देवी के द्वारा दी गई मानी जाती है। दो अन्य समस्याएँ थीं— एक ठोस गोले के बराबर का एक घन आकार बनाना, तथा एक घन के दूने घनफल के बराबर का दूसरा घन बनाना। घन से संबंधित दोनों समस्याएँ तो अपरिमेय संख्याओं की प्रकृति का परिचय मिलने पर बहुत पहले ही असंभव करार दे दी गई थीं, परंतु कोण

का तीन हिस्सों में विभाजित करना गणितज्ञों को लगभग दो हज़ार साल तक परेशान करता रहा। इसे भी पिछली शताब्दी में गॉस ने असंभव सिद्ध कर दिया। पर फिर भी यदाकदा कुछ लोग जोर आजमाइश कर ही लेते हैं। हमें इस प्रकार की अन्य अनेक समस्याएँ और भी मिलेंगी।

इस शताब्दी में भी एक अत्यंत रोचक घटना गणित में अथक परिश्रम और अनन्य एकाग्रता की ओर इंगित करती है। एक बाल्टी में पानी भर लीजिए। हाथ से एक ही दिशा में पानी चलाने से, जब पानी वेग से गोलाई में घूमने लगता है तो द्रवगतिक बल के कारण उसमें गड्ढा हो जाता है। महाकाश में ब्रह्मांड-धूलि से तारामंडलों के निर्माण संबंधी समस्या को सुलझाने के संबंध में इसी प्रकार के एक द्रवगतिक प्रश्न पर दो वैज्ञानिकों—एक अंग्रेज़ और एक रूसी—ने इंग्लैण्ड और रूस में बिना एक दूसरे के जाने हुए कार्य प्रारंभ किया। दोनों का लक्ष्य यह जानना था कि ऊपर वर्णित घूमते पानी का-सा स्वरूप अंतरिक्ष में स्थायी होगा अथवा अस्थायी। बीस वर्षों के सतत् परिश्रम के बाद दोनों ने समस्या तो हल कर ली, पर दुर्भाग्यवश परिणाम भिन्न थे—एक ने कहा कि वह स्वरूप स्थायी है और दूसरे ने अस्थायी। फल यह हुआ कि समस्या जहाँ की तहाँ रह गई। इस प्रश्न का निराकरण करने के लिए ये हल सर जेम्स जींस के पास भेजे गए। उन्होंने दोनों के कार्यों को देखकर अनुमान लगाया कि यदि वे उस सबको देखेंगे तो लगभग पाँच वर्ष लग जाएँगे। परंतु इन बीस वर्षों में गणित में बहुत उन्नति हो चुकी थी और नये ढंग से उस समस्या को सुलझाया जा सकता था। इस समस्या को नये ढंग से करने में उन्हें दो वर्ष लगे और उनका निष्कर्ष आया कि यह रूप अस्थायी है।

इतना परिश्रम और यह फल! यह परिश्रम निरर्थक नहीं माना जा सकता है, उसका अपना महत्त्व है। यही चुनौती मनुष्य की जिज्ञासा को विचारों के गूढ़तम रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए बाध्य करती रहती है। फल का महत्त्व नहीं, महत्त्व है उस खोज और जिज्ञासा का जो सभी उन्नति की जननी है।

इस कठोर परिश्रम की नींव पर जिस सुरम्य गणित जगत् की रचना हुई है, आइए, उसमें हम कुछ देर विचरण करें।

अध्याय २

संख्या : मनुष्य में संख्या के ज्ञान का उदय और विकास : पशु-पक्षियों में संख्या संबंधी ज्ञान

संख्या बुद्धि

अरस्तू का कहना था कि चूँकि मनुष्य गणना कर सकता है, इससे यह सिद्ध होता है कि वह एक विचारशील प्राणी है। आज हम इस कथन के महत्त्व का अनुमान नहीं लगा सकते हैं, क्योंकि अब अंकगणित का रूप उस समय की अपेक्षा बहुत ही अधिक सरल हो गया है। परिकलन के नये और बोधगम्य तरीके भी ईज़ाद हो गए हैं। वर्त्तमान शताब्दी में तो परिकलन-यंत्र भी आ गए हैं, जो तेज़ से तेज़ व्यक्ति से भी अधिक तेज़ी से अंकगणित की समस्याएँ हल कर सकते हैं। इसलिए यदि अंकगणित आज अपना वैभव खो बैठा है तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

परंतु पश्चिमी देशों में यह प्रगति अपेक्षाकृत नवीन ही है। लगभग तीन-चार सौ वर्ष पहले कहते हैं कि जर्मनी के एक विद्यार्थी ने अपने एक गुरु से पूछा—'मैं गणित की उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूँ। मुझे किस आचार्य के पास जाना चाहिए ?' गुरु ने कहा—'यदि तुम केवल जोड़ना-घटाना ही सीखना चाहते हो, तब तो जर्मनी के प्रोफेसर ही काफी होंगे। परंतु यदि तुम गुणा और भाग भी सीखना चाहते हो तो इटली के किसी विशेषज्ञ के पास जाना होगा।'

वर्त्तमान स्थिति पर प्रकाश डालते हुए बर्टेण्ड रसेल ने एक स्थान पर लिखा है कि बहुत-से दार्शनिक हम गणितज्ञों को बहुत अच्छा समझते हैं, पर इस प्रशंसा का कारण हमारी अंकगणित संबंधी दक्षता नहीं है।

बालक और उसके खिलौने

यदि विचार किया जाए तो हम पाएँगे कि संख्या संबंधी ज्ञान की चार श्रेणियाँ कही जा सकती हैं। पहली स्थिति 'अनामांकित विचारणा' की है। यह उस स्थिति की ओर इंगित करती है जब मनुष्य अपने मन में संख्याओं में अंतर समझ तो सकता था, पर उसके व्यक्त

करने के लिए उसके पास उपयुक्त माध्यम नहीं था। वास्तव में हम इस प्रक्रिया को अपने आप में कई क्षेत्रों में अभी भी वर्त्तमान पाते हैं। अंतर्विचार बहुधा शब्दविहीन होता है। हमारी उलझी समस्याओं का हल कभी-कभी मस्तिष्क में ऐसे कौंध जाता है जिसके लिए उस समय कोई संज्ञा नहीं होती है। उसके बाद उसे हम भाषा के रूप में, गणितीय सूत्र के रूप में अथवा एक आकृति के रूप में व्यक्त करने में समर्थ होते हैं। आधुनिक कला में भी हमें भाषा के द्वारा भावों को व्यक्त करने की यह दीनता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। हम यदा-कदा कहते भी हैं कि हमारी वाणी उन भावनाओं को प्रकट करने में सक्षम नहीं हैं। कहावत भी है 'गूँगे के गुड़ का-सा स्वाद'। ऐसी स्थिति में ही कलाकार अपनी तूलिका से, अपने रंगों से हमारे हृदय की गहरी संवेदनाओं को स्पष्ट करता है।

इस प्रकार इस अनामांकित विचारणा की स्थिति में मनुष्य 'थोड़े और बहुत' का अंतर ठीक उसी प्रकार समझता है जैसे कि कोई बालक जो अभी बोलना भी नहीं जानता अपने खिलौनों के विषय में समझता है। पर उसकी बुद्धि खिलौनों की संख्या कुछ अधिक होने से भ्रम में पड़ जाती है। बालक को एक खिलौने और दो खिलौनों में अंतर मालूम होगा पर आठ और दस खिलौनों में अंतर तब तक नहीं मालूम होगा जब तक उसका गणना संबंधी ज्ञान कुछ और अच्छा न हो जाए। यहीं संख्या के अनामांकित ज्ञान के बाद की स्थिति आती है जब वह गणना करना सीख लेता है। उस समय वह अपने खिलौनों को गिन सकता था। 'थोड़े' और 'अधिक' का भेद और भी स्पष्ट और सुनिश्चित रूप ले लेता है।

वस्तुओं की गणना के बाद उनको याद रखना एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। एक बालक अपने खिलौने गिन लेता है। एक दूसरा बालक आकर उससे पूछता है—'तेरे पास कितने खिलौने हैं?' यदि गणना के थोड़े समय बाद ही यह प्रश्न पूछा गया हो तो वह अपनी स्मृति से बता देगा। पर अधिक समय बीतने पर वह भूल सकता है। इस स्थान पर उस संख्या को किसी चिह्न द्वारा अंकित करने का प्रश्न आता है। उस चिह्न से उसकी स्मरण शक्ति पर बिना जोर डाले वह फौरन कह सकता है कि उसके पास कितने खिलौने हैं। मनुष्य समाज के इतिहास में संख्याओं को अंक संकेतों के रूप में व्यक्त करना एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था। एक बार अंकन का विचार बीज रूप में प्रारंभ होने के बाद, उसमें उत्तरोत्तर सुधार एक सामान्य प्रक्रिया थी। हमारी वर्त्तमान अंकलेखन विधि सहस्रों वर्षों के क्रमिक विकास की भव्यतम उपलब्धि है।

गणना और अंकों को लिखने की विधि के प्रचार के बाद चौथी महत्त्वपूर्ण श्रेणी थी अंकगणित की सरल क्रियाओं की स्थापना। ये क्रियाएँ हैं जोड़, बाकी, गुणा और भाग। यह कहना कठिन है कि इन सभी अथवा इनमें से कुछ क्रियाओं की स्थापना संख्या को अंक-संकेतों में व्यक्त करने के प्रचलन के बाद हुई या पहले। संभवतः कुछ साधारण क्रियाएँ अंक-संकेतों के पूर्व ही प्रारंभ हो गई होंगी। जब मनुष्य ने 'एक और एक दो' कहना प्रारंभ किया उस समय जोड़ने की क्रिया का आविष्कार होना कहा जा सकता है। इसी प्रकार 'तीन व्यक्तियों में से एक के चले जाने पर कितने शेष रह गए?' इस समस्या के समाधान करने में जब मनुष्य सफल हुआ, तभी घटाने की क्रिया की स्थापना

हुई। हाँ, इन क्रियाओं का सुसंस्कृत स्वरूप अंक-संकेतों के आविर्भाव के पश्चात् ही संभव हुआ होगा। इनके क्रमिक विकास के साथ हमारा परिचय आगामी अध्यायों में हो सकेगा।

एक, दो, अनेक

मनुष्य जाति के प्रारंभिक ज्ञान की जानकारी के लिए जन-जातियों और 'सभ्यता' से अछूते कबीलों की भाषाओं का अध्ययन करने पर बहुमूल्य सामग्री मिलती है। यह निश्चित है कि सभी 'सभ्य' जातियाँ अपने विकास-क्रम में इन जन-जातियों की स्थिति से गुज़री होंगी। जिन जातियों की भाषाओं का अब तक अध्ययन किया गया है, उनमें ऐसी कोई भाषा नहीं मिली जिनमें संख्या-ज्ञान का नितांत अभाव हो। परंतु यह ज्ञान बहुधा अत्यंत सीमित ही मिला है। कभी-कभी तो यह ज्ञान १, २ या ३ तक ही सीमित होता है।

यदि यह कहा जाए कि कुछ मनुष्य जातियाँ दो से अधिक की संख्या की गणना नहीं कर सकतीं तो एकाएक विश्वास नहीं होगा। परंतु यह वास्तव में सत्य है। अण्डमान, अमरीका, आस्ट्रेलिया इत्यादि में कई कबीलों की भाषाओं की यही स्थिति है। कुछ भाषाओं में तो शुद्ध संख्या के लिए एक भी शब्द नहीं है। जैसे अमरीका में बोलीविया के चिक्कटो जाति में 'एक' का भाव 'एटमा' शब्द से व्यक्त किया जाता है। 'एटमा' का अर्थ है अकेला। एक से अधिक होने के भाव को व्यक्त करने के लिए कोई शब्द नहीं है। इससे थोड़े अधिक आगे हैं अमरीका के ही बोटोसूडो कबीले के लोग। उनकी भाषा में 'मोकेनम' शब्द का अर्थ है 'एक' और 'उरूह्' का 'एक से अधिक'। इस प्रकार उनकी भाषा में दो, तीन, चार, ... में कोई अंतर नहीं है। उन सबके लिए एक ही शब्द है 'उरूह्'।

ऐसा प्रतीत होता है कि दो से आगे संख्या का विस्तार सभ्यता में अपेक्षाकृत नवीन है। दीर्घकाल तक मनुष्य 'एक', 'दो' और 'अनेक' इन तीन संख्या शब्दों से काम चलाता रहा। संस्कृत में एक वचन, द्विवचन तथा बहुवचन का प्रयोग संभवतः इसी आदिम स्थिति की देन हो सकता है। तीन के लिए अंग्रेज़ी का वर्त्तमान शब्द 'थ्री' लैटिन शब्द 'ट्राई' से बना है। 'ट्राई' शब्द के दो अर्थ हैं 'तीन' और 'अनेक'। 'अनेक' इसका प्राचीन अर्थ रहा होगा जब संख्याएँ केवल 'एक, दो और अनेक' तक सीमित रही होंगी। जब संख्याओं का विस्तार तीन से ऊपर हुआ तब 'अनेक' के लिए तत्कालीन प्रचलित शब्द 'ट्राई' का अर्थ हो गया 'तीन'।

कई जन-जातियों में संख्या ज्ञान के तीन, चार अथवा पाँच तक विकसित होने के भी उदाहरण मिलते हैं। फूगन जाति में कउली, कंपानी और आतेन शब्दों का अर्थ १, २ और ३ होता है। इसी प्रकार 'बरोरों' में तीन संख्या-सूचक शब्द हैं कउए, मकउए और उअकुए। कुछ जातियों में तीन स्वतंत्र संख्यात्मक शब्दों के सहारे छह तक गिनती संभव है। आस्ट्रेलिया की एक जाति कमिलारोई के संख्या शब्द इस प्रकार हैं :

मल	१
बुलर	२
गुलिवा	३
बुलर-बुलर	४
बुलर-गुलिवा	५
गुलिवा-गुलिवा	६

द्रष्टव्य है कि यह पद्धति तत्त्वरूप में जोड़ की प्रक्रिया को भी समाहित किए है। बुलर-बुलर का अर्थ है 'दो और दो' अर्थात् चार।

यदि यह कहा जाए कि संख्या का तीन तक का ज्ञान मानव की लगभग प्रथम और प्रकृत अवस्था का ही द्योतक है तो अतिशयोक्ति न होगी। बड़ी संख्याओं का ज्ञान उसकी बुद्धि विकास के साथ हुआ होगा और वह सभ्यता की उन्नति का एक महत्त्वपूर्ण स्तंभ रहा होगा। कुछ समय पूर्व कप्तान पेरी ने अपना अनुभव बताया था कि एस्किमो जाति का कोई भी व्यक्ति ७ तक गिनने में एक न एक गलती अवश्य कर देगा।

क्या पक्षी गिन सकते है?

जैसा इस अध्याय के प्रारंभ में कहा गया है अन्य प्राणियों से मनुष्य की श्रेष्ठता का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण उसकी गणना शक्ति कही जा सकती है। अब तक यह माना भी जाता रहा है कि सभी प्राणियों में वही अकेला गणना करने में सक्षम है। परंतु अब वैज्ञानिक खोजों ने उसके इस अनुपम और गौरवपूर्ण स्थान पर संदेह प्रकट किया है। एक ओर तो ऊपर के उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि संख्या का साधारण ज्ञान भी मानव-जाति की एक अति नवीन उपलब्धि है। दूसरी ओर अब पशु-पक्षियों में भी संख्या ज्ञान का होना सिद्ध होता जा रहा है।

इस विषय में श्री गाल्टन के दक्षिण अफ्रीका के यात्रा संस्मरणों में कुछ मनोरंजक और शिक्षाप्रद उदाहरण मिलते हैं। उन्होंने लिखा है कि 'कुछ चिड़ियाँ चार अण्डे देती हैं। उनके घोंसलों में से उनके बिना जाने एक अण्डा आसानी से उठाया जा सकता है। किन्तु यदि दो अण्डे उठा लिए जाएँ तो चिड़िया अक्सर उस घोंसले को छोड़ देती है। इससे यह अनुमान लगता है कि उन चिड़ियों में दो-चार में भेद करने की क्षमता है। परंतु वे तीन और चार में भेद नहीं कर सकती हैं।'

इसी प्रकार एक प्रकृतिविज्ञ लेरॉय ने कौओं में संख्यात्मक ज्ञान के विषय में एक रोचक घटना लिखी है—'एक सरदार के वन-भवन की गुमटी में एक कौआ रहता था। उस कौए से वह सरदार बहुत परेशान हो गया था और उसे मारना चाहता था। परंतु जब भी सरदार उस स्थान पर जाता वह कौआ उसे आते देख कर उड़ जाता। और जब तक वह चला न जाए वापिस नहीं आता था। कौए को धोखा देने की नियत से वह सरदार एक दिन एक और मित्र को भी साथ ले गया। कौआ उनको आता देख उड़ गया। वे दोनों भवन के पास जाकर पेड़ों के झुरमुट में छुप गए। कुछ समय के बाद सरदार ने

अपने मित्र को वापिस भेज दिया। परंतु उसके जाने के बाद कौआ वापिस नहीं आया। जब सरदार स्वयं भी वापिस चला गया तब कौआ पूर्ववत् गुमटी पर वापिस पहुँच गया। अगले दिन सरदार दो और व्यक्तियों को साथ ले गया। उस दिन भी उसने पहले की तरह चाल चलने की कोशिश की। वे लोग एक-एक कर वापिस गए। पर कौआ भी होशियार निकला। जब तीनों ही वापिस चले गए, तभी वह गुमटी पर वापिस पहुँचा। तीसरे दिन चार व्यक्तियों के जाने पर भी वही हुआ। अंत में सरदार चार अन्य व्यक्तियों के साथ मिल कर गया। इस प्रकार वे कुल पाँच व्यक्ति वहाँ पहुँचे। पहले की तरह ही वे एक-एक कर वापिस जाने लगे। तीन व्यक्तियों के वापिस जाने तक तो कौआ वापिस नहीं पहुँचा, परंतु जब चार व्यक्ति चले गए तो वह यह समझ कर कि सभी चले गए वापिस आ गया। पाँचवें व्यक्ति ने, जो शेष रह गया था, कौए को मार डाला। इस प्रकार कौआ चार तक की गणना तो समझ सका परंतु पाँच होते ही वह चार और पाँच में भेद न कर सका। तात्पर्य यह है कि कौए की संख्या-बुद्धि चार तक सीमित है।'

इसी प्रकार कुछ अन्य प्राणियों में भी संख्या संबंधी विस्मयकारी ज्ञान मिलता है। कई जातियों के ततैये अपने बच्चों के आहार के लिए एक निश्चित संख्या में कीड़े लाते हैं। कुछ पाँच कीड़े लाते हैं, कुछ सदा दस ही, कुछ पंद्रह और कुछ ततैये चौबीस तक लाते हैं। प्रतिदिन जब भी निश्चित संख्या पूरी हो जाती है, वे अपना काम समाप्त समझ लेते हैं। उनके इस आचरण को समझाने के लिए यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक ततैये को कोई रहस्यपूर्ण और जन्मजात प्रेरणा प्राप्त है, जिससे वह निश्चित संख्या में कीड़े ले आते हैं। परंतु यह स्पष्टीकरण एक अन्य स्थिति में नहीं लागू होता है। एक विशेष जाति के ततैयों में नर मादा से बहुत छोटे होते हैं। माँ नर बच्चे को पाँच और मादा को दस कीड़े देती है। उसके इस व्यवहार से यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या वह कीड़ों की गणना करती है? इसका उत्तर यदि हाँ है तो निश्चय ही यहाँ हमें गणना का प्रारंभ मिलता है।

फ्राइबर्ग विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध प्राणिशास्त्री आचार्य ओ० कोहलर ने बड़ी सावधानी से चिड़ियों में संख्या-संबंधी ज्ञान को जानने के लिए प्रयोग किए। वह लिखते हैं: 'हमारी चिड़ियाँ गणना नहीं करती थीं, क्योंकि उनके पास शब्द नहीं थे। परंतु वे वास्तव में 'बिना नाम के अंकों को सोचने' में समर्थ हो गई थीं।' उनके कुछ प्रयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। एक प्रयोग एक विशेष जाति के तोतों पर था। उसमें एक तोते के सामने पाँच बक्स रखे जाते थे, जिन पर क्रमश: निश्चित आकार के दो, तीन, चार, पाँच और छ: निशान बने रहते थे। उन पाँचों बक्सों की पाँच चाबियाँ उनके सामने रखी जाती थीं। इन चाबियों पर भी उसी प्रकार क्रम से उसी आकृति के दो, तीन, चार, पाँच और छ: निशान बने रहते थे। इस तोते को पहले बराबर-बराबर निशानवाली चाबियों से बक्स खोलना सिखाया गया। उसके बाद प्रयोग में उन चाबियों का स्थान बदल दिया गया और बक्सों के सामने भिन्न संख्या चिह्नोंवाली चाबियाँ रख दी गई। तोते ने सही संख्या-चिह्नवाली चाबी चुन कर बक्स खोले।

इसके बाद प्रयोग में उन चिह्नों के आकार और क्रम भी बदल दिए गए। छोटे और बड़े आकार के निशान लगाए गए जो ५० गुने तक छोटे-बड़े थे। उनकी तरतीब में

भी मनमाने रूप से परिवर्त्तन किया गया। तोता इस प्रयोग में भी सफल हुआ। इस प्रकार परिवर्त्तनों के पश्चात् चाबी के और बक्स के निशानों में आकार-प्रकार, तरतीब इत्यादि में कोई समानता नहीं रह गई। उनमें केवल एक ही समानता रही। वह थी उन पर चिह्नों की संख्या का समान होना। किसी बाहरी सहायता के बिना तोते द्वारा सफलता-पूर्वक चाबी पहचान लेना उसके मानस में उन संख्याओं संबंधी विवेक का होना ही सिद्ध करता है।

इसी प्रकार आचार्य जी ने एक अन्य प्रयोग एक चोर कौवे पर किया। इस पक्षी को उन्होंने तरतीब से रखे हुए कई डिब्बों में से पाँच कीड़े खाने का शिक्षण दिया था। जैसे ही पाँच की संख्या पूरी हो जाती, वह अपने स्थान पर वापिस चला जाता। एक बार यह प्रयोग चल रहा था। प्रथम छः डिब्बों में क्रम से १, २, १, ०, १, २ कीड़े रखे हुए थे। चोर कौआ सदा की भाँति उन डिब्बों के पास आया। पहले तीन डिब्बों को खोल कर वह उनमें रखे कीड़े खाकर वापिस चला गया। इस प्रकार इस बार उसने केवल चार कीड़े ही खाए।

इस पर प्रयोग करनेवाला प्रेक्षक यह लिखने ही वाला था कि 'एक कम, ग़लत उत्तर', कि क्या देखता है कि वह चोर कौवा फिर लौटा। उस पक्षी ने उस समय एक उल्लेखनीय और अत्यंत विस्मयकारक कार्य किया। पहले वह क्रम से उन डिब्बों के सामने गया जिन्हें वह खाली कर चुका था। पहले डिब्बे के सामने जाकर उसने एक बार सिर झुकाने की क्रिया की। फिर दूसरे डिब्बे के सामने जाकर दो बार सिर झुकाया, तीसरे के सामने एक बार। इसके बाद वह पंक्ति में रखे अगले डिब्बे की ओर बढ़ा। उसने चौथा डिब्बा खोला, उसमें उसे कुछ नहीं मिला। पर वह वहाँ रुका नहीं। उसके बाद अगले डिब्बे पर गया और उसमें रखा एक कीड़ा खा लिया।

यह करने के बाद उसने आगे रखे डिब्बों को नहीं छुआ और नियत कार्य पूर्ण करने का-सा प्रदर्शन करते हुए वापिस चला गया। पक्षी का प्रत्येक डिब्बे के सामने अपने पूर्व कार्य को दुहराने का नाटक-सा करते हुए सिर झुकाना यह सिद्ध करता है कि उसे अपना पहला कार्य याद था। उससे यह भी प्रतीत होता है कि पहली बार चले जाने के बाद उसे अहसास हुआ कि उसने कार्य पूरा नहीं किया। इसीलिए वह वापिस आया। पहले तीन डिब्बों तक उसने अपने द्वारा किए वास्तविक कार्य का नाटक-सा किया। जब वह अंतिम दो डिब्बों पर आया, तो उसने कार्य पूरा किया। आचार्य जी के अपने मतानुसार इसका अर्थ हुआ कि दुबारा आकर जब पक्षी ने एक-एक बार फिर सिर झुकाया तो उसने एक, दो इत्यादि का मानसिक अंकन किया और इस प्रकार वह 'बिना नाम की सख्या को सोचने' में समर्थ हुआ।

भाषा—मानव श्रेष्ठता का आधार?

यह कहा जा सकता है कि यह सब सिखाए हुए पशु-पक्षियों का ज्ञान तो ठीक है, पर अंततोगत्वा वे तो सिखाए हुए हैं। इससे उनके संख्या-ज्ञान के संबंध में निष्कर्ष पर नहीं

पहुँचा जा सकता, क्योंकि किसी ने किसी पक्षी को उसकी प्रकृत अवस्था में गणना करते हुए नहीं देखा। यह कहना उचित है, परंतु इस विवेचन में एक बात का ध्यान रखना नितांत आवश्यक है। और वह है कि पशु-पक्षियों और मनुष्यों में सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर भाषा के प्रयोग से उत्पन्न होता है। केवल मनुष्य ने ही वस्तुओं, विचारों, संबंधों इत्यादि सबको नाम दिए हैं। बालक तोते की भाँति सबसे पहले शब्द सीखता है, परंतु कुछ शब्द सीखने के बाद वह उनसे नये वाक्य बना सकता है—ये वाक्य वस्तु-जगत या विचार-जगत के विषय में सत्य कथन प्रस्तुत करते हैं। ध्यान रहे कि नये वाक्य बनाना साधारण प्रकार का सीखना नहीं है वरन् यह क्षमता मानव में एक जन्मजात विशेषता कही जा सकती है जो अन्य प्राणियों में नहीं है। यह जन्मजात क्षमता ही मनुष्य का श्रेष्ठतम् और निर्णायक परमाधिकार है जिसके आधार पर वह पशु-पक्षियों से ऊपर है। शब्दों का यह उपयोग कभी किसी पशु-पक्षी ने नहीं सीखा ।

एक बार संख्या-शब्दों का सहारा पाने के बाद मनुष्य का संख्या संबंधी ज्ञान बढ़ता ही गया। वह संख्या से संख्यांक तक पहुँचा और फिर उसने उन्हें लिखना भी सीखा। इसका विवेचन हम आगे अध्याय में करेंगे। यहाँ हम संख्या संबंधी ज्ञान के आधार पर उसकी प्रारंभिक उपलब्धियों पर ही ध्यान केन्द्रित करेंगे।

यदि हम मनुष्य की आदिम अवस्था से किंचित् आगे चलें तो पाएँगे कि यद्यपि मनुष्य की गणना-बुद्धि आवश्यकता के अनुसार बहुत विकसित हो गई थी, परंतु उसे शुद्ध संख्या का ज्ञान बहुत बाद में हुआ। उस अवस्था में उसके लिए संख्या का कोई अमूर्त्त भाव-रूप नहीं था वरन् उसका उपयोग वर्णनात्मक ही था। चार आम, पाँच आदमी इत्यादि कहने का तात्पर्य सभी भली-भाँति समझते थे, परंतु 'चार' या 'पाँच' स्वयं में कुछ नहीं थे। शुद्ध संख्या का विचार सभ्यता में बहुत देर से आया ।

दस ही अँगुलियाँ क्यों?

बचपन में, याद होगा, जब हम प्रारंभ में गिनती सीखते हैं तब मन में गणना करने के बजाय अँगुलियों का सहारा लेते हैं। हमारी संख्या-पद्धति में उतने ही संख्या-शब्द हैं, जितनी हमारी अँगुलियाँ। किसी ने कहा, क्या ही सुंदर संयोग है यह ! कहीं अँगुलियाँ कम होतीं तो गणना में कठिनाई होती ! परंतु वस्तुतः यह संयोग नहीं है वरन् हमारे संख्या-शब्दों की यह विशेषता (उनका दस होना), हमारी अँगुलियों की संख्या के दस होने के कारण है। हम आगे यह देखेंगे कि कुछ विद्वानों का मत है कि इससे भी अच्छी अन्य पद्धतियाँ हो सकती हैं, परंतु अब दस पर आधारित पद्धति प्रचलित है, इसलिए उससे कोई छुटकारा नहीं।

दुनिया की अधिकतर जातियों के संख्या-शब्दों का आधार ५ या १० ही है। हम यदि हिन्दी की जननी संस्कृत के संख्या शब्दों को देखें तो पाएँगे कि उसमें दशाधारी संख्या शब्द हैं। एकम्, द्वि, त्रीणि, चत्वारि, पंचम्, षष्ठम्, सप्तम्, अष्ठम्, नवम्, दशम्—ये तो हैं पहले दस संख्या शब्द जो एक दूसरे पर अवलंबित नहीं हैं। परंतु ग्यारह से आगे की

संख्या इन्हीं दस शब्दों के आधार पर बनी

एकादश	=	एकम्+दशम्	= १+१०
द्वादश	=	द्वि+दशम्	= २+१०
अष्टादश	=	अष्टम्+दशम्	= ८+१०
ऊनविंशति	=	विंशति—एकम्	=२०—१

बीस के लिए एक नया शब्द 'विंशति' आया है और पुनः एक, दो इत्यादि को जोड़कर आग की संख्या बनाई गई है।

फ़्लोरेंस द्वीप की भाषा के संख्या-शब्द पाँच पर आधारित हैं। इस भाषा में 'पाँच' और 'हाथ' दोनों के लिए एक ही शब्द है 'लिमा'। उनके कुछ संख्यात्मक शब्द हैं—सा(१), ज्वा(२), लिमा(५), लिमा सा(६), लिमा ज्वा(७)। इसी प्रकार रूसी भाषा में भी पाँच और हाथ दोनों के लिए एक ही शब्द है 'प्याष्ट'। यह स्पष्ट है कि पाँच और हाथ के लिए एक ही शब्द के उपयोग का कारण हाथ में पाँच अँगुलियों का होना है। पाँच से आगे गिनने के लिए दूसरे हाथ की अँगुलियाँ गिननी पड़ती हैं, जो दस तक काम देता है। कहीं-कहीं उसके बाद पैरों की अँगुलियाँ भी काम में आती ; ओरीनीको प्रदेश की माईपुरे जाति की भाषा के कुछ शब्द इस प्रक्रिया पर आधारित । उनके शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं :

५—केवल एक हाथ
६—दूसरे हाथ की भी एक अँगुली
७—दूसरे हाथ की भी दो अँगुली
१०—दो हाथ
११—पैर की भी एक अँगुली
१५—दो हाथ, एक पैर
२०—पूरा आदमी

इसी प्रकार पाइंट बरो की एक उपजाति में भी १० के स्थान पर २० को संख्या का आधार माना है। उनके यहाँ ३० के लिए शब्द है 'एक मनुष्य समाप्त और दूसरे की दस' और ४० के लिए 'दो मनुष्य समाप्त।'

बाएँ हाथ से गणना-प्रारंभ

अँगुलियों के सहारे गिनती गिनने के ढंग में सभी जातियों में अत्यधिक समानता पाई जाती है। न केवल सभी जगह अँगुलियों का उपयोग होता है, वरन् गणना सदा ही बाएँ हाथ की छिगुनी से प्रारंभ कर अँगूठे की ओर बढ़ती है। हाथ में पाँच अँगुलियाँ हैं, इसलिए वह संख्या 'पाँच' को निरूपित करता है। पाँच से अधिक गिनने के लिए कभी-कभी उसी हाथ में फिर से दूसरी ओर से अँगुलियों को गिनना शुरू कर देते हैं, परंतु अधिकांश जातियों में दूसरे हाथ (दाहिने) का उपयोग करते हैं, हाँ उसमें गणना की

दिशा उल्टी होती है, अर्थात् अँगूठा ६ को निरूपित करता है, तर्जनी ७ को, मध्यमा ८, अनामिका ६ और छिगुनी १० को।

गणना में एकरूपता के लिए प्रत्यक्ष रूप से कोई कारण नहीं दिखाई देता है। बच्चों में गणना करने के ढंग का अध्ययन करने पर दाहिने या बाएँ हाथ के लिए उनमें कोई विशेष अभिरुचि का आभास नहीं मिलता है। यह अवश्य है कि धीरे-धीरे बच्चे बाएँ हाथ का प्रयोग करने लगते हैं। इसके लिए संभवत: कारण यह है कि जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, वह लिखने के लिए दाहिने हाथ का अधिकाधिक उपयोग करने लगता है। अंकगणित की साधारण क्रियाओं को करते समय जब उसे अँगुलियों का सहारा लेने की आवश्यकता होती है तब स्वाभाविक ही है कि वह बाएँ हाथ को उपयोग में लाए। इसके लिए अलबत्ता कोई खास कारण नहीं दिखाई देता कि वह गणना छिगुनी से क्यों प्रारंभ करता है, अँगूठे से क्यों नहीं।

जन-जातियों में बाएँ हाथ की छिगुनी से गणना प्रारंभ करने की लगभग सार्वभौमता के लिए लेफ़्टिनेंट कुशिंग का मत इस प्रकार है—आदिम अवस्था में मनुष्य अपने अस्त्रों को साधारण रूप से अपने से अलग नहीं हटाता होगा। जब भी उसे गिनने की आवश्यकता होती होगी तो वह जुनी जाति के लोगों की भाँति ही व्यवहार करता होगा। इस जाति का पुरुष ऐसे अवसर पर अपना अस्त्र दाहिने हाथ से बाईं काँख में दबा लेता है। इस प्रकार बाईं बाँह अचल-सी हो जाती है, परंतु उसका दाहिना हाथ स्वतंत्र रहता है और उसके सहारे वह बाएँ हाथ की अँगुलियों पर गणना कर सकता है। इस गणना-क्रिया के लिए बायाँ हाथ कोहनी से ऊपर की ओर मोड़ लेता है। इस स्थिति में हथेली स्वाभाविक रूप से शरीर की ओर होती है। दाहिने हाथ के सहारे बाएँ हाथ की अँगुलियों को गिनने की क्रिया सबसे पास वाली अँगुली से प्रारंभ होती है। ऊपर वर्णित स्थिति में दाहिने हाथ के सबसे पास छिगुनी होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि यही मनुष्य-जाति की छिगुनी से गणना प्रारंभ करने की वर्त्तमान विधि का मूल कारण रहा होगा।

कितनी गहरी जड़ें हैं हमारे साधारण से भी क्रिया-कलापों की !

कुछ अन्य उपकरण

गणना में अँगुलियों की सहायता संभवत: सर्वाधिक प्राचीन है। उसके बाद और भी अनेक सहायक रीतियाँ 'असभ्य' और 'सभ्य' सभी जातियों में अपनाई जाती रही हैं। कहीं लकड़ियाँ या टहनियाँ काम में लाई जाती हैं, कहीं कंकड़ या कौड़ी, कहीं पर साधारण खरोंच या लकड़ी पर निशान, कहीं फलों की मिगी या अनाज के दाने, तो कहीं डोरी पर बँधी गाँठें। ये सभी गणना विधियाँ, चाहे उसमें किसी भी उपकरण का भी उपयोग क्यों न हो, तत्त्व रूप से एक ही प्रक्रिया के द्योतक हैं। मस्तिष्क जिन विचारों को सरलता से ग्रहण नहीं कर सकता या याद नहीं रख सकता, उन्हें ग्रहण करने और समझने के लिए उसे किसी मूर्त्त संबल की आवश्यकता होती है। ये उपकरण उस संबल का काम करते हैं। कुछ उदाहरण इस कथन को स्पष्ट कर देंगे।

कुछ शताब्दियों पूर्व मेडागास्कर में सेना के जवानों को गिनने का एक विचित्र परंतु सरल तरीक़ा प्रचलित था। यात्रियों के वर्णन के अनुसार सेना के नायक के सामने से प्रत्येक जवान को गुजरना होता था। जैसे ही एक जवान उधर से गुज़र जाता था एक कंकड़ ज़मीन पर गिरा दिया जाता था। ज़मीन पर दस कंकड़ हो जाने पर उनकी एक ढेरी बना दी जाती थी और उन्हें अलग रख दिया जाता था। इस प्रकार जब दस ढेरियाँ बन जाती थीं, तब एक कंकड़ एक अलग स्थान पर रख दिया जाता था और उन दस ढेरियों के कंकड़ अन्य कंकड़ों में पूर्ववत् मिला दिए जाते थे। यह अलग रखा हुआ एक कंकड़ १०० के पूरे होने का द्योतक था और १०० जवानों को प्रतिरूपित करता था। इसी प्रकार ढेरियाँ बना-बनाकर संपूर्ण सेना की गिनती की जाती थी।

गाँवों में आज भी वृद्धाएँ छोटा-मोटा हिसाब गेहूँ के दानों से किया करती हैं। यदि किसी पर ६५ रुपए उधार हैं और उससे २१ रुपए वापिस आ गए तो यह जानने के लिए कि कितने रुपये बाक़ी बचे, वह पहले ६५ गेहूँ के दाने गिन लेगी और फिर उनमें से २१ गिनकर एक ओर निकाल देगी । फिर शेष बचे दानों को गिनेगी । इस प्रकार उसे ज्ञात हो जाएगा कि ४४ रुपये बाक़ी बचे हैं।

मनुष्य के मानसिक विकास में अँगुलियों या अन्य उपकरणों के सहारे हिसाब लगाने की क्रिया का एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। जोड़, बाक़ी आदि की अमूर्त्त प्रक्रियाएँ यहाँ तक कि स्वयं गणना का शुद्ध रूप भी मस्तिष्क के सामने कुछ कठिनाई उपस्थित करते हैं। इन कठिनाइयों को जीतने के लिए कृत्रिम सहयोगी क्रियाओं का सहारा लिया जाता है। सभ्यता की शैशवावस्था में तो गणना भी केवल उन्हीं के सहारे संभव हो पाती है।

कुछ अधिक मानसिक विकास होने पर ये उपकरण आवश्यक तो नहीं रहे, पर उन्हें सहयोगी रूप में स्वीकृत किया जाता रहा है। यद्यपि उनके बिना भी समस्याएँ हल की जा सकती थीं, परंतु मात्र सुविधा के लिए उनका सहारा लिया जाता रहा। अब हम मानसिक विकास की दृष्टि से इस स्थिति में हैं कि ये उपकरण किसी प्रकार भी आवश्यक नहीं हैं। परंतु ये इतने उपयोगी हैं कि हम भी इनके सहारे को छोड़ना नहीं चाहते। जापान और चीन में आज भी दो हज़ार वर्ष पुराना अंक-गणक सुविधा की दृष्टि से ही काम में लाया जाता है और उसका प्रयोग बढ़ रहा है। हम भी १३+६ जोड़ना चाहते हैं तो सहसा अपने बाएँ हाथ की छिगुनी पर १४, १५, १६,......कहने लगते हैं।

अध्याय ३

संख्या से संख्यांक : विभिन्न देशों में अंकों के उद्‌भव की समीक्षा शून्य का आविष्कार : दशमलव पद्धति

संख्या से संख्यांक

हमें यह नहीं मालूम कि मनुष्य ने सबसे पहले कब भाषा के द्वारा आपस में विचारों का आदान-प्रदान करना प्रारंभ किया। पर ऐसा संभव है कि शब्दों का बोलना पहले शुरू हुआ होगा और उनका लिखना बाद में। इसी प्रकार संख्या-शब्दों का उपयोग पहले प्रारंभ हुआ होगा और उनके लिए संख्या-संकेत बाद में ही आए होंगे। मनुष्य ने 'दो' शब्द के लिए '२' लिखना बहुत देर में ही सीखा होगा।

'मोहनजोदड़ो': भारत में संख्या चिह्न

संख्याओं का कब और कैसे आविर्भाव हुआ इसकी खोज हमें इतिहास के भूले-बिसरे युगों की ओर ले जाती है, जिनका हमें पर्याप्त ज्ञान भी नहीं है। भारत में लेखन-क्रिया कब प्रारंभ हुई, इस पर विद्वानों में मतभेद हैं। परंतु 'वशिष्ठ-धर्मसूत्र' में, जो मूलत: 'ऋग्वेद' की एक शाखा के अंतर्गत था, कुछ ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि वैदिक काल में लेखन क्रिया का प्रयोग होता था। 'ऋग्वेद' में उल्लेख है 'सहस्त्रं मे ददतो अष्टकर्ण्य:' अर्थात् 'मुझे ऐसी सहस्र (गायें) प्रदान करो जिनके कानों पर ८ लिखा हो'। पशुओं के कानों पर मालिक से संबंध सूचित करनेवाले चिह्न बनाने की प्रथा अभी भी मिलती है।

भारत में प्राचीनतम संख्या चिह्न मोहनजोदड़ो में प्राप्त मुहरों और लेखों में मिलते हैं। ये चिह्न अभी तक पूरी तरह से पढ़े नहीं जा सके हैं। एक दूसरे के पास खड़ी पाइयाँ या एक के ऊपर एक करके रखी हुई पाइयाँ संभवत: अंकों को सूचित करती हैं। १ से १२ तक के अंक निम्न प्रकार से चित्रित किए मिलते हैं :

यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय २०, ३०, १०० या और बड़ी संख्याओं को लिखने के लिए संकेत थे अथवा नहीं।

संख्या-चिह्नों का विकास

निश्चयात्मक इतिहास के लिए हमें मिस्र, सुमेर, मेसोपोटामिया इत्यादि की ओर देखना होगा। 'एक' के लिए सभी देश प्राचीन काल में '१' की तरह का चिह्न प्रयोग में लाते थे। कम से कम पाँच हज़ार वर्ष पूर्व मिस्र निवासी इस चिह्न को मिट्टी के बर्तनों पर बनाते थे और पत्थरों में खोदते थे। इसके कुछ समय बाद ही सुमेर निवासियों ने बेबीलोन वालों को मिट्टी की ईंटों पर इसे बनाना सिखाया। संभवतः यह चिह्न एक उठी हुई उँगली का प्रतीक था, जिनके सहारे संख्या गणना प्रारंभ में लोग करते थे।

कभी-कभी कंकड़ या कौड़ी की शक्ल के चिन्ह 'O' अथवा एक आड़ी रेखा भी '—' एक के लिए प्रयोग में आती थी।

'दो' के लिए दो अँगुलियों का प्रतीक ।। अथवा दो आड़ी रेखाएँ = प्रयोग में आती थीं। यदि हम ।। को बिना कलम उठाए तेजी से बनाए तो एन (N) चिह्न बन जाएगा। यह चिह्न उर्दू के दो के अंक '٢' के आकार से मिलता है। इसी प्रकार दो आड़ी रेखाओं = को तेजी से लिखने पर ज़ेड (Z) बनता है, जो कालांतर में हमारे २ में बदल गया। = चिह्न आज भी चीन और जापान में 'दो' के लिए प्रयोग में आता है। इसी प्रकार सुदूर-पूर्व का तीन के लिए निशान ≡ ज्यों-का-त्यों पुराने समय से चलता आ रहा है, भारत में तीन आड़ी रेखाओं ≡ का स्वरूप ३ हो गया और अरब देशों में तीन अँगुलियों का प्रतीक ।।। का रूपांतर '٣' हो गया।

कीलाकार लिखावट

पुराने ज़माने में कीलाकार (कूनीफ़ॉर्म) लिखावट का प्रचलन था। मेसोपोटामिया की घाटी में इसका प्रारंभ हुआ था। वहाँ अन्य कोई लेखन सामग्री न होने से मिट्टी की ईंटों पर लकड़ी से निशान बना दिए जाते थे जो साधारणतः त्रिकोण के आकार के होते थे। कीलाकार अंक I II III क्रमशः १, २ और ३ के लिए प्रयोग में आते थे। वे चिह्न सबसे पहले प्राचीन सुमेरिया और चेलडिया की मिट्टी की ईंटों पर बने मिलते हैं। परंतु बाद में बेबीलोनिया, हिटाइट, असीरिया तथा अन्य जातियों के लेखों

में भी उनका प्रयोग प्रचलित हुआ। वे पश्चिम में मिस्र से लेकर पूर्व में फ़ारस और उत्तर में एशिया माइनर तक प्रचलित हुए। उनका प्रयोग लगभग पाँच हज़ार वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ और उन्हें लगभग तीन हज़ार साल तक काम में लाया गया।

कभी-कभी संख्या लिखने में बेबीलोन वाले गोलाकार लकड़ी का उपयोग भी करते थे जिसके द्वारा बनाए गए 'एक' का आकार कंकड़ के समान होता था। इस प्रकार वहाँ दो प्रकार के संख्या-अंक काम में आते रहे हैं:

त्रिकोणी आकार के अंक

गोलाकार अंक

१   १०   ६०   ६० × १०

यदि हम १, २, ३ के आगे संख्या की कहानी पर विचार करें तो यही अनुमान होगा कि ४ के लिए चार सीधी या आड़ी (।।।। या ☰) रेखाओं का प्रयोग मिलना चाहिए। वास्तव में कहीं-कहीं ऐसा प्रचलित भी था। सुमेरिया में ४ के लिए चार चिह्न (IIII) लगाए जाते थे तथा यूनान में भी ।।।। खड़ी रेखाओं का उपयोग होता था। परंतु बाद में इस प्रणाली में कुछ परिवर्त्तन हुए जिनका ज़िक्र हम आगे करेंगे।

भारतीय अंक

अंकों के लिए आड़ी-टेड़ी रेखाओं के उपयोग प्राचीन काल में प्रायः ६ तक के अंकों के लिए मिलता है। परंतु ४ या ४ से अधिक के अंकों के लिए कालान्तर में उसके दूसरे रूप में मिलते हैं। डॉ० ब्रजमोहन ने अपनी पुस्तक 'गणित का इतिहास' में नागरी के १ से ६ तक के अंकों को आवश्यक संख्या में रेखाओं का ही समुच्चय माना है। उनके अनुसार उनका आकार निम्न प्रकार देखा जा सकती है:
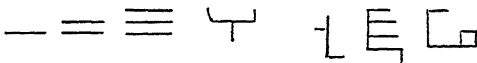
डॉ० ब्रजमोहन कहते हैं कि चिह्नों के इन रूपों में विकार लिखने में कलम बार-बार न उठाना पड़े इस कारण हुआ। यदि रेखाओं की संख्या के आधार पर हमारे सभी अंकों के विकसित होने का सिद्धांत ठीक है, तो प्रथम समस्या तो यह है कि उन्हें डॉ० ब्रजमोहन के अनुमान के अनुसार आड़े-तिरछे रखने की क्यों आवश्यकता हुई। हमने मोहनजोदड़ो की लेखन-विधि में एक विशेष ढंग से रेखाओं का क्रम ऊपर देखा है। उसी प्रकार मिस्र में भी एक अन्य क्रम मिलता है जिसका ज़िक्र हम नीचे कर रहे हैं। परंतु कहीं भी डॉ० ब्रजमोहन द्वारा अनुमानित संरचना नहीं मिलती।

मिस्र देश

हम गणना पर विचार करते समय यह देख चुके हैं कि मनुष्य की अँगुलियों की

संख्या दस होने के कारण अधिकांश जातियों में गणना का आधार दस होता है। इसीलिए संख्याओं में भी दस के लिए एक विशेष चिह्न के उपयोग करने की परिपाटी पाते हैं। दस के बाद बीस, तीस इत्यादि के लिए भी विशेष चिह्न प्रयोग में आते रहे हैं। दस के आधार पर प्राचीनतम संख्या-चिह्न संभवतः मिस्र देश के कहे जा सकते हैं। वे चिह्न इस प्रकार हैं :

इस प्रणाली में २७,८५९ के लिए निम्न रूप में अंकित किया जाएगा:

इस प्रकार इन्हीं मूल चिह्नों को बार-बार उपयोग कर बड़ी संख्याएँ लिखी जाती थीं। एक लाख लिखने के लिए १०,००० के लिए प्रयुक्त चिह्न को दस बार और दस लाख लिखने के लिए सौ बार लिखना होता था। यह प्रणाली पश्चिम में बहुत समय तक चली और लगभग १८वीं शताब्दी में ही स्थान-मान पर आधारित भारतीय अंक पद्धति पूरी तरह वहाँ चालू हो पाई। मिस्र की अंक पद्धति में खड़ी रेखाओं के अलावा अन्य चिह्न उन संख्याओं के लिए क्यों अपनाए गए, यह नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए ‘ ’ ही दस के लिए क्यों अथवा ‘ ’ हज़ार के लिए क्यों उपयोग किया गया इसका कोई स्पष्ट कारण प्रतीत नहीं होता है।

यूनान में

यदि हम अपनी दृष्टि यूनान के अंकों के विकास की ओर डालें तो वहाँ अन्य बड़ी संख्याओं के लिए जो चिह्न उपयोग में लाए गए हैं, उसके लिए स्पष्ट आधार मिलता है। यूनान में अंक लिखने की दो रीतियाँ थीं। पहली रीति में अंकों के लिए प्रयुक्त शब्दों का पहला अक्षर उस अंक के लिए प्रयोग किया जाता था। एक प्रकार से यह छोटे में लिखने की प्रवृत्ति हमें आज भी अनेक क्षेत्रों में मिलती है, विशेष कर गणित में। हम अपने नामों को भी संक्षेप में लिखते हैं। मोहनदास करमचंद गांधी के लिए 'मो० क० गांधी' लिखते हैं। इसी प्रकार हिसाब में रुपया शब्द पूरा न लिखकर हम 'रु०' से ही काम चलाते हैं। इस सिद्धांत पर आधारित यूनान की संख्या पद्धति निम्न प्रकार थी:

सख्या	सख्या शब्द	प्रथमाक्षर
५	पेंटा	Γ अथवा П (पाई)
१०	डेसा	Δ (डेल्टा)
१००	हेक्टा	H (एच)
१,०००	किलो	X
१०,०००		M

इस प्रकार—

२२८६६= MMXXΓ̄X HHHΓ̄Δ ΔΓIIII

यूनान की दूसरी प्रचलित पद्धति में वर्णमाला के अक्षरों का उपयोग होता था। उनकी वर्णमाला के प्रथम नौ अक्षर १ से ६ तक अंकों के लिए, अगले नौ अक्षर, १०, २०,.......... ६० के लिए तथा अगले नौ १००, २००,........ ६०० के लिए उपयोग में आते थे। परन्तु इस पद्धति का प्रचलन कुछ विशेष अधिक न था।

रोमी अंक

पश्चिम की नवीनतम अंक-पद्धति रोम की है। आज भी हम घड़ियों में अथवा अंग्रेज़ी की पुस्तकों में विशेष संख्या लिखने के लिए उसका उपयोग पाते हैं। इस पद्धति में खड़ी लकीरों को छोड़ केवल छः अन्य चिह्न हैं:

I	V	X	L	C	D	M
१	५	१०	५०	१००	५००	१०००

एक (I) के बाद पहला नवीन चिह्न 'V' संभवतः एक हाथ को निरूपित करता है जिसमें पाँचों अँगुलियाँ उठी हों। अगला नवीन चिह्न दस के लिए प्रयुक्त है। उसके लिए दो धारणाएँ हैं। पहला अनुमान है कि दस का चिह्न 'X' दो 'V' से मिल कर बना हुआ प्रतीत होता है X = V/Λ। दूसरा अनुमान है कि पूर्वकाल में वस्तुओं की गणना करने के लिए रेत या धरती पर पाइयाँ लगाते जाते थे। अंत में उन सबको गिन लिया जाता था। उन्हें गिनने की सहूलियत के लिए दस पाइयों को काट देने की परिपाटी रही होगी। उसी काटने के निशान को ही धीरे-धीरे दस का प्रतीक मान लिया गया। आज भी बालक कुछ खेलों में रेखाओं को गिनने के लिए इसी प्रक्रिया का उपयोग करते हैं। इस प्रकार बाईस खड़ी लकीरों को गिनकर निम्न प्रकार चिह्न लगा दें तो गिनने में सुविधा होगी—

|||||||||||||||||||||| —और ~~||||||||||~~ ~~||||||||||~~ || = XX||

बिना कटी रेखाओं को देखकर एकाएक यह जानना कठिन है कि उनकी संख्या क्या है। पर कटी हुई रेखाओं को दाहिनी ओर देखते ही पता लग जाएगा कि बाईस हैं। उसी को संक्षेप में 'XX||' लिखा जाने लगा होगा।

मालूम होता है कि सौ के लिए लैटिन शब्द 'सेंटम्' का पहला अक्षर C और हज़ार के लिए लैटिन शब्द 'मिले' का पहला अक्षर M होने के कारण उन संख्याओं के

लिए क्रमश: C और M प्रयोग में आने लग होंगे। M के उपयोग के पूर्व बहुधा एक हजार के लिए (I) का चिह्न प्रयोग में आता था। इसका आधा अर्थात् (I)) होता है। इसी के आधार पर D चिह्न का प्रयोग ५०० के लिए किया जाने लगा होगा। संभव है कि पचास के लिए L का प्रयोग भी C चिह्न के नीचे के आधे हिस्से के रूप में अर्थात् L का अपभ्रंश होकर हुआ हो।

इस पद्धति में भी किसी लिखी हुई संख्या का मान निकालने के लिए उसमें प्रयुक्त प्रत्येक चिह्न का मूल्य जोड़ कर संख्या का मूल्य निकाला जाता है। इस प्रकार VII का अर्थ हुआ V+II (५+२) अर्थात् ७। पुस्तकों का छपना शुरू होने के पहले ६ के लिए VIIII लिखा जाता था, पर अब उसे IX के रूप में लिखा जाता है। इसमें बाईं ओर लकीर रखने का अर्थ घटाना हुआ। X में से 'I' को घटाया (X—I=अर्थात् १०—१) तो मूल्य 'नौ' में प्राप्त होता है। इसी प्रकार ४ भी IIII के स्थान पर IV लिखा जाने लगा है यद्यपि कई घड़ियों में अभी भी उसका IIII रूप देखा जा सकता है। इस प्रकार ऋण-सिद्धांत का प्रयोग इन कतिपय अंकों में होता है। इस ऋण-सिद्धांत का प्रथम उल्लेख लगभग ४००० वर्ष पूर्व बेबीलोन की मिट्टी की मुद्राओं में मिलता है। इन मुद्राओं में ([illegible]) चिह्न घटाने के अर्थ में प्रयोग होता था। इस प्रकार—

[illegible]
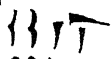
का अर्थ हुआ १०+१०—१ अर्थात् १९।

अब हम यदि इन संख्या-चिह्नों के आधार पर बड़ी संख्याओं के लिखने में बेढंगे उपयोग को देखें तो आश्चर्य होगा कि मानव समाज इस प्रकार की कठिनाई को क्यों इतने समय तक उठाता रहा। एक रोमी लेख में २३,००,००० लिखने के लिए उनकी सबसे बड़े संख्या चिह्न ((((I)))) (जो एक लाख के लिए प्रयोग में आता था) को २३ बार खोदा गया। इस प्रकार उस शिलालेख में इस लेखन-पद्धति का बढंगापन स्पष्ट था।

यदि हम यह ध्यान रखें कि अधिकांश लेखों में एम (M) (हज़ार के लिए संख्या-चिह्न) ही बड़ी से बड़ी संख्या प्रयुक्त होती थी तो एक छोटी सी संख्या १८,२५५ भी एक पूरी सतर में समा पाएगी।

MMMMMMMMMMMMMMMMMMCCLV

और २३,००,००० के लिए तो लगभग दस पृष्ठ चाहिए जिन पर २३०० M चिह्न बनाए जाएँ।

इस प्रकार बड़ी संख्याओं को लिखने का परेशानी पश्चिम में वहुत काल तक रही। इंग्लैण्ड में सोलहवीं शताब्दी में (सन् १५६८ ई०) गणित की एक प्रसिद्ध पुस्तक में एक बड़ी संख्या ४५१,२३४,६७८,५६७ को इस प्रकार लिखने की विधि बताई गई थी—

चार cliM, दो cxxxiiii, दस लाख, छ: clxxviiiM,
पाँच clxvii

यह तो एक अच्छी ख़ासी पहेली-सी लगती है। इसी 'पहेली' को हम आधुनिक पद्धति

से लिखें तो कुछ समझ में आएगी—

{(४C+५१) १,०००+२C+३४} १०,००,०००+(६C+७८) १,०००+५C+६७

={(४००+५१) १,०००+२००+३४} १०,००,०००+(६००+७८) १,०००+५००+६७

=४,५१,२३४×१०,००,०००+६७८×१००+५×१००+६७

=४,५१,२३,४६,७८,५६७

वास्तव में ये रोमी संख्याएँ यूरोप में साधारण काम-काज के लिए अठारहवीं शताब्दी तक प्रयोग में आती रहीं। भारतीय अंक-पद्धति (जिसे हम सब आज प्रयोग कर रहे हैं) यूरोप में लगभग १,००० वर्ष पूर्व पहुँच तो चुकी थी पर उसका उपयोग बहुत काल तक इसलिए नहीं हुआ कि वे रोमी अंकों की अपेक्षा सरलता से बदले जा सकते थे और इस प्रकार धोखाधड़ी की संभावना थी। उदाहरण के लिए ० को एक छोटी-सी लकीर लगाकर 9 या 6 (अंग्रेजी के ९ तथा ६) बनाया जा सकता था। छपाई शुरू होने के बाद और गणित में आवश्यकता पड़ने के साथ भारतीय अंकों का प्रयोग बढ़ा और सार्वभौम हो गया।

प्राचीन भारत की झलक

भारत में मोहनजोदड़ो सभ्यता के अंकों के बाद उनका इतिहास स्पष्ट नहीं है। सम्राट अशोक के समय में शिलालेखों पर कुछ अंक मिलते हैं। उस समय के यात्री भी सड़क के किनारे दूरी बताने के लिए पत्थरों का होना बताते हैं। इन सब वृत्तान्तों से यह स्पष्ट है कि अंकों का प्रयोग ईसा पूर्व दूसरी या तीसरी सदी में भारत में काफ़ी कुछ प्रचलित था। परंतु उस समय यूरोप की भाँति हमारे यहाँ भी बड़ी संख्याओं के लिए विशेष चिह्न मिलते हैं, जिसका अर्थ है कि वर्त्तमान दशमलव पद्धति या तो प्रारंभ नहीं हुई थी अथवा उसका प्रयोग सामान्य नहीं हो पाया था। अशोक के अभिलेखों में मिलने वाले कुछ अंक निम्न प्रकार हैं:

४ ६ ५० २००

पूना के पास नानक घाट नामक पहाड़ी की चोटी पर एक गुफा में कुछ अंक यज्ञों के अवसर पर दिए गए दान की सूची के सिलसिले में मिलते हैं, जो निम्न प्रकार हैं:

१ २ ४ ६ ७ ९ १० २०

६० ८० १०० २०० ३०० ४०० ७००

१,००० ४,००० ६,००० १०,००० २०,०००

अब प्रश्न यह है कि ये अंक इस स्वरूप में क्यों लिखे जाते थे? हम देख चुके हैं कि पश्चिम में भाषा के शब्दों के प्रथमाक्षरों अथवा वर्णमाला का प्रयोग हुआ है। परंतु इन लेखों के अंकों के विषय में ऐसा सुस्पष्ट मत नहीं दिया जा सकता। इस विषय में सबसे अधिक कठिनाई यह है कि हमें अशोक के समय के पूर्व के कोई लेख उपलब्ध नहीं हैं जिनमें अंकों का प्रयोग हुआ हो। भारत में अंकों का प्रयोग अशोक के भी हज़ारों वर्ष पूर्व होता रहा है। हो सकता है उस अवस्था में उनकी लिखावट उन अंकों के लिए प्रयुक्त शब्दों या वर्णमाला के आधार पर हुई हो और अशोक के समय तक स्वतंत्र रूप से विकसित होकर वे नवीन रूप पा गए हों। अशोक के समय में ब्राह्मी अंक प्रणाली पूरे भारत में प्रचलित थी। किसी पद्धति को इतने बड़े देश में फैलने के लिए, विशेष कर ईसा पूर्व काल में, पर्याप्त समय की आवश्यकता थी। पश्चिम में भारतीय अंकों के प्रसार के लिए हज़ारों वर्ष लगे, यह तथ्य इस कथन को परिपुष्ट करता है। इस आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि अशोक के समय की अंक-प्रणाली का जन्मकाल ईसापूर्व १००० से भी पहले का होना चाहिए।

शून्य की परिकल्पना

विश्व की वर्त्तमान अंक-प्रणाली का जन्म भारत में हुआ। यहाँ से वह अरब-देशों से होती हुई यूरोप के देशों तक पहुँची। इसीलिए प्रचलित अंकों को पश्चिम में बहुधा 'अरब संख्यांक' की संज्ञा दी जाती है। हमारी अंक-प्रणाली की विशेषता यह है कि केवल दस संख्या-चिह्नों की सहायता से पूरे संख्या समुदाय को लिखा जा सकता है। ये सुपरिचित अंक-चिह्न हैं: ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९।

इस अध्याय में अब तक संख्यांकों के विकास में कई प्रकार के संख्या चिह्नों से हमारा परिचय हुआ, पर 'शून्य' को उनमें स्थान कहीं भी नहीं मिला। 'शून्य' भी एक संख्यांक है, इसका सहसा आभास नहीं होता। हम साधारण रूप से गणना का प्रारंभ भी १ से ही करते हैं। ऐसी स्थिति में शून्य को भूल जाना स्वाभाविक-सा ही है। परंतु वास्तविकता यह है कि गणना में पहला अंक 'शून्य' ही है। और यही भारतीय संख्या चिह्नों की सबसे बड़ी विशेषता है।

शून्य की परिकल्पना समाज और सभ्यता के विकास की एक उन्नत दशा में ही हो सकती है। एक सूर्य, दो नेत्र, पाँच अँगुलियाँ तो सभी को स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं और उनके लिए आदिम अवस्था में भी शब्द रचना हो गई। जहाँ मनुष्य को अपना और अपने से भिन्न अर्थात् अन्य का ज्ञान हुआ, संख्या में एक और अनेक का उदय हो गया। उसके बाद बुद्धि-विकास के साथ बड़ी संख्याओं का उद्भव एक सामान्य बात थी। परंतु किसी भी वस्तु का न होना और उस अवस्था को किसी संकेत विशेष द्वारा निरूपित करना मानव विचारणा में एक क्रांतिकारी चरण था। यह तभी संभव हो सका होगा जब उसे अमूर्त्त विषयक सोचने की क्षमता प्राप्त हो गई हो। अभाव अथवा शून्य का प्रतिनिधि '०' स्वयं एक गोलाकार रेखा रूप में बनाया गया। यदि मूर्त्तरूप से देखा जाए तो ० यह

नया चिह्न स्वयं एक निश्चित वस्तु है। इसलिए वह स्वयं शून्य अथवा अभाव का द्योतक क्यों कर हो ? '०' एक निश्चित चिह्न है और वस्तुतः उसका गणना अंक 'एक' है। इसी प्रकार '००००' शून्य समुदाय में 'चार' 'शून्य' हैं। इस प्रकार प्रश्न उठता है कि '०' शून्य है अथवा कुछ और ? इस विरोधाभास पर सुलझा मस्तिष्क ही विचार कर सकता है। एक, दो, तीन, चार इत्यादि की प्रारंभिक संकेत-प्रणाली में इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं आई थी। उन्हें पहले सीधी रेखाओं द्वारा तथा वाद में संख्यांकों द्वारा निरूपित किया गया। एक प्रकार से 'शून्य' विषयक विचारणा में तार्किक दृष्टि से वही कठिनाई उत्पन्न होती है, जिसमें आज भी चोटी के वैज्ञानिक यदा-कदा अपने को उलझा पाते हैं।

एक दार्शनिक की समस्या

प्रसिद्ध गणितज्ञ बर्टेंड रसेल ने एक बार विश्व की सभी वस्तुओं का वर्गीकरण किया। उसमें उन्हें दो प्रकार के वर्ग प्राप्त हुए। प्रथम तो वे वर्ग जिनमें वर्ग स्वयं उस वर्ग का सदस्य हो, यथा :

शब्द—आकाश, टेबल, नीला, ... शब्द, ...

द्रष्टव्य है कि दुनिया के सभी शब्दों के वर्ग में 'शब्द' स्वयं एक शब्द होने के कारण उस वर्ग का सदस्य है। इसी प्रकार 'विचार' वर्ग में विचार स्वयं एक विचार होने के कारण उसका सदस्य होगा। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। इन सभी वर्गों को रसेल ने 'ह' संज्ञा दी।

इसके अलावा कुछ वर्ग ऐसे भी हैं, जो स्वयं उस वर्ग के सदस्य नहीं हैं । यथा :

स्वर—अ, आ, ... अः

व्यंजन—क, ख, ... ह

'स्वर' स्वयं एक स्वर नहीं है और न 'व्यंजन' स्वयं एक व्यंजन है। 'स्वर' और 'व्यंजन' शब्द हैं। इस प्रकार ये वर्ग अपने वर्ग के सदस्य नहीं हैं। इनको रसेल ने 'न' की संज्ञा दी।

अब यदि जितने 'न' संज्ञा वाले वर्ग हैं उनका एक वर्ग बनाया जाए, तो प्रश्न उठा कि यह नया वृहत् वर्ग 'वृ' 'न' संज्ञा को प्राप्त होगा या 'ह' संज्ञा को। इसकी दोनों संभावनाएँ हमें विरोधाभास में उलझा देती हैं ठीक उसी प्रकार जैसे किसी दिल्ली निवासी का कथन कि 'सभी दिल्ली वाले झूठे हैं'। न हम उस पर विश्वास कर सकते हैं और न अविश्वास।

यह साधारण-सी विरोधाभासी समस्या इतनी कठिन साबित हुई कि रसेल लिखते हैं कि रोज प्रातःकाल वे कोरा कागज़ लेकर बैठ जाया करते थे। दोपहर में भोजन के अल्प-समय को छोड़ कर वह उस कागज़ की ओर निहारते रहते थे और अक्सर यह होता था कि शाम को कागज़ कोरा का कोरा ही रह जाता था । यह क्रम लगभग दो वर्ष तक चला। 'मुझे लगता था कि मैं इस विरोधाभास को सुलझाए बिना आगे नहीं बढ़ सकता और मेरा दृढ़ विश्वास था कि प्रिंसिपिया मैथेमेटिका को पूरा करने से कोई भी कठिनाई उन्हें रोक नहीं सकती। पर साथ ही ऐसा भी लगता था कि मेरा पूरा शेष जीवन ही

कोरे कागज़ को देखते-देखते न बीत जाए। क्रोध तो इस बात पर और आता था कि यह विरोधाभास इतना मामूली-सा था और मेरा समय इतनी छोटी-सी बात को, जो गहन विचार के योग्य भी नहीं मालूम देती थी, सोचने में लग रहा था।'

जब यह स्थिति बीसवीं सदी में एक चोटी के गणितज्ञ की थी तो प्राचीन समय में शून्य को लेकर जो समस्या उठी होगी उसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। ईसा सन् के आरंभ के आसपास पश्चिम में विज्ञान उस सीमा तक उन्नत हो चुका था कि उसी की आधारशिला पर डेढ़ हज़ार वर्ष के बाद सूत्रपात कर आधुनिक विज्ञान की नींव पड़ी। परंतु वे अपनी उन महत् उपलब्धियों के बीच भी शून्य की कल्पना नहीं कर सके और अठारहवीं शताब्दी तक उसके बिना ही काम चलाना पड़ा। ऊपर वर्णित शून्य संबंधी कल्पना की वैचारिक स्तर पर कठिनाइयों में यह स्वाभाविक-सा प्रतीत होता है कि शून्य का प्रादुर्भाव भारतीय चिन्तना में ही हुआ हो। हमारी दार्शनिक परंपरा में शून्य उतना ही स्पष्ट था जितना कि साकार जगत्। और उन ऋषियों ने शून्य के विरोधाभास के जाल को काट कर उस शून्य को भी उसी प्रकार रूप दिया जिस प्रकार निराकार ब्रह्म को साधना की सुलभता के लिए एक मूर्त्ति बनाकर साकार रूप में प्रस्थापित किया।

शून्य की सर्वप्रथम परिकल्पना कब हुई इसकी निश्चित जानकारी नहीं है। दो हज़ार वर्ष से भी अधिक समय से शून्य का ज़िक्र हमारे ग्रंथों में मिलता है। शून्य के सांकेतिक चिह्न का प्रथम प्रयोग लगभग २०० ई० पू० पिंगल ने अपने छंद:सूत्र नामक छंद:शास्त्र के ग्रंथ में किया है। लगभग सन् ३०० ईस्वी की बक्षाली की हस्तलिपि में गणना में शून्य का प्रयोग मिलता है। पाँचवीं और छठवीं शताब्दियों में तो शून्य की सहायता से बड़ी-बड़ी संख्याएँ लिखी जाने लगीं थीं। एक ग्रंथ में ३२,००,४०,००,००,००० 'बत्तीस दो शून्य चार आठ शून्य' के रूप में लिखा मिलता है।

यदि हम पिछले अध्याय में वर्णित संख्यांक पद्धति पर विचार करें तो स्पष्ट होगा कि शून्य का प्रयोग मनुष्य के सोचने और संख्या-संबंधी ज्ञान में एक क्रांतिकारी चरण था। उसकी प्रस्थापना की तुलना मानव इतिहास में अग्नि अथवा पहिये के अविष्कार के समकक्ष मानी जाती है। यदि शून्य न होता तो हमारा गणित पंगु होता। और गणित के बिना क्या आज की वैज्ञानिक सभ्यता संभव होती? शून्य विश्व को भारत की सबसे बड़ी देन है इसमें दो मत नहीं हैं।

शून्य और स्थान-मान

यद्यपि शून्य स्वयं अपने में एक बड़ी वैचारिक प्रस्थापना थी परंतु गणित में उसका सबसे महत्त्वपूर्ण उपयोग स्थान-मान सिद्धांत के रूप में हुआ। स्थान-मान से तात्पर्य यह है कि उसी राशि का मान उसके स्थान के आधार पर निर्भर हो। शतरंज के खेल में प्यादा जब अंतिम घर पर पहुँच जाता है तब वह उसके अनुसार नया पद पाता है। साधारण जीवन में भी सभी मनुष्य बराबर हैं पर उनका 'मूल्य' वे समाज में किस 'स्थान' पर आसीन हैं, उसी पर निर्भर रहता है। हमारी संख्या-पद्धति में अंक दस ही हैं पर

उनमें से प्रत्येक का मान वे किस स्थान पर हैं, इसी तथ्य पर निर्भर रहता है। यद्यपि स्थान-मान की वैचारिक स्थापना पश्चिम में नहीं हुई, परंतु उसका व्यावहारिक रूप में उपयोग वहाँ भी बहुत पुराने समय में मिलता है जिसका ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं। सेना की गणना में जब गिनते-गिनते कंकड़ सौ हो जाते हैं तब उनके बजाय एक दूसरे स्थान पर एक कंकड़ रख देना, उस 'एक' कंकड़ को नया स्थान-मान देना ही है। एक स्थान पर रखे एक कंकड़ का मूल्य एक, दूसरे पर रखे का मूल्य १०० हो जाता था। परंतु इसी गणना को जब वे लोग काग़ज़ या मिट्टी पर लिखते थे तब १०० के लिए विशेष चिह्नों का प्रयोग करते थे। यदि इन कंकड़ों के स्थान पर अंक लिख देते तो स्थान-मान की स्थापना हो जाती। परन्तु इस प्रकार कंकड़ों को जो स्थान-मान दिया गया, उन्हें निरूपित करने वाले अंक-चिह्नों को वही स्थान-मान देने में अक्षमता रही। यदि विचार करें तो प्रतीत होगा कि ये लोग स्थान-मान सिद्धांत के कितने निकट पहुँच चुके थे और कितना छोटा-सा विचार ध्यान में नहीं आ पाया तो हैरत होती है। और उसके फलस्वरूप पूरा पश्चिमी समाज हज़ारों वर्ष तक कठिनाइयाँ झेलता रहा—गणना, गणित और व्यवहार में। पर सभी युग-प्रवर्त्तक विचारों का यही हाल होता है। देखने में अत्यंत सरल, पर वे सरल तभी प्रतीत होते हैं जब उन्हें स्पष्ट रूप से प्रतिपादित कर दिया जाता है, उसके पूर्व नहीं।

भारत में 'अंक-स्थान' शब्द के प्रयोग का प्राचीनतम साहित्यिक प्रमाण अनुयोग-द्वार-सूत्र नामक जैन ग्रंथ में मिलता है। यह ग्रंथ ईस्वी सन् के पहले का लिखा हुआ है। संसार के समस्त जीवों की संख्या पर विचार करते हुए इसमें लिखा है कि '(लोक के जीवों की संख्या) कोटि-कोटि आदि संज्ञाओं की सहायता से अंकों में व्यक्त करने पर २९ स्थान लेगी।'

यही संख्या यदि उस समय यूनान में लिखी जाती तो अनेक ग्रंथ भर जाते।

दशमलव प्रणाली

शून्य और अन्य नौ अंकों के आधार पर जो संख्या लेखन-प्रणाली है, उसे हम दशमलव प्रणाली कहते हैं। इसकी आधार संख्या दस है। दस के महत्त्व को हम पहले बता चुके हैं—सबसे महत्त्वपूर्ण तो यही है कि हमारे दस अँगुलियाँ हैं और इसी कारण दशमलव प्रणाली विश्व में प्रस्थापित हुई। उदाहरण के लिए १११ का वास्तविक अर्थ है :

$$१०० + १० + १$$

यदि हम दाहिनी ओर से देखें तो पहले '१' का अर्थ है एक, दूसरे '१' का अर्थ है दस और तीसरे '१' का अर्थ है सौ। १११ वास्तव में १००+१०+१ को छोटे स्वरूप में लिखने की एक परिपाटी है। किसी भी अंक का वास्तविक मान हम संख्या में उसके स्थान को दाहिनी ओर से गिन कर बता सकते हैं। यदि उसका वास्तविक मान लिखना है तो उसके दाहिनी ओर जितने स्थान हैं उतने ही शून्य उसके दाहिनी ओर लगाना

होगा। इस प्रकार ३,४५६ में ३ का मूल्य ३,००० हुआ, ४ का मूल्य ४००, ५ का मूल्य ५० तथा ६ का मूल्य ६। यहाँ हम देखते हैं कि शून्य वह शिला है जिसके आधार पर इमारत ऊँची होती जाती है और जितने शून्य किसी अंक विशेष के दाहिनी ओर लगाते जाएँ, उसका मूल्य बढ़ता जा सकता है। पर ध्यान रहे कि शून्य की सार्थकता अन्य अंकों को सहारा देने में ही है, अपने आप उस 'शून्य' का मूल्य कुछ नहीं। कहा भी है, 'परोपकाराय सताम विभूतय:'।

शून्य न केवल किसी अंक विशष का वास्तविक मूल्य बताने में सहायक होता है वरन् अंकों के बीच में जहाँ भी कमी होती है वहाँ बड़े अंकों का आधार बन कर बीच में आ जाता है और उसे सहारा देता है। १०१ में से यदि मध्य का शून्य, जिसका मूल्य कुछ नहीं है, निकाल दिया जाए, तो तीसरे स्थान का १ बेसहारे दूसरे स्थान पर गिर कर अपना मान सौ से घटा कर दस कर बैठेगा। १०,००,००,००,००१ शून्य विहीन होने पर मात्र ११ रह जाएगा। अंकों के संसार में शून्य वही स्थान रखता है जो हमारे इस विश्व में परमाणुओं के बीच का शून्य स्थल। कहते हैं कि यदि यह शून्य स्थल न हो तो एक पूरे हाथी के शरीर के परमाणुओं को इकट्ठा करके एक सूई की नोक पर रखा जा सकता है।

संभव है कि ये दोनों शून्य एक ही वास्तविकता के द्योतक हों।

भारतीय अंकों की विदेश यात्रा

हिन्दू-संख्यांकों का भारत के बाहर प्रथम उल्लेख सन् ५०० ई० के लगभग व्लैथिअस की क्षेत्र गणित की एक हस्तलिपि में मिलता है। सन् ६६२ ई० में मेसोपोटामिया के एक पादरी सिवोख़्त ने भी इनका उल्लेख किया है । उसने यूनानी विद्वानों के दम्भपूर्ण आचरण के प्रतिवाद में लिखा था—'मैं हिन्दुओं के शास्त्रों के सभी विवेचन छोड़ता हूँ—उन हिन्दुओं के जो सीरियाई लोगों से भिन्न हैं—न उनकी विज्ञान विषयक विलक्षण गवेषणाओं के विषय में कहूँगा जो यूनानी लोगों की गवेषणाओं की अपेक्षा अधिक कौशलपूर्ण हैं, और न उनकी वर्णनातीत गणना के विषय में ही। मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि यह गणना नौ चिह्नों की सहायता से ही की जाती है। यदि वे लोग, जो केवल यूनानी भाषा बोलने के कारण ही यह समझते हैं कि वे विद्या की सीमा पर पहुँच चुके हैं, उन बातों को जानें तो विश्वास हो जाएगा कि उन लोगों के अतिरिक्त भी ऐसे लोग हैं जो कुछ जानते हैं।'

एक अन्य प्रमाणित पाण्डुलिपि स्पेन में लगभग सन् ९७६ की पाई जाती है जिसमें इन संख्यांकों का रूप इस प्रकार है :

I Շ Ƶ ꝶ Ч L 7 8 9

हम पहले ही कह चुके हैं कि पूर्ण रूप से ये अंक अठारहवीं शताब्दी में ही व्यवहार में आए। जब यूरोप में एक उन्नत अवस्था में प्राप्त अंक-पद्धति को हज़ार डेढ़ हज़ार वर्ष लग गए तब भारत में सार्वभौम उपयोग उनके जन्मकाल के सैकड़ों वर्ष बाद ही

संभव हो पाया होगा। इस प्रकार वर्त्तमान भारतीय अंक ईसा के कई शताब्दियों पूर्व के होना मानने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पूरे भारत में सातवीं शताब्दी के बाद कोई भी संख्या-लेख पुरानी पद्धति का नहीं मिलता है। उस समय तक स्थान-मान पद्धति पूर्ण रूप से भारत में प्रचलित हो गई थी।

भारत में शब्दांक और अक्षरांक

अंत में केवल एक प्रश्न की समीक्षा कर हम इस अध्याय को समाप्त करेंगे। पश्चिम में हमने देखा कि संख्या-चिह्नों के लिए वर्णमाला के अक्षरों का प्रयोग हुआ। क्या भारत में भी किसी समय ऐसा प्रयोग होता था? भारत में हम संख्या के अलावा दो प्रकार के अन्य प्रयोग अंकों के लिए पाते हैं—शब्दांक और अक्षरांक। परंतु भेद यह है कि हमारे यहाँ हिसाब-किताब या साधारण काम-काज के लिए शब्दांक या अक्षरांक पद्धति का प्रयोग नहीं हुआ क्योंकि प्रचलित भारतीय अंक-पद्धति वैज्ञानिक और सरल थी। विद्वानों ने काव्य में अथवा बौद्धिक चमत्कार प्रदर्शन के लिए अथवा बड़ी संख्या को सूत्र रूप में कहने के लिए ही शब्दांकों और अक्षरांकों का प्रयोग किया।

शब्दांक पद्धति ईस्वी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में ही प्रारंभ हुई थी। इस पद्धति में अंकों को ऐसे शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता था जो ऐसी वस्तुओं के नाम हों जिनकी संख्या सर्वविदित हो। उदाहरण के लिए चंद्रमा, धरा, पृथ्वी इत्यादि शब्द 'एक' के द्योतक हैं; नेत्र, कर्ण, बाहु इत्यादि 'दो' के; वेद, आश्रम, वर्ण, दिशा 'चार' के, इत्यादि। इस प्रकार हमारे साहित्य में १ से ४९ तक के लिए शब्द मिलते हैं। उनमें से कुछ शब्द निम्नलिखित हैं:

०	शून्य, ख, आकाश, अम्बर, नभ
१	आदि, इन्दु, पृथ्वी
२	नेत्र, बाहु, अश्विन
३	लोक, काल, गुण
४	वेद, उदधि, युग, वर्ण
५	प्राण, पाण्डव, इंद्रिय
६	रस, दर्शन, राग
७	नग, ऋषि, छन्द
८	वसु, गज, मंगल
९	अंक, निधि, ग्रह
१०	दिश्, अँगुली, अवतार
११	रुद्र, ईश्वर, भव

यदि स्थान-मान के सिद्धांत का उपयोग किया जाय तो स्पष्ट है कि किन्हीं भी दस शब्दांकों के आधार पर कोई भी संख्या लिखी जा सकती है। साथ ही एक अंक के लिए कई शब्द उपलब्ध हैं, इसलिए किसी एक संख्या को कई प्रकार से भी लिखा जा सकता है। उदाहरण के लिए—४१,०३५ के निम्न दो रूप :

पनव लोकांबरेन्दूदधि (पवन-लोक-अंबर-इन्दु-उदधि)
इंद्रिय गुण नभादि वर्ण (इंद्रिय-गुण-नभ-आदि-वर्ण)

यहाँ ध्यान रहे कि शब्दांक पद्धति में अंक को दाहिनी ओर से लिखना प्रारंभ किया जाता है। ऊपर उदाहरण में पवन और इंद्रिय का अर्थ है 'पाँच', लोक और गुण का 'तीन', अंबर और नभ का 'शून्य', इन्द्र और आदि का 'एक' तथा वर्ण और उदधि का 'चार'। इन अंकों को वाक्यांश में प्रयुक्त क्रम में उलट कर लिखने पर ४१,०३५ संख्या प्राप्त होती है।

स्थान-मान सिद्धांत के साथ शब्दांकों का प्राचीनतम प्रयोग अग्नि-पुराण में मिलता है। पुलिश सिद्धांत में एक संख्या लिखी गई है : ख (०) ख (०) अष्ट (८) मुनि (७) राम (३) अश्विन (२) नेत्र (२) अष्ट (८) सर (५) रात्रिपा: (१) = १,५८,२२,३७,८००।

शब्दांकों के साथ भारत में अक्षर-संकेत भी मिलते हैं। इसका सबसे पहला प्रयोग पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' में मिलता है। इसके बाद अनेक अन्य आचार्यों ने भी अक्षर संकेत बनाए। वास्तव में एक बार संख्या संबंधी आधार सुस्पष्ट होने पर विनोद के लिए कोई भी नियम बनाए जा सकते हैं। आज भी हम इस प्रकार के कई प्रयोग काम में ला सकते हैं। नागरी लिपि अथवा किसी भी भारतीय लिपि में एक और सुविधा है। स्वर और व्यंजन को मिलाकर बहुत अधिक अक्षर-युग्म बनाए जा सकते हैं और प्रत्येक को एक निश्चित मान दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि हम चाहें तो क् को १ मानें और उसमें मात्रा लगाने पर उसे दस, सौ इत्यादि से गुणित मान सकते हैं। इस नियम से :

क्	१
क	१०
का	१००
कि	१०००
की	१०,०००
कु	१,००,०००
कू	१०,००,००० इत्यादि

अन्य वर्णों को भी इसी प्रकार मान दे सकते हैं और इच्छित संख्या को सुंदर शब्दों में गढ़ सकते हैं।

अक्षर-संकेत पद्धतियों में कटपयादि पद्धति उल्लेखनीय है। इसमें विशेषता यह है कि अक्षर-संख्याएँ छोटी बनती हैं जिनका उच्चारण प्राय: मधुर होता है। चतुर लेखकों ने संख्याओं की अभिव्यक्ति के साथ अपने अर्थ का तारतम्य भी बनाए रखा है। इस पद्धति में स्वर और व्यंजनों के मान निम्न प्रकार हैं :

क्	ट्	प्	य्	१
ख्	ठ्	फ्	र्	२
ग्	ड्	ब्	ल्	३
घ्	ढ्	भ्	व्	४
ङ्	ण्	म्	श्	५
च्	त्	ष्		६
छ्	थ्	स्		७
ज्	द्	ह्		८
झ्	ध्			९
ञ	न् और केवल स्वर			०

इस पद्धति में स्वर-विहीन व्यंजन का कोई मूल्य नहीं होता है। ध्यान रहे कि 'कुछ नहीं' का अर्थ शून्य नहीं है। संयुक्त व्यंजन में जो अंतिम स्वर-युक्त व्यंजन होता है उसी का अंक-मान स्वीकृत होता है। किसी भी मात्रा को लगाने से व्यंजन का मूल्य बदलता नहीं है। अक्षर संख्याओं की रचना में दाहिनी ओर से बाईं ओर क्रम का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए :

२ ५ १
रा मा य = १५२

० ५
न मः = ५०

० ३ २
अ म्ब र = १२०

६ ४ ३ १
त त्वा लो क = १३४६

आर्यभट्ट द्वितीय ने इस प्रणाली में थोड़ा संशोधन किया। व्यंजनों का तो वही मान रखा जो मूल विधि में था, परंतु उन्होंने स्वरों या व्यंजन-युक्त स्वरों का कोई मान नहीं रखा। मिश्र व्यंजन में प्रत्येक व्यंजन का मान होता है। अक्षर संख्याओं का क्रम बाईं ओर से दाहिनी ओर होता है। इस प्रकार

त त्वा लो क = ६६४३१

जबकि पहली पद्धति में इसका मान १३४६ था। यह पद्धति लिखने और याद रखने में सुगम है।

अध्याय ४

चार मूलभूत गणितीय क्रियाएँ

पिछले अध्याओं में हम संख्या और संख्यांकों को अच्छी तरह समझ चुके हैं। इन संख्यांकों को हम '०' शून्य से प्रारंभ कर कहीं तक भी लिख सकते हैं। हम ऐसी कोई संख्या नहीं लिख सकते, जिससे कोई अन्य बड़ी संख्या न हो। यदि हम कोई भी एक निश्चित संख्या लिखें तो स्पष्ट है कि हम उससे भी एक और बड़ी संख्या लिख सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई १०० लिखे तो हम उससे बड़ी संख्या १०१ लिख सकते हैं, कोई १,००,००० लिखे तो हम १,००,००१ लिख सकते हैं...इत्यादि। इसीलिए हम संख्यांकों को 'अनन्त', अर्थात् जिसका अंत न हो, कहते हैं। गणित में १, २, ३,... इत्यादि अनन्त संख्याओं को 'प्रकृत संख्या' का नाम दिया गया है, क्योंकि ये प्रकृत अथवा स्वाभाविक रूप से ही हमारे अनुभव में आती हैं। वस्तुओं के गिनने में उपयोगी होने से इन्हें गणना अंक भी कहा जाता है। ध्यान रहे कि 'शून्य' प्रकृत संख्या नहीं है, उसका उद्‌भव बहुत बाद में हुआ। 'शून्य' और प्रकृत संख्याओं को मिलाकर बने संख्या समुदाय को 'पूर्णांक' कहा जाता है। इस प्रकार हमारी अब तक की संख्या संकल्पना निम्न प्रकार

प्रकृत सख्या	१,	२,	३,	४,.	
पूर्णांक		१,	२,	३,	

इसके पूर्व कि हम संख्या संकल्पना के विस्तार पर विचार करें, इस अध्याय में हम चार मूलभूत गणितीय संक्रियाओं—जोड़ना, घटाना, गुणा और भाग के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

जोड़ना

गिनती के बाद सबसे पहली गणितीय संक्रिया जो हम सीखते हैं, वह जोड़ने की है। स्वयं गिनती भी एक प्रकार से जोड़ने की क्रिया पर आश्रित है। 'दो' का अर्थ है 'एक और एक'। 'तीन' है 'दो और एक' अर्थात् 'एक और एक और एक':

$$१=१$$
$$२=१+१$$

$$३=२+१=(१+१)+१=१+१+१$$
$$४=३+१=(२+१)+१=१+१+१+१$$

किन्हीं भी दो संख्याओं के जोड़ की तालिका बनाई जा सकती है और उनको याद किया जा सकता है। वस्तुतः छोटी-छोटी संख्याओं के जोड़ तो हमें याद भी रखने होते हैं जैसे ४+५=९ अथवा ७+८=१५। परंतु १७+२५ या २३२+७१४ का योगफल विलक्षण स्मरण शक्ति वाले कुछ लोग भले ही याद रख सकें, किसी साधारण व्यक्ति के लिए इसका याद रखना कठिन है। स्मरणशक्ति की अपनी एक सीमा है। इसीलिए जोड़ने के लिए गणितीय नियम बने जिनके उपयोग से कभी भी किन्हीं दो संख्याओं को आसानी से जोड़ा जा सके।

पहले हम नौ या उससे छोटी दो संख्याओं के जोड़ पर विचार करेंगे। साधारणतः इनका योग सभी याद रखते हैं। 'पाँच और तीन मिल कर कितने होते हैं?' स्मरण के आधार पर इसका उत्तर फ़ौरन मिलता है 'आठ'। पर यह कैसे आया? इसके लिए हमें इन दोनों संख्याओं का खुलासा लिखना होगा :

$$५=१+१+१+१+१$$
$$३=१+१+१$$
$$५+३=(१+१+१+१+१)+(१+१+१)$$
$$=१+१+१+१+१+१+१+१$$
$$=८$$

मूर्त्त रूप से ३ वस्तुओं और ५ वस्तुओं का योग निम्न प्रकार प्रतिरूपित होगा :
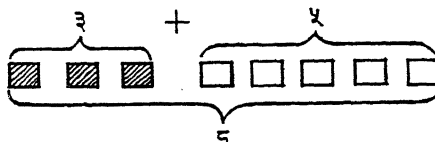
इस प्रकार हम किन्हीं भी संख्याओं को जोड़ सकते हैं।

व्यवहार रूप में इस प्रकार के जोड़ करने के लिए न तो हम उन्हें १+१+.... के रूप में व्यक्त करते हैं और न ही ऊपर की भाँति चित्र ही बनाते हैं। बहुधा निम्न रूप से लिखकर जोड़ किया जाता है :

५	६
३	७
८	१३

ऊपर बताई रीति से लिख कर योगफल प्राप्त करने के दो ही आधार होते हैं—या तो हम अपनी स्मरण-शक्ति पर विश्वास करते हैं अथवा अँगुलियों पर गिनने का सहारा लेते हैं। पाँच में तीन जोड़ने के लिए बालक पाँच के बाद की संख्या बोलना प्रारंभ कर

देता है और छिगुनी में बनी रेखाओं पर अँगूठे के सहारे से गिनती गिनता जाता है ६, ७, ८। आठ पर आकर रुक जाता है क्योंकि वहाँ तक छिगुनी के तीन निशान पूरे हो जाते हैं। धीरे-धीरे वह अँगुली का सहारा छोड़ कर स्मरण-शक्ति का सहारा लेता है। यह जोड़ने की क्रिया वास्तव में निम्न तालिका को याद कर वांछित राशि प्राप्त करना मात्र होता है:

	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८

१ से ९ तक की योग तालिका

योग का साहचर्य नियम

यहाँ एक विशेष बात यह है कि जोड़ने में दो संख्याओं को किसी भी क्रम में रखें उनका योगफल वही रहेगा। इस उदाहरण में:

५ + ३ = (१ + १ + १ + १ + १) + (१ + १ + १)
= १ + १ + १ + १ + १ + १ + १ + १
= ८

और

३ + ५ = (१ + १ + १) + (१ + १ + १ + १ + १)
= १ + १ + १ + १ + १ + १ + १ + १
= ८

अथवा निम्न चित्र में :
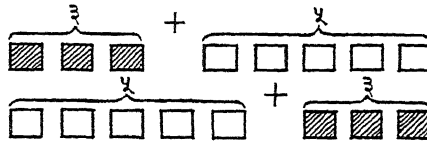
३+५ और ५+३ दोनों ही अन्त में एक ही संख्या-फल देते हैं । इसका अर्थ हुआ कि ५+३=३+५=८। इसी प्रकार ७+४=४+७ या १८+३५=३५+१८ इत्यादि। व्यापक रूप से यदि क और ख कोई भी दो संख्याएँ हैं तो

क+ख=ख+क

संख्याओं के इस गुण को हम एक नियम का रूप देते हैं। इसे हम संख्याओं के 'योग का साहचर्य नियम' कहते हैं। 'यदि क और ख कोई दो संख्याएँ हैं तो क+ख=ख+क' इस तथ्य को संक्षिप्त रूप से कहना ही वस्तुतः 'योग का साहचर्य नियम' है। ३+४=४+३, ५+८=८+५, ११+१४=१४+११ इत्यादि की तरह के अनेक कथन न कहकर उन्हें सूत्र रूप से कहने का वह दूसरा ढंग है ।

इस स्थल पर यह विचार आ सकता है कि 'यह तो स्वयं सिद्ध ही है कि चाहे क को ख में जोड़ो या ख को क में अर्थ एक ही होगा।' इतनी छोटी-सी वात को इतने विस्तार में कहने की आवश्यकता? इस उदाहरण से इस कथन की पुष्टि होती है कि 'वास्तव में गणित में छोटी बातों को वढ़ा-चढ़ा कर कहा जाता है।'

हमारा इस प्रकार सोचना उचित ही है। पर ध्यान रहे कि इसी प्रकार के अत्यंत सरल और सुस्पष्ट कथनों का मूल आधार ही गणित में अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है। 'साहचर्य नियम' संख्याओं में केवल कुछ ही क्रियाओं के लिए सिद्ध है। जैसे कि आगे हम देखेंगे कि ३×४=४×३, ८×९=९×८ इत्यादि। यह गुण संख्याओं के 'गुणन का साहचर्य नियम' कहलाता है। परंतु यदि हम संख्याओं पर अन्य दो गणितीय संक्रियाओं को देखें तो पाएँगे कि यह नियम लागू नहीं होगा। उदाहरण के लिए यदि कोई ऋण की क्रिया के लिए भी इस नियम को मान कर निम्न प्रकार लिखे कि

५—३=३—५

तो स्पष्ट ही है, यह कथन असत्य है। बाईं ओर की राशि ५—३=२ सभी जानते हैं। परन्तु इस पुस्तक में अब तक प्रस्थापित संख्या-संकलपना में ३—५ क्या है, यह अभी हमें मालूम ही नहीं। प्राकृतिक संख्याओं में ३—५ का कोई अर्थ ही नहीं है। ३ में से ५ को घटाया ही नहीं जा सकता।

पर यदि हम दो राशियों के केवल अन्तर को ही देख रहे हों तो स्थिति दूसरी होगी। 'दिल्ली से ग्वालियर की दूरी' और 'ग्वालियर से दिल्ली की दूरी' बराबर है। यहाँ हम दिशा को महत्त्व नहीं दे रहे हैं, केवल उनकी परस्पर दूरी पर ही विचार कर रहे हैं। इसी प्रकार यदि केवल हम ५ और ३ के अन्तर को ही ध्यान में रखें तो उसके लिए 'साहचर्य नियम' लागू होगा। '५ और ३ का अन्तर'='३ और ५ का अन्तर'। गणित में इसे हम लिखते हैं:

।५ — ३। = ।३ — ५।

इसी प्रकार साहचर्य नियम भाग के विषय में भी लागू नहीं होता।

६ ÷ ३ और ३ ÷ ६

दोनों राशियाँ बराबर नहीं हैं। ६ ÷ ३ का मूल्य है २ और ३ ÷ ६ का $\frac{१}{२}$।

ऊपर के विवेचन से यह धारणा बनने की संभावना है कि यदि साहचर्य नियम सार्वभौम नहीं हो तो कम से कम 'योग का साहचर्य नियम' तो सभी वस्तुओं के लिए सत्य होगा। हमारा सहज ज्ञान भी कहता है कि क में ख जोड़ना वही बात है जो ख में क जोड़ना। परन्तु हमें यहाँ सहज-ज्ञान कुछ धोखा दे रहा है। योग का साहचर्य नियम संख्याओं के संबंध में सत्य है क्योंकि यह संख्याओं का एक विशेष गुण है। यह गुण सभी वस्तुओं में होना आवश्यक नहीं। मान लीजिए कि हमें नीचे दिए आकारों को जोड़ना है:

□   ▷
क   ख

तो क + ख = □▷

और ख + क = ▷□

क्या हम कह सकते हैं कि □▷ और ▷□ बराबर हैं? यदि जोड़ने से हमारा मंतव्य इन दो आकारों के क्षेत्रफल से है तो वे दोनों बराबर हैं अर्थात् क + ख = ख + क। परन्तु यदि जोड़ने से हमारा आशय उनकी रेखाकृति से है तो निश्चय ही □▷ और ▷□ भिन्न आकृतियाँ हैं और क + ख तथा ख + क बराबर नहीं हैं।

यह विवेचन विनोद अथवा बुद्धि विलास मात्र नहीं है; आधुनिक गणित में असाहचर्यात्मक क्रियाओं का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

योग का क्रम-विनिमेय नियम

गणित के एक अन्य नियम को भी हम यहाँ स्पष्ट करेंगे। अभी तक हमने केवल दो अंकों का योग करना सीखा है। यदि तीन अंकों को जोड़ना है तो वह किस प्रकार किया जाए? उदाहरण के लिए २ + ३ + ४ को लीजिए। इसके जोड़ की क्रिया हम बाईं ओर से २ और ३ को पहले जोड़ कर प्रारंभ कर सकते हैं अर्थात् उनके योगफल में अंतिम अंक ४ जोड़ें। यदि कोष्ठक में लिखी राशियों को पहले जोड़ा जाए तो इस प्रकार जोड़ने का अर्थ होगा :

२ + ३ + ४ = (२ + ३) + ४

परन्तु इसी क्रिया को हम दूसरे सिरे से भी प्रारंभ कर सकते हैं। पहले ३ और ४ को जोड़ें और उनके योगफल में प्रथम अंक २ को जोड़ें। इस प्रकार २ + ३ + ४ = २ + (३ + ४)। अब प्रश्न यह है कि क्या इन दोनों क्रमों से योग करने से तीनों संख्याओं का योगफल वही होगा। दोनों प्रकार से जोड़ने की क्रिया इस प्रकार होगी :

(२ + ३) + ४ = ५ + ४ = ९

२ + (३ + ४) = २ + ७ = ९

उत्तर एक ही आया और इसलिए हम कह सकते हैं कि

$$(२+३)+४=२+(३+४)$$

मूर्त्त रूप से
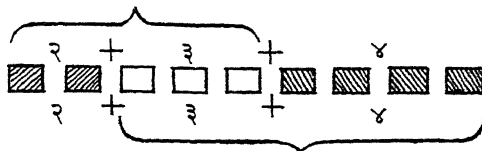
इस चित्र में हम देख सकते हैं कि ऊपर और नीचे इन तीन संख्याओं का दो प्रकार से योग का चित्रण है और दोनों रीतियों से योगफल वही आता है।

इसी प्रकार हम यदि किन्हीं और भी तीन संख्याओं को लें तो वही पाएँगे

$$(८+७)+५=८+(७+५)$$

$$\text{या } (१८+३)+३६=१८+(३+३६)$$

इत्यादि। इस प्रकार यह नियम किन्हीं भी तीन संख्याओं के योग के संबंध में लागू होगा। यदि क, ख, ग कोई भी तीन संख्याएँ हैं तो

$$(क+ख)+ग=क+(ख+ग)$$

इसे गणित में संख्याओं के 'योग का क्रम विनिमेय नियम' कहते हैं।

इसी प्रकार हम यदि तीन संख्याओं के गुणनफल पर विचार करें तो पाएँगे कि उन्हें किस क्रम में गुणा करते हैं इससे इनके गुणनफल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। $(क \times ख) \times ग=क \times (ख \times ग)$। इसे संख्याओं के 'गुणा का क्रम विनिमेय नियम' कहते हैं।

साहचर्य नियम की भाँति क्रम विनिमेय नियम भी सभी गणितीय क्रियाओं में खरा नहीं उतरता। हम देख सकते हैं कि भाग के संबंध में यह नियम लागू नहीं होता :

$$(८ \div ४) \div २ \text{ तथा } ८ \div (४ \div २)$$

दोनों समान राशियाँ नहीं हैं। इन पदों को हल करें तो

$$(८ \div ४) \div २ = २ \div २ = १$$

$$\text{और } ८ \div (४ \div २) = ८ \div २ = ४$$

इस प्रकार कौन-सी क्रिया पहले की जाती है इससे फल बदल जाता है।

पानी+आग+कपास=?

जिस प्रकार हम ऊपर देख चुके हैं कि 'साहचर्य नियम' संख्याओं के विशेष गुण पर आधारित है, उसी प्रकार क्या क्रम विनिमेय नियम भी संख्याओं के विशेष गुण पर आधारित है? अपवाद का एक उदाहरण देखिए। मान लीजिए 'जोड़ने' (+) का अर्थ दो वस्तुओं को पास लाकर एक साथ रखने से है। यदि पानी+आग+कपास इन तीन वस्तुओं को 'जोड़ा' जाए तो फल क्या होगा? स्पष्ट है कि इसका अंतिम फल उसे किस क्रम में जोड़ा जाए, उस पर निर्भर होगा।

(पानी+आग)+कपास

और   पानी+(आग+कपास)

दोनों में से पहले क्रम में 'योग' करने पर अंत में 'गंदी कपास' प्राप्त होगी परन्तु दूसरे क्रम में 'योग' का अंतिमफल होगा 'बुझी राख'।

संख्याओं में 'क्रम विनिमेय नियम' संख्याओं के विशेष गुणों पर आधारित है। उच्च गणित में 'क्रम अविनिमेय नियम' के महत्त्वपूर्ण उदाहरण मिलते हैं।

बड़ी संख्याओं का जोड़

आइए, अब हम ऐसी दो संख्याओं को जोड़ें जो ९ से बड़ी हैं। स्पष्ट है कि इसके लिए तालिकाओं और स्मरणशक्ति पर अवलंबित रहना कठिन होगा। इसलिए हमें कुछ गणितीय नियमों की सहायता लेनी होती है। यह अवश्य है कि नौ तक की जोड़-तालिका का उपयोग भी करना होता है। उदाहरण के लिए यदि १५३ और ३२५ को जोड़ना हो तो सर्वप्रथम हम उन्हें निम्न प्रकार से लिखते हैं :

$$\begin{array}{r} १५३ \\ ३२५ \\ \hline ४७८ \end{array}$$

दाहिनी ओर से पहले स्तंभ के दो अंकों का योग ३+५=८ है, दूसरे में अंकों का योग ५+२=७ और तीसरे के अंकों का योग १+३=४ है। इस प्रकार दोनों संख्याओं का योग हुआ ४७८। इस क्रिया से हम इतने अधिक परिचित हैं कि यह जोड़ अनायास बिना सोचे ही कर लेते हैं और उसमें कोई विशेषता नज़र नहीं आती। फिर भी, वास्तविकता इतनी सरल नहीं है। इस प्रक्रिया में कुछ गूढ़ मूल तत्त्व भी निहित हैं।

सबसे पहले तो दोनों संख्याओं को रखने की विधि में स्थान-मान का सिद्धांत ध्यान में रखना होता है। जोड़ने के लिए हमें संख्याओं को इस प्रकार रखना होता है कि समान स्थान-मान के अंक एक दूसरे के नीचे हों अर्थात् एक ही स्तंभ में हों। ऊपर के उदाहरण में दोनों संख्याओं में तीन-तीन अंक हैं। इसलिए उन्हें जिस प्रकार लिखा गया है वही 'स्वाभाविक रीति' प्रतीत होती है। परन्तु यह स्वाभाविक रीति अंकों की संख्या के भिन्न होने पर उतनी स्पष्ट नहीं रहती। उदाहरण के लिए यदि १५३ में २३ जोड़ने की समस्या हो तो इनको लिखने के लिए दो संभावित रीतियाँ सामने आती हैं :

$$\begin{array}{l} १५३ \\ +२३ \\ \hline \end{array} \qquad \begin{array}{r} १५३ \\ +२३ \\ \hline \end{array}$$

यदि हम दोनों में समान स्तंभ के अंकों को जोड़ने का प्रयास करें तो भिन्न योगफल प्राप्त होंगे। स्पष्ट है कि उनमें से एक ही ठीक होगा। पहले हम बाईं ओर के लिखने की विधि का अध्ययन करेंगे। समान स्तंभ के अंकों को जोड़ने पर योगफल ३८३ होता है। परंतु यदि १५३ में २३ की बजाए २३० जोड़ें तो क्या योगफल होगा? दोनों संख्याओं में

समान अंक होने से निम्न प्रकार लिखा जा सकता है :

१५३
२३०

इस प्रकार जोड़ने पर योगफल वही ३८३ प्राप्त हुआ। परन्तु यह तो वही फल है जो हमें ऊपर २३ जोड़ने पर मिला था। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे लिखने की विधि ने २३ को २३० का मान दे दिया। अनजाने मान-वृद्धि न हो जाए इसलिए योग के लिए संख्याओं को लिखने की वही विधि ठीक मानी जाती है जिसमें बराबर स्थान मान वाले अंक एक दूसरे के नीचे आएँ। अर्थात्, इकाई इकाई के नीचे और दहाई दहाई के नीचे . . . होना चाहिए। एक बार जब हम ठीक प्रकार से संख्याओं को लिख लेते हैं तब हम इकाई से प्रारंभ कर एक एक स्तंभ को जोड़ते हैं। तभी इच्छित फल प्राप्त होता है।

इस जोड़ने की मूलभूत क्रिया का महत्त्व समझने के लिए हम उस पर पुनः एक दृष्टि डालेंगे।

१५३ का अर्थ है : १ सौ + ५ दशक + ३ इकाई
और ३२४ का अर्थ है : ३ सौ + २ दशक + ५ इकाई

इन दो संख्याओं के जोड़ का अर्थ है कि हम निम्न राशि का मूल्य जानना चाहते हैं :

(१ सैकड़े + ५ दशक + ३ इकाई) + (३ सैकड़े + २ दशक + ५ इकाई)

हम इन राशियों को दूसरे क्रम में निम्न रीति से रख सकते हैं :

(१ सैकड़ा + ३ सैकड़ा) + (५ दशक + २ दशक) + (३ इकाई + ५ इकाई)

अर्थात् ४ सैकड़ा + ७ दशक + ८ इकाई

और इसी को हम अंकों के रूप में ४७८ लिखते हैं।

इससे यह स्पष्ट होगा कि साधारण रूप से जब हम जोड़ते हैं तो जब दूसरे स्तंभ में ५ + २ = ७ लिखते हैं तो वस्तुतः '५ दशक' और '२ दशक' को जोड़ कर उसका योग-फल '७ दशक' लिखते हैं अथवा दूसरे रूप से कहा जाए कि (५ × १०) + (२ × १०) = (५ + २) × १० = ७ × १०। दहाई के स्थान पर '७ दशक' को अंक ७ ही निरूपित करता है। सैकड़ा, हज़ार इत्यादि के जोड़ने में भी मूलरूप से यही प्रक्रिया होती है।

एक अन्य विशेषता है जोड़ने में। कभी-कभी हम जब एक स्तंभ की दो संख्याएँ जोड़ते हैं, जैसे ८ और ४, तो उनका जोड़ १२ होता है जो दो अंकों की संख्या है। इस स्थिति में हम दाहिने वाले अंक को तो उसी स्तंभ में रख देते हैं परन्तु बाएँ वाले अंक को 'हासिल' मान लेते हैं और जोड़े जाने वाले स्तंभ के बाएँ स्तंभ में जोड़ लेते हैं। उदाहरण के लिए :

३७८
+ ५८४

को जोड़ने के लिए हम करते हैं कि ८ + ४ = १२। इसमें २ को हम इकाई के स्तंभ में रख देते हैं और १ को हासिल मान कर दहाई के स्तंभ के अंकों में जोड़ देते हैं। यह इसलिए करते हैं कि वास्तव में १२ का अर्थ है १ दशक + २ इकाई। नियम के अनुसार

हम केवल इकाई के अंक को ही इकाई के स्तंभ में रख सकते हैं। दहाई के स्तभ के दोनों अंकों के साथ १ हासिल को भी जोड़ते हैं और इस प्रकार १+७+८=१६ प्राप्त होता है। इसमें से ६ को हम दहाई के स्तंभ में रखते हैं और १ हासिल आया उसे सैकड़े की ओर ले गए। यह इसलिए किया कि दहाई के स्तंभ में १६ का अर्थ होता है १६ दहाई अर्थात् १६×१०। और १६ का अर्थ है १ दहाई+६ इकाई अर्थात् १×१०+६। इसलिए १६×१०=(१×१०+६)×१०=१×१००+६×१० अर्थात् १ सैकड़ा और ६ दहाई। ६ दहाई को दहाई के स्तंभ में रखा और १ सैकड़ा को सैकड़े के स्तंभ के अंकों से जोड़ दिया ३+५+१=९। इस प्रकार इच्छित जोड़ ९६२ प्राप्त होता है।

प्रस्तुत विश्लेषण से सम स्थान-मान वाले अंकों को समान स्तंभ में रखने के नियम का मूल कारण स्पष्ट हो जाता है।

घटाना

यदि कोई पूछे कि ६ में से २ घटाने पर क्या शेष बचता है तो फ़ौरन हम कहेंगे ४। विचार करने की बात यह है कि क्या जिस प्रकार जोड़ने की सारिणी बनाई थी उसी प्रकार इसके लिए भी एक विशेष सारिणी बनानी पड़ेगी? इसकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वस्तुत: घटाना और जोड़ना मूल में एक ही क्रिया है। हम घटाने के प्रश्न को दूसरे प्रकार से कहें तो वह जोड़ का एक प्रश्न हो जाएगा। ६—२=? को हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि 'वह कौन सी संख्या है जिसे यदि २ में जोड़ा जाए तो योगफल ६ होगा?' अर्थात् गणितीय भाषा में २+?=६। इसका उत्तर हम अपनी जोड़ सारिणी अथवा याददाश्त से कहते हैं '४'। क्योंकि हमें यह मालूम है कि २+४=६। इसके आधार पर हम अपने घटाने के मूल प्रश्न का हल ६—२=४ के रूप में लिख सकते हैं।

व्यापक रूप से यदि क और ख कोई दो संख्याएँ हैं। य एक ऐसी संख्या है जिसे क में जोड़ने पर योगफल ख होता है अर्थात् क+य=ख। इस संबंध के आधार पर हम कहते हैं कि ख—क=य अर्थात् 'ख में से क घटाने पर य शेष रहता है।'

घटाने की गणितीय संक्रिया जोड़ जैसी ही है। उसमें भी इकाई, दहाई, सैकड़े इत्यादि के अंक एक-एक स्तंभ में ही लिखते हैं। इकाई के स्तंभ से प्रारंभ कर एक-एक स्तंभ के अंकों को घटाते जाते हैं। जोड़ में जिस प्रकार हम एक हासिल हो जाने पर इकाई से दहाई और दहाई से सैकड़े की ओर ले जाते हैं, घटाने में क्रिया इसकी उल्टी होती है। किसी एक स्तंभ में कमी पड़ने पर उसके बाईं ओर से स्तंभ से १ हासिल लिया जाता है। उदाहरणार्थ :

```
  ३८
 +१५
 ----
  ५३
```

जोड़ने में ८+५=१३=१०+३ होता है और हम ३ को इकाई में रख कर १ को दहाई की ओर ले जाते हैं। इसी के उलटे

$$\begin{array}{r} ५३ \\ -१५ \\ \hline \end{array}$$

घटाने में चूँकि पहले स्तम्भ में ५ से ३ छोटा है इसलिए घटाना संभव नहीं है। हम दहाई स्तम्भ की ओर देखते हैं और उसके अंक ५ में से १ को इकाई के स्तम्भ में ले जाते हैं और उसमें इकाई के अंक ३ को जोड़ देते हैं। दहाई का '१' इकाई में पहुँच '१०' हो जाता है और १०+३=१३ हो जाते हैं। इस १३ में से ५ का घटाना संभव है। इस घटाने की प्रक्रिया को हम अपने मस्तिष्क में ही पूरा कर लेते हैं। इसी मानसिक क्रिया का मूर्त्त रूप निम्न होता है:

दहाई	इकाई		दहाई	इकाई		दहाई	इकाई
५	३		४	१०+३		४	१३
—१	५		—१	५		—१	५

बड़ी संख्याओं के घटाने में भी यही सिद्धांत प्रयुक्त होता है।

गुणा

गुणा से हम साधारणतः सबसे पहले पहाड़े के रूप में परिचित होते हैं। स्कूल में २०×१० की गुणा-सारिणी को याद कर लेते हैं। छोटी संख्याओं का गुणनफल तो इस सारिणी के आधार पर अपनी स्मरण-शक्ति से ही बता देते हैं। बड़ी संख्याओं का गुणन भी गणितीय नियमों के आधार पर पहाड़ों की सहायता से निकाल लेते हैं।

गुणा क्या है? गुणा में दो संख्याएँ होती हैं एक गुण्य अर्थात् जिसे गुणा किया जाए और दूसरी गुणक अर्थात् जिससे गुणा किया जाए। इसके फल को गुणनफल कहते हैं। साधारणतः, गुणक पहले रखा जाता है और गुण्य बाद में तथा गुणनफल समीकरण के अंत में।

२ × ३ = ६

गुणक × गुण्य = गुणनफल

इसी को यदि ऊपर नीचे रखें तो गुण्य को ऊपर रखते हैं और गुणक को नीचे। यथा:

$$\begin{array}{r} ३ \\ \times २ \\ \hline ६ \end{array}$$

२×३ का अर्थ क्या है? किन्हीं भी तीन वस्तुओं को दो बार जोड़ना ३ का २ से गुणा कहलाता है। ३×४ का अर्थ है चार वस्तुओं को तीन बार जोड़ना:

४ ० ० ० ०
४ ० ० ० ०
४ ० ० ० ०
=१२

ऊपर चित्र में चार वस्तुओं की तीन बार आवृत्ति करने पर जो वस्तुएँ प्राप्त होती हैं उन्हें गिन लेने पर जो फल प्राप्त हो वही ३ × ४ का गुणनफल होगा।

अथवा हम अंकों के रूप में ही ३ × ४ को योग के रूप में रखें तो ३ × ४ का अर्थ है ४ + ४ + ४। जोड़ने की क्रिया, जिसे हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं, इसे हल करने में समर्थ है। ४ + ४ + ४ = १२ इसलिए ३ × ४ = १२।

यहाँ एक विशेष बात यह है कि यदि ३ × ४ में गुणक और गुण्य का स्थान आपस में बदल दें तो गुणनफल में कोई परिवर्त्तन नहीं होगा। उनके स्थान-परिवर्त्तन का अर्थ होगा ४ × ३ अर्थात् तीन वस्तुओं का चार बार जोड़ना।

३ ० ० ०
३ ० ० ०
३ ० ० ०
३ ० ० ० = १२

ऊपर ४ × ३ के चित्र और ३ × ४ के चित्र में अंतर केवल इतना है कि प्रथम चित्र के स्तंभ दूसरे की सीधी पंक्तियाँ हो गईं और उसकी पंक्तियाँ दूसरे के स्तंभ हो गए। अथवा यों कहें कि पहले आयत की लंबाई कि दिशा को उसकी चौड़ाई की दिशा में बदल दिया गया है। परंतु दोनों में पूरी वस्तुओं की संख्या वही है। हम ४ × ३ को अंकों के रूप में प्रस्तुत करें तब भी उसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे :

४ × ३ = ३ + ३ + ३ + ३ = १२

इस विश्लेषण से एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत की स्थापना होती है—गुणा में गुण्य और गुणक का स्थान परिवर्त्तन करने से गुणनफल में परिवर्त्तन नहीं होता।

३ × ४ = ४ × ३ = १२

व्यापक रूप से, यदि क और ख कोई दो संख्याएँ हैं, तो

क × ख = ख × क

संस्थाओं के इस गुण को हम संख्याओं के 'गुणन का साहचर्य नियम' कहते हैं।

अब हम तीन संख्याओं के गुणन पर विचार करेंगे। जैसे २ + ३ + ४ को जोड़ने में दो संभावनाएँ थीं—दाहिनी ओर से जोड़ प्रारंभ करना अथवा बाईं ओर से। उसी प्रकार २ × ३ × ४ के गुणा में भी दो मार्ग संभावित हैं। या तो दाहिनी ओर के दो अंकों का पहले गुणा कर, फिर अंतिम अंक से गुणा करें अर्थात् २ × (३ × ४)। अथवा पहले बाईं ओर के दो अंकों का गुणा करें और फिर दाहिनी ओर के अंक से गुणा करें अर्थात् (२ × ३) × ४।

२ × (३ × ४) = २ × (३ + ३ + ३ + ३)
= २ × १२ = १२ + १२ = २४
(२ × ३) × ४ = (२ + २ + २) × ४
= ६ × ४ = ६ + ६ + ६ + ६ = २४

इस प्रकार दोनों क्रमों से गुणा करने पर फल समान प्राप्त होता है। इससे सिद्ध होता है कि

२ × (३ × ४) = (२ × ३) × ४

इन्हीं क्रियाओं को यदि मूर्त्त रूप में देखें तो प्रथम क्रम का अर्थ :

	४					४			
	०	०	०	०		०	०	०	०
३	०	०	०	०	३	०	०	०	०
	०	०	०	०		०	०	०	०

दूसरे क्रम का मूर्त्त रूप हुआ : =२४

	२		२		२		२		
	०	०	०	०	०	०	०	०	
३	०	०	०	०	०	०	०	०	
	०	०	०	०	०	०	०	०	=२४

संख्याओं के इस गुण को हम संख्याओं के 'गुणन का क्रम विनिमेय नियम' कहते हैं।

यदि किन्हीं तीन संख्याओं का गुणा करना हो तो क्रम विनिमेय नियम और साहचर्य नियम के आधार पर समूहन गुणन को हम किसी भी क्रम में कर सकते हैं। यदि क, ख, ग कोई तीन संख्याएँ हैं तो उनका गुणनफल क×ख×ग होगा। और निम्न क्रमों में से सभी का गुणनफल वही होगा :

क×ख×ग=ख×क×ग=ग×ख×क ....

गणित में संख्याओं के इस गुण को हम सरलता पूर्वक फल प्राप्त करने के लिए बहुधा उपयोग करते हैं। निम्न उदाहरण देखिए।

मान लीजिए हमें कुछ अंकों का गुणा करना है जिसमें अठारह २ हैं और सोलह ५—

२×२×२×२×२×२×२×२×२×२×२×२×२×२×२×२
×२×२×५×५×५×५×५×५×५×५×५×५×५×५×५×५×
५×५

यदि हम किसी भी एक ओर से गुणा प्रारंभ करें तो लगभग आधा घंटा लग सकता है इसके गुणन में। परंतु हमें मालूम है कि २×५=१०। हम १०×१० को भी बड़ी जल्दी गुणा कर सकते हैं क्योंकि १०×१०=१००। ये दोनों तथ्य ऊपर के लंबे गुणन का मान निकालने में अत्यंत सहायक सिद्ध होते हैं। पर तभी जब हम 'गुणन के क्रम विनिमेय नियम' का उपयोग करें। इस नियम के कारण हम ऊपर की राशियों को गुणा करने के लिए किसी भी क्रम में रख सकते हैं। स्थान-परिवर्त्तन से गुणनफल में कोई अंतर नहीं आएगा। चूँकि ५×२=१० इसलिए यथा संभव हम ५ और २ के युग्म बनाकर इन राशियों को लिखें तो सहूलियत होगी। हमारे पास सोलह '५' और अठारह '२' हैं, इसलिए सोलह २ और ५ के युग्म लिखे जा सकते हैं। अंत में शेष दो '२' रख सकते हैं।

२×५×२×५×२×५×२×५×२×५×२×५×२×५×२×५
×२×५×२×५×२×५×२×५×२×५×२×५×२×५×२×५×
२×२

'गुणन के साहचर्य नियम' से हमें मालूम है कि इन संख्याओं को किसी भी क्रम में गुणा करें, फल वही मिलेगा। इसलिए गुणा करने के लिए हम इन राशियों को निम्न प्रकार कोष्ठकों में क्रमबद्ध कर सकते हैं :

$(२ \times ५) \times (२ \times ५) \times (२ \times ५) \times (२ \times ५) \times (२ \times ५) \times (२ \times ५) \times$
$(२ \times ५) \times (२ \times ५) \times (२ \times ५) \times (२ \times ५) \times (२ \times ५) \times (२ \times ५) \times$
$(२ \times ५) \times (२ \times ५) \times (२ \times ५) \times (२ \times ५) \times (२ \times २)$
$= १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times$
$१० \times १० \times १० \times १० \times १० \times ४$

१० के गुणन की क्रिया को हम अध्याय के अन्त में स्पष्ट करेंगे। यहाँ पर इस संबंध में हम इतना मान सकते हैं कि सोलह बार '१०' के गुणन का अर्थ है १ के सामने सोलह शून्य लिखना। इस प्रकार ऊपर का गुणनफल हुआ :

४०,००,००,००,००,००,००,००० (चालीस पदम)

कितनी सरल हो गई पूरी गुणन-प्रक्रिया।

संख्याओं के घात क्या हैं ?

उपर्युक्त उदाहरण में सोलह बार '५' आया और अठारह बार '२'। लिखने की विधि देखकर हमें प्राचीन रोम और यूनान का ध्यान आना स्वाभाविक है, जहाँ छोटी संख्याओं को भी बड़े आकार में लिखा जाता था। क्या अन्य कोई सरल विधि भी है इसे लिखने की ?

गणित में इस प्रकार की संख्याओं को लिखने की एक सरल विधि का उपयोग होता है। उसी अंक के अनेक बार गुणन को निम्न रूप से लिखने की प्रथा है :

$$२ \times २ = २^{२}$$
$$२ \times २ \times २ = २^{३}$$
$$२ \times २ \times २ \times २ = २^{४}$$

अर्थात् जो संख्या एक से अधिक बार आवर्त्त होती है, उसे केवल एक बार लिख कर उसके दाहिनी ओर थोड़े से ऊँचे पर जितनी बार वह संख्या आवर्त्त होती है, वह अंक लिख देते हैं। यह ऊपर लिखा अंक नीचे की संख्या का घात कहलाता है। नीचे की लिखी संख्या उसका 'आधार' कहलाती है। गणित में $२^{२}$, $२^{३}$ को क्रमशः 'दो वर्ग' और 'दो घन' कहते हैं। परंतु '३' से ऊँचे घातों के लिए ऐसे कोई विशेष शब्द नहीं हैं। $२^{४}$ को 'दो घात चार' $२^{१८}$ को 'दो घात अठारह' तथा $५^{१६}$ को 'पाँच घात सोलह' कहते हैं। ऊपर के उदाहरण में '२' अठारह बार आया है ,इसलिए '२' के अठारह बार गुणन को $२^{१८}$ लिखा जा सकता है और ५ सोलह बार आया है तो उसे $५^{१६}$। इस प्रकार वह पूरी राशि को निम्न प्रकार छोटे रूप में लिखा जा सकता है :

$$२^{१८} \times ५^{१६}$$

इन राशियों के गुणनफल में दाहिनी ओर १० सोलह बार आया है। इसलिए उसे हम $१०^{१६}$ और २×२ को $२^{२}$ लिख सकते हैं। इस प्रकार

$$२^{१८} \times ५^{१६} = १०^{१६} \times २^{२} = ४ \times १०^{१६}$$

कितनी सरल है यह लिखने की रीति। जहाँ एक ओर पहली रीति में गुणन का मान

जानने के लिए अंकों को गिनना पड़ता था। नई विधि में लिख संख्या को देखते ही उस के मान का भान हो जाता है।

घातों का गुणन और भाग

यदि एक ही संख्या को दो घातों से गुणा किया जाए तो क्या होगा? क्या हमें उसे पूर्ण विस्तृत रूप में लिखकर गुणन क्रिया करनी होगी? मान लीजिए $२^३ \times २^४$ का गुणनफल निकालना है तो विस्तृत गुणन रीति कुछ निम्न प्रकार होगी :

$$२^३ \times २^४ = (२ \times २ \times २) \times (२ \times २ \times २ \times २)$$
$$= २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २$$
$$= २^७$$

यदि हम दाहिनी ओर के फल को ध्यान से देखें तो उस ओर का घात ७ बाईं ओर के घातों का योग है अर्थात् ७ = ३ + ४। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः गुणन क्रिया निम्न प्रकार भी की जा सकती है :

$$२^३ \times २^४ = २^{३+४} = २^७$$

वास्तव में यह ठीक है। हम चाहें तो देख सकते हैं कि किसी एक संख्या के दो घातों का गुणनफल उसी संख्या का वह घात है जो दोनों घातों के योग के बराबर होता है। यदि क कोई संख्या है और त एवं थ कोई भी दो पूर्णांक हैं तो

$$क^त \times क^थ = क^{त+थ}$$

इसी प्रकार सम आधार के घातों के भाग के लिए भी एक नियम है। मान लीजिए $२^८ \div २^५$ का मान मालूम करना है :

$$२^८ \div २^५ = (२ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २) \div (२ \times २ \times २ \times २ \times २)$$
$$= \frac{२ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २}{२ \times २ \times २ \times २ \times २}$$
$$= २ \times २ \times २ = २^३$$

इस फल को ध्यान से देखने पर अन्तिम घात ३ भाज्य और भाजक के घात ८ और ५ का अंतर है। ३ = ८ − ५। इस भाग की क्रिया को हम निम्न प्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं :

$$२^८ \div २^५ = २^{८-५} = २^३$$

जहाँ गुणा में दो घातों का योग हो जाता है और वहाँ भाग में उनका ऋण हो जाता है। व्यापक रूप से

$$क^त \div क^थ = क^{त-थ}$$

दो का शून्य घात ?

एक स्पष्टीकरण शेष बच रहता है। हम $२ \times २ \times २$ को $२^३$ लिखते हैं। इसी नियम से हम २ को $२^१$ भी लिख सकते हैं क्योंकि २ का एक ही बार आवर्त्तन हुआ है। अर्थात् $२ = २^१$ या यों कहें कि 'दो घात एक' स्वयं संख्या २ ही है। अब यदि हम इसी क्रम को जारी रखें तो हम पूछ सकते हैं $२^०$ क्या है ? अथवा 'दो का स्वयं में शून्य बार गुणा करने का क्या अर्थ है ?'

यह साधारण रूप से समझ में आने वाली बात नहीं है। इसके स्पष्टीकरण के लिए हम भाग के व्यापक नियम की ओर ध्यान देंगे। यह तो हम जानते हैं कि चार में चार का भाग देने पर भजनफल १ होता है अर्थात् $४ \div ४ = १$। परंतु इसी भाग को यदि हम $२^२ \div २^२$ के रूप में रखें तो ऊपर वर्णित नियम से $२^२ \div २^२ = २^{२-२} = २^०$ बाईं ओर की राशि तो $४ \div ४$ है जिसका मान १ है। इसलिए दांहिनी ओर की राशि $२^०$ का भी वही मान होना चाहिए।

व्यापक रूप से यदि क कोई भी एक संख्या है तो

$$क^{त} \div क^{त} = क^{त-त} = क^{०}$$

परंतु किसी भी संख्या को उसी संख्या से भाग देने पर भजनफल १ होता है। इसलिए बाईं ओर की राशि $क^{त} \div क^{त} = १$। इस प्रकार 'किसी भी संख्या के घात शून्य' का मान १ होता है। अर्थात्,

$$क^{०} = १$$

ध्यान रहे कि 'क' स्वयं शून्य नहीं होना चाहिए क्योंकि $०^०$ का मान १ नहीं हो सकता। वास्तव में $०^० = ०$।

गुणन की साधारण क्रिया को समझने के पूर्व संख्या में १० के द्वारा गुणन को समझना उचित होगा। मान लीजिए कि हमें ७ में १० का गुणा करना है। यदि हम ७ को १० से गुणा करें तो हम १०×७ लिखेंगे। साहचर्य नियम से उसे ७×१० भी लिखा जा सकता है। ७×१० का अर्थ है ७ दहाई। परंतु अब इकाई के स्थान पर कोई अंक नहीं है और दहाई के स्थान पर केवल '७'। इस संख्या को हम '७०' लिखते हैं। '७' और '७०' में क्या अंतर है ? इस गुणन क्रिया में ७ इकाई के स्थान से हट कर दहाई के स्थान पर पहुँच गया और इकाई के रिक्त स्थान पर हमने शून्य रख दिया। मूर्त्त रूप से ७ को १० से गुणा करने में निम्न प्रक्रिया दिखाई देगी :

	दहाई	इकाई
१० ×		७
=	७ ↙	०

अब यदि हम ७० को फिर १० से गुणा करें तो क्या फल प्राप्त होगा ? इस नये

गुणन को हम निम्न रूप से लिख सकते हैं:

$$१० \times (१० \times ७) = १० \times १० \times ७ = ७ \times १० \times १०$$
$$= ७ \times १०^{२} = ७ \text{ सैकड़ा}$$

चूंकि '$१०^{२}$' का अर्थ है 'सैकड़ा'। इसलिए ७ जब दहाई पर है तब दस से गुणा करने पर ७ का अंक दहाई से सैकड़े पर पहुँच जाता है। अब दहाई के स्थान पर कुछ नहीं होगा। इस तथ्य को उस स्थान पर शून्य रख कर व्यक्त किया जाता है। अंकों में लिखने पर यह गुणनफल '७००' लिखा जाएगा। मूर्त्त रूप में यह गुणन निम्न प्रकार है:

	सैकड़ा	दहाई	इकाई
१० ×		७	०
=	७ ←	०	०
१०० ×			७
=	७ ←	०	०

इसी प्रकार ७ को यदि १०० अर्थात् $१०^{२}$ से गुणा करें तो $१०^{२} \times ७ = १० \times १० \times ७$ होता है जो दो बार १० से गुणा करने के समान ही है। ७ में दस का दो बार गुणा करने से ७ का अंक इकाई से सैकड़े पर पहुँच जाता है अर्थात् वह बाईं ओर दो स्थान हट जाता है।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होगा कि प्रत्येक बार दस से गुणा होने पर गुण्य अंक एक स्थान बाईं ओर हट जाता है। इसलिए किसी अंक को $१०^{न}$ से गुणा करने का अर्थ उस अंक का 'न' स्थानों से बाईं ओर हट जाना होता है। जिसे दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि उस अंक के दाहिनी ओर 'न' शून्य लग जाते हैं और उसके स्थान-मान की वृद्धि हो जाती है।

ऊपर के उदाहरण में संख्या ७ थी जिसमें केवल एक ही अंक था। यदि एक अंक से अधिक की संख्या में १० से गुणा करें तब क्या होगा? उदाहरण के लिए १०×२५३ का गुणनफल क्या होगा?

२५३ को यदि हम प्रत्येक अंक के वास्तविक मूल्य का खुलासा करके लिखें तो निम्न रूप होगा:

$$२५३ = (२ \times १००) + (५ \times १०) + ३$$
$$= २ \times १०^{२} + ५ \times १० + ३$$

अर्थात् दो 'सैकड़ा', पाँच 'दहाई' और तीन 'इकाई'।

$$१० \times २५३ = १० \times (२ \times १०^{२} + ५ \times १० + ३)$$
$$= १० \times (२ \times १०)^{२} + १० \times (५ \times १०) + १० \times ३$$
$$= २ \times १०^{३} + ५ \times १०^{२} + ३ \times १०$$

अर्थात् दो 'हज़ार', पाँच 'सैकड़ा', तीन 'दहाई'।

इस प्रकार ३ 'इकाई' के बजाय 'दहाई' हो गया, ५ 'दहाई' के बजाय 'सैकड़ा' हो गया और २ 'सैकड़ा' के बजाय 'हज़ार' हो गया। 'इकाई' स्थान पर कुछ नहीं है अर्थात् शून्य है। इसलिए :

$$१० \times २५३ = २५३०$$

मूर्त्त रूप से गुणन निम्न प्रकार है :

	हज़ार	सैकड़ा	दहाई	इकाई
१० ×		२	५	३
=	२ ←	५ ←	३ ←	०

इस प्रकार १० से किसी भी संख्या को गुणा करने पर उस संख्या के प्रत्येक अंक को एक स्थान-मान का लाभ हो जाता है और इकाई के स्थान पर शून्य आ जाता है। अर्थात् उस संख्या के बाद एक शून्य लगा देने मात्र से १० द्वारा गुणा पूर्ण हो जाता है।

अब आइए १० के अलावा अन्य संख्याओं द्वारा गुणन क्रिया का अध्ययन करें। मान लीजिए २१२ को ३ से गुणा करना है।

२१२
३

परंतु २१२=२००+१०+२। इसलिए २१२ को ३ से गुणा करने का मतलब है २००+१०+२ को ३ से गुणा करना। अर्थात् :

$$\begin{aligned} ३ \times २१२ &= ३ \times (२०० + १० + २) \\ &= ३ \times २०० + ३ \times १० + ३ \times २ \\ &= ६०० + ३० + ६ \\ &= ६३६ \end{aligned}$$

साधारण रूप से गुणा करने में हम यह पूरी प्रक्रिया नहीं अपनाते। इस पूरी संख्या को दाहिनी ओर से गुणा करना प्रारंभ करते हैं। ३ को इकाई के २ से गुणा कर गुणनफल ६ आया, उसे इकाई के स्थान पर ही रख दिया, दहाई के १ को गुणा कर जो गुणनफल ३ आया उसे दहाई में रख दिया और सैकड़े के २ को गुणा करने से ६ प्राप्त हुआ, उसे सैकड़े के स्थान पर रख दिया। इस प्रकार गुणनफल ६३६ हुआ। मूर्त्त रूप में गुणन क्रिया इस प्रकार है :

यह विधि गुणन के सभी प्रश्नों के लिए पर्याप्त नहीं है। यदि १८७×३ का गुणनफल मालूम करना हो तो एक नई समस्या सामने आती है।

ऊपर की क्रिया में इकाई के ७ को ३ से गुणा करने पर २१ आया। परंतु 'इकाई' के स्थान पर दो अंक तो रखे नहीं जा सकते, इसलिए केवल १ को इकाई पर रखा और २० बच रहे। इसी '२०' को हम दहाई के स्थान पर ले जाते हैं और साधारण भाषा में कहते हैं कि दहाई के स्थान के लिए २ हासिल आए। दहाई के स्थान की ओर बढ़ें तो पहली बात तो यह स्मरण रखना होगी कि उस स्थान का ८ वास्तव में '८०' है। उसे ३ से गुणा करने पर २४० हुए। इकाई के स्थान के शेष २० को इसमें जोड़ने पर फल २६० मिला।

इसमें से दहाई के स्थान पर रखने के लिए केवल ६० ही उपलब्ध हैं। उसे दहाई

क स्थान पर '६' के रूप में लिख दिया। ६० के निकालने पर २६० में से २०० शष रहते हैं। इसी को हम कहते हैं कि सैकड़े के स्थान के लिए २ हासिल आए। सैकड़े के स्थान के '१' अर्थात् १०० को ३ से गुणा करने पर फल ३०० हुआ और उसमें हासिल का '२' अर्थात् २०० जोड़ने पर फल ५०० हुआ जो सैकड़े के स्थान पर '५' के रूप में लिख दिया। इस प्रकार गुणनफल हुआ ५६१। जब हम गुणन क्रिया करते हैं तब '८' के लिए ८० और '१' के लिए १०० को व्यक्त रूप से हमेशा नहीं लिखते हैं। यह ध्यान अवश्य रखते हैं कि जब दहाई के अंक से गुणा हो तब उसके गुणनफल का अंतिम अंक दहाई के स्थान पर ही रखा जाए। यह नियम ऊपर दर्शाई क्रिया का सूक्ष्म रूप है।

इसी प्रकार गुणक में भी एक से अधिक अंक होने की स्थिति में गुणा किया जाता है। उदाहरण के लिए १८७ × २१३ का गुणनफल निकालना है तो क्रिया निम्न प्रकार होगी। गुणक २१३ का वास्तविक रूप है (२००+१०+३)।

	१८७
	२१३
१८७ × ३ =	५६१
१८७ × १० =	१८७
१८७ × २०० =	३७४
	३९,८३१

ऊपर दाहिनी ओर सामान्य गुणा प्रणाली से गुणनफल निकाला गया है। बाईं ओर उसमें अंतर्निहित नियम का खुलासा किया गया है। गुणक के दहाई के अंक १ से गुणा करने का अर्थ है गुण्य को १० से गुणा करना। १० से गुणा का अर्थ है गुण्य की प्रत्येक अंक की एक-एक स्थान वृद्धि और अंत में एक ० लगा देना। व्यवहार में हम यह शून्य नहीं लगाते। पहिली पंक्ति लिखने पर इकाई, दहाई इत्यादि के स्थान निश्चित हो जाते हैं। इसलिए दूसरी पंक्ति में बिना कठिनाई के ही प्रथम अंक का लिखना दहाई से प्रारंभ किया जा सकता है। इस अवस्था में इकाई के स्थान को खाली छोड़ देने का भी वही अर्थ है जो उस स्थान पर शून्य रखने से होता। हमें ध्यान होगा कि ० का आविष्कार इसीलिए किया गया कि यह चिह्न खाली स्थान की पूर्त्ति तो करे, पर उसका मान कुछ भी न हो। इसी प्रकार सैकड़े के अंक से गुणा करने पर हम पहला अंक दहाई के गुणा के अंतिम अंक से एक स्थान ओर बाईं ओर हटा कर, अर्थात् सैकड़े के अंक से प्रारंभ करते हैं।

इस नियम के अनुसार बड़ी-बड़ी संख्याओं का सरलता से गुणन करना संभव हुआ है। इसके बिना सहस्रों वर्ष तक मनुष्य ने कितनी कठिनाई उठाई इसका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता।

भाग का अर्थ है विभाजन—किसी एक संख्या को अनेक बराबर हिस्सों में विभाजित करना। यदि हमारे पास २० आम हैं और हर एक व्यक्ति को ५ आम देने हैं तो इन आमों को हम कितने व्यक्तियों को दे सकते हैं। हम २० आम लें और बाँटना शुरू कर दें तो उत्तर मालूम हो जाएगा।

ऊपर की क्रिया करने पर केवल चार व्यक्तियों को आम देने के बाद कुछ शेष नहीं रहा। यह बाँटने की संक्रिया गणितीय भाषा में चार बार घटाने की संक्रिया हुई।

```
२०
 ५
——  . . . . . . . . . .  १
१५
 ५
——  . . . . . . . . . .  १
१०
 ५
——  . . . . . . . . . .  १
 ५
 ५
——  . . . . . . . . . .  १
 ०
```

इस प्रकार भाग, गुणा की विपरीत क्रिया होती है। गुणा में हम जोड़ते हैं और भाग में घटाते हैं।

जिस प्रकार हमने घटाने की समस्या के प्रश्न को थोड़ा-सा बदल कर जोड़ की समस्या का रूप दिया था, उसी प्रकार भाग की समस्या को भी हम गुणा की समस्या बना सकते हैं। '५६ में ७ से भाग देने से क्या भजनफल होगा ?' इस प्रश्न को हम इस रूप में भी कह सकते हैं कि '७ में किस संख्या का गुणा करें जिससे गुणनफल ५६ हो ?' अर्थात्

५६ ÷ ७ = ? और ७ × ? = ५६

दोनों मूलरूप में एक ही समस्या हैं। पहाड़े याद करने के बाद यह देखने के लिए कि वे बालक को अच्छी तरह याद हो गए हैं या नहीं, हम बालक से कुछ इसी प्रकार के प्रश्न पूछते हैं 'कितने सत्ते छप्पन'? गुणन तालिका के आधार पर उत्तर आता है 'आठ'।

यहीं पर अनजाने भाग की क्रिया प्रारंभ हो जाती है। बाद को यही प्रश्न एक समस्या के रूप में प्रस्तुत होता है—'एक टोकरी में ५६ आम हैं और यदि उनको ७ बालकों में बराबर-बराबर बाँट दिया तो बताओ प्रत्येक बालक को कितने आम मिले ?' इसका उत्तर पाने के लिए अन्य सब बातों को छोड़ कर बालक को अपने मन में प्रश्न करना होता है 'कितने सत्ते छप्पन' ? और उसे इस प्रकार उत्तर मिल जाता है। यहीं पर बालक गणित में अमूर्त्तीकरण के सिद्धांत के अनुसार आगे बढ़ना सीखता है। पर यदि वह इन दोनों प्रश्नों का मूल संबंध स्पष्ट रूप से न देख पाए तो उसके लिए समस्या कुछ कठिन ही होगी।

भाग की क्रिया को विस्तार में यहाँ स्थानाभाव के कारण देना संभव नहीं है। गुणा और भाग सार रूप में एक ही प्रक्रिया के दो रूप हैं, यही स्पष्ट कर हम इस विषय से अवकाश लेंगे।

अध्याय ५

कुछ अन्य संख्या-पद्धतियाँ

एक देवी के पद-चिह्न

चीन की सबसे प्राचीन उपलब्ध पुस्तक 'आइकिंग' है। यह ३००० वर्ष से भी अधिक पुरानी है। इस पुस्तक में सम्राट् फूही के राज्यकाल का वर्णन है। कहते हैं कि उस समय एक नदी के किनारे एक देवी दिखाई दी थी। किसी ने उसे समीप से नहीं देखा परंतु उस नदी की रेत पर उसके कुछ पद-चिह्न बने मिले थे। ये चिह्न कुछ निम्न प्रकार के थे :

इन चिह्नों को वे लोग पकुआ कहते थे। उनका विश्वास था कि ये चिह्न अलौकिक शक्ति-सम्पन्न वर्तमान समय तक चीन के ज्योतिषी इन पकुओं का उपयोग करते रहे हैं। चीनी लोग ताबीज़ों और घरेलू बर्तनों पर भी इन पकुओं को खुदवाते रहे हैं।

इन चिह्नों को क्रमशः पृथ्वी, पर्वत, जल, वायु, गरज, अग्नि, भाप और स्वर्ग का प्रतिरूप भी माना जाता रहा है।

आधुनिक विद्वानों का कहना है कि वस्तुतः ये चिह्न एक अन्य संख्या-प्रणाली में क्रमशः ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७ इन आठ अंकों को निरूपित करते हैं। आइए, देखें यह किस प्रकार होता है।

इस देवी के पद-चिह्नों में मूल रूप से दो प्रकार के चिह्न हैं—एक तो खंडित रेखा — — और दूसरे संपूर्ण रेखा —— । इन्हीं दो चिह्नों के विभिन्न रूप में आवर्त्तन से ये आठों चिह्न बने हैं।

यदि ये चिह्न संख्यांकों को निरूपित करते हैं तो प्रश्न यह उठता है कि क्या दो चिह्नों के आधार पर पूरे संख्या समुदाय की रचना हो सकती है? हमें याद है कि हमारी दशमलव प्रणाली में आधार रूप से दस चिह्नों (०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९) की आवश्यकता होती है। इन चिह्नों तथा स्थान-मान के सिद्धांत के सहारे हम पूरे प्रकृति-संख्या जगत् का निर्माण कर सकते हैं। जितनी बड़ी भी चाहे संख्या लिख सकते हैं। परंतु

यहाँ हम पूछ सकते हैं कि क्या ये दस संख्या-चिह्न संख्या-जगत् के निर्माण के लिए अनिवार्य हैं ?

दशमलव प्रणाली के विश्व-व्यापी उपयोग को देख कर यह विचार आना स्वाभाविक ही है कि या तो यही एकमात्र संभव प्रणाली है अथवा यदि कोई अन्य प्रणाली हो भी तो वह कष्टसाध्य होगी। वस्तुतः इन दोनों विकल्पों में से पूर्ण रूप से कोई भी सत्य नहीं है। यह एक संयोग है कि हमारे दोनों हाथों में दस अँगुलियाँ हैं और इसीलिए हमारे पूर्वजों ने दस को संख्या-पद्धति का आधार बनाया। इस पद्धति का अब इतना अधिक प्रचलन हो चुका है कि वही हमें स्वाभाविक और एकमेव पद्धति प्रतीत होती है। वस्तुस्थिति यह है कि यह पद्धति अनेक संभव पद्धतियों में से एक है।

द्वि-आधारी संख्यांक पद्धति

अन्य संभव पद्धतियों की खोज के लिए हम अपने जाने-पहचाने संख्यांकों के विकास का पुनः निरीक्षण करेंगे। मुख्य रूप से हमारे समक्ष दो आधार तत्त्व आते हैं।

प्रथम है इकाई का आभास। मनुष्य का संख्या-ज्ञान इकाई अथवा एक से प्रारंभ हुआ था। उसे निरूपित करने के लिए उसने एक खड़ी या आड़ी रेखा का उपयोग किया। प्रारंभ में एक से अधिक वस्तुओं का निरूपण इस रेखा के आवर्त्तन से ही हुआ। इस प्रकार कोई भी संख्या रेखाओं द्वारा व्यक्त की जा सकती थी—'दो' के लिए दो रेखाएँ, 'पाँच' के लिए पाँच और 'हज़ार' के लिए हज़ार रेखाएँ। बाद में सुविधा के लिए बड़ी संख्याओं के लिए विशेष चिह्न प्रयोग में आने लगे। पर ये सभी चिह्न अपने अंतर में उन रेखाओं को ही छुपाए हैं। संख्या १ उन सभी अंक-चिह्नों का आधार है और मूल भी।

दूसरे तत्त्व का समावेश स्थान-मान के सिद्धांत के साथ हुआ। दशमलव पद्धति का आधार है स्थान-मान का सिद्धांत और स्थान-मान की आत्मा है 'अभाव को मूर्त्त रूप देने के लिए शून्य का आविष्कार'।

पर शून्य स्वयं में कुछ नहीं है। वह तो किसी दूसरे का आधार बन कर ही सार्थक हो सकता है। दशमलव पद्धति में वह अन्य नौ अंकों का संबल होता है। यदि हम किसी नई पद्धति में कम या अधिक अंक चिह्नों का उपयोग करें, तो उनका आधार भी शून्य ही होगा।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि किसी भी संख्यांक पद्धति के लिए दो आधार-भूत तत्त्व नितांत आवश्यक हैं। वे हैं 'इकाई' और 'शून्य'। क्या इन्हीं दो तत्त्वों द्वारा एक संख्यांक पद्धति बनाई जा सकती है? हाँ, यह संभव है। ऊपर वर्णित देवी के पद-चिह्नों में भी मूल रूप से दो ही चिह्न हैं। केवल दो अंक-चिह्नों पर आधारित पद्धति को हम द्वि-आधारी संज्ञा देते हैं।

दशमलव पद्धति में आधारभूत दस संख्या-चिह्न हैं और किसी भी संख्या-चिह्न का मान दाहिनी ओर से बाईं ओर एक स्थान के लाभ के साथ दस गुना बढ़ जाता है। इस प्रकार ३३३३ में विभिन्न स्थानों में ३ का वास्तविक रूप यह होता है:

द्वि-आधारी संख्यांक पद्धति में हमारे पास केवल दो संख्या-चिह्न हैं '०' और '१'। इन दोनों में '०' का स्वयं में कोई मूल्य नहीं है। केवल '१' ही स्थान-लाभ के साथ मान-लाभ कर सकता है। जब हमारे पास दस संख्या-चिह्न हैं तब मान-लाभ दस गुना होता है। इसलिए जब हमारे पास केवल दो संख्या चिह्न हैं तब मान-लाभ दो गुना ही होगा। जिस स्थान पर '१' नहीं है, वहाँ अभाव-पूर्ति के लिए '०' का उपयोग करना होगा।

जब द्वि-आधारी पद्धति में '१' पहले स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचता है, तब यदि प्रथम स्थान पर कोई अंक नहीं है तो उसकी पूर्ति के लिए शून्य लगाना होगा। इस प्रकार '१' का दूसरे स्थान पर पहुँचना '१०' रूप में लिखा जाएगा।

	दूसरा स्थान	प्रथम स्थान	
प्रथम स्थान में '१'		१	=१
दूसरे स्थान में '१'	१	०	=१०

परंतु ध्यान रहे कि '१०' हमारा जाना-पहचाना दस नहीं है। अब हम द्वि-आधारी दुनिया में विचरण कर रहे हैं। यहाँ १ से बड़ी संख्या को निरूपित करने वाले कोई विशेष अंक-चिह्न नहीं हैं।

द्वि-आधारी '१०' में '१' पहले स्थान से दूसरे स्थान पर आया है। हमारी भाषा में उसका मान दो गुना हो गया है। इसलिए वस्तुतः '१०' हमारे दशमलव पद्धति के संख्या-चिह्न '२' का द्वि-आधारी रूप है।

दूसरा स्थान	प्रथम स्थान	
	१	१=२°=१
१	०	१×२=२¹=२

इसी प्रकार यदि यह '१' एक स्थान और बाईं ओर हट जाता है तो उसका मान और भी बढ़ जाएगा और वह दूसरे स्थान की अपेक्षा दो-गुना हो जाएगा।

तीसरा स्थान	दूसरा स्थान	प्रथम स्थान	
		१	$१=२^{०}=१$
	१	०	$१\times२=२^{१}=२$
१	०	०	$१\times२\times२=२^{२}=४$

इस प्रकार द्वि-आधारी जगत् का १०० हमारे दशमलव पद्धति के संख्या-चिह्न ४ का ही दूसरा रूप है।

यह प्रक्रिया इसी प्रकार चालू रहेगी। '१' ज्यों-ज्यों बाईं ओर बढ़ता जाएगा उसका मान द्विगुण होता जाएगा। द्वि-आधारी १००० दशमलव पद्धति का संख्या-चिह्न ८ होगा, द्वि-आधारी १०,००० हमारा संख्या-चिह्न १६...इत्यादि। द्वि-आधारी १,१११ का मान दशमलव रूप में १५ होता है:

दशमलव से द्वि-आधारी

द्वि-आधारी पद्धति में किसी भी स्थान पर लिखा हुआ सख्या-चिह्न '१' दशमलव पद्धति के '२' का एक घात होता है। इसलिए किसी दशमलव अंक को द्वि-आधारी पद्धति में व्यक्त करने के लिए उसे '२' के घातों के रूप में व्यक्त करना होगा। अगले पृष्ठ पर दी गई तालिका में कुछ दशमलव अंकों को '२' के घातों के रूप में व्यक्त कर द्वि-आधारी रूप में प्रस्तुत किया गया है।

शाधारी	दो के घातों के रूप में परिवर्त्तन	द्वि-आधारी
०	०×२^{०}	०
१	१×२^{०}	१
२	$१\times२^{१}+०\times२^{०}$	१०
३	$१\times२^{१}+१\times२^{०}$	११
४	$१\times२^{२}+०\times२^{१}+०\times२^{०}$	१००
५	$१\times२^{२}+०\times२^{१}+१\times२^{०}$	१०१
६	$१\times२^{२}+१\times२^{१}+०\times२^{०}$	११०
७	$१\times२^{२}+१\times२^{१}+१\times२^{०}$	१११
८	$१\times२^{३}+०\times२^{२}+०\times२^{१}+०\times२^{०}$	१०००
९	$१\times२^{३}+०\times२^{२}+०\times२^{१}+१\times२^{०}$	१००१
१०	$१\times२^{३}+०\times२^{२}+१\times२^{१}+०\times२^{०}$	१०१०
११	$१\times२^{३}+०\times२^{२}+१\times२^{१}+१\times२^{०}$	१०११
१२	$१\times२^{३}+१\times२^{२}+०\times२^{१}+०\times२^{०}$	११००
१३	$१\times२^{३}+१\times२^{२}+०\times२^{१}+१\times२^{०}$	११०१
१४	$१\times२^{३}+१\times२^{२}+१\times२^{१}+०\times२^{०}$	१११०
१५	$१\times२^{३}+१\times२^{२}+१\times२^{१}+१\times२^{०}$	११११
	....	
५०	$१\times२^{५}+१\times२^{४}+०\times२^{३}+०\times२^{२}$ $+१\times२^{१}+०\times२^{०}$	=१,१०,०१०
	....	
१००	$१\times२^{६}+१\times२^{५}+०\times२^{४}+०\times२^{३}$ $+१\times२^{२}+०\times२^{१}+०\times२^{०}$	=११,००,१००

इस प्रकार कोई भी दशाधारी संख्या द्वि-आधारी संख्यांक पद्धति में परिवर्त्तित की जा सकती है।

ऊपर तालिका में छोटे दशाधारी अंक भी द्वि-आधारी पद्धति में बड़-बड़े अंक प्रतीत होते हैं। १०० को द्वि-आधारी पद्धति में लिखने के लिए सात अंकों की आवश्यकता पड़ी। यह सात स्थानों तक लिखी संख्या दशमलव पद्धति में दस लाख से भी बड़ी संख्या होती। पर अंतर यह है यहाँ हमारा काम केवल दो संख्या-चिह्नों से चल गया; दस की आवश्यकता नहीं पड़ी।

ऊपर तालिका में दी गई परिवर्त्तन विधि अथवा आधार-बदल किंचित् कठिन प्रतीत होती है। दशमलव अंकों को द्वि-आधारी बनाने के लिए एक सरल नियम भी है। यह नियम भी सिद्धांत रूप से उसी प्रक्रिया पर आधारित है, पर है अधिक सरल और बोध-गम्य। आधार-बदल के लिए हम दशमलव पद्धति की संख्या में दो से भाग देते हैं और जो शेष आता है उसे उसी के बराबर में एक स्तंभ में लिखते जाते हैं। २ से भाग देने से शेष १ या ० ही बच सकता है—दोनों ही अवस्था में शेष उसी प्रकार लिखते हैं। यह क्रिया

तब तक करते हैं जब तक भागफल स्वयं शून्य न हो जाए। इस प्रकार अंत में शेष-स्तंभ में १, ० ही एक क्रम में मिलते हैं। इस स्तंभ में नीचे की ओर अंतिम शेष संख्या से प्रारंभ कर सभी शेष संख्याओं को एक पंक्ति में बाईं ओर से दाहिनी ओर लिख लेते हैं। इस प्रकार जो संख्या प्राप्त होती है वह उस दशमलव संख्या का द्वि-आधारी रूप होता है। कुछ उदाहरणों से यह क्रिया स्पष्ट हो जाएगी :

			शेष
२	२		
२	१	. . . .	०
	०	. . . .	१

२=१०

			शेष
२	३		
२	१	. . . .	१
	०	. . . .	१

३=११

			शेष
२	४		
२	२	. . . .	०
२	१	. . . .	०
	०	. . . .	१

४=१००

			शेष
२	५		
२	२	. . . .	१
२	१	. . . .	०
	०	. . . .	१

५=१०१

		शेष
२	६	
२	३	०
२	१	१
	०	१

६=११०

२	७	
२	३	१
२	१	१
	०	१

७=१११

२	८	
२	४	०
२	२	०
२	१	०
	०	१

८=१०००

२	९	
२	४	१
२	२	०
२	१	०
	०	१

९=१००१

एक बड़ी संख्या भी लीजिये:

		शेष
२	४५९१	
२	२२९५	१
२	११४७	१
२	५७३	१
२	२८६	१
२	१४३	०
२	७१	१
२	३५	१
२	१७	१
२	८	१
२	४	०
२	२	०
२	१	०
	०	१

४,५९१=१०,००,११,११,०१,१११

द्वि-आधारी संख्याओं को दशाधारी संख्याओं में परिवर्त्तित करने के लिए इसका उलटा क्रम आवश्यक होगा। दो के द्वारा लगातार गुणा कर प्रत्येक अंक का स्थान-मान दशाधारी रूप में लिख कर दशाधारी संख्या प्राप्त होगी। उदाहरण के लिए यदि ११,०१,११० का मान निकालना है तो स्थान-मान के हिसाब से इस संख्या के प्रत्येक अंक का मान निकाल कर जोड़ने पर दशाधारी संख्या प्राप्त होगी। सहूलियत के लिए दाहिनी ओर से एक-एक अंक लेकर निम्न प्रकार लिखें :

$$११,०१,११० = ० \times २^{०} + १ \times २^{१} + १ \times २^{२} + १ \times २^{३} + ० \times २^{४} + १ \times २^{५} + १ \times २^{६}$$

$$= ० + २ + ४ + ८ + ० + ३२ + ६४$$

$$= ११० \text{ (दशाधारी)}$$

सम्राट् फूही के राज्यकाल की देवी के पदचिह्नों का हम अब अध्ययन कर सकते हैं। उनके दो मूलभूत चिह्नों में पूर्ण रेखा —— सभी देशों के संख्या-चिह्नों की भाँति 'एक' को प्रतिरूपित करती है। और एक के भंग होने पर कुछ शेष नहीं बचता, इसलिए खंडित रेखा — — अभाव का द्योतक है और 'शून्य' को प्रतिरूपित करती है। इस प्रकार ये दो संख्या-चिह्न ही दूसरे रूप में उन पद-चिह्नों में मिलते हैं।

यदि हम उन पद-चिह्नों को अपने पहचाने संख्या-चिह्न '०' और '१' के रूप में अनूदित करें तो निम्न फल पाएँगे :

०	१	०	१	०	१	०	१
०	०	१	१	०	०	१	१
०	०	०	०	१	१	१	१

चतुर पाठक ने इन स्तंभों में लिखी संख्याओं को पहचान लिया होगा। ये स्तंभ तो वही हैं जो पिछले पृष्ठों में ७ तक की संख्या को द्वि-आधारी रूप देने के लिए हमें उनके शेष-स्तंभों में प्राप्त हुए थे। ध्यान रहे कि चीनी भाषा हमारी देवनागरी की भाँति बाएँ से दाहिने न लिखी जाकर स्तंभ रूप में खड़ी लिखी जाती है। इसलिए इन अंकों को, जो चीनी रीति से लिखे गए हैं, यदि भारतीय रूप में लिखें तो हमें निम्न द्वि-आधारी संख्याए प्राप्त होंगी :

०००, ००१, ०१०, ०११, १००, १०१, ११०, १११

ये द्वि-आधारी संख्याएँ स्पष्ट ही क्रमशः ०, १, २, ३, ४, ५, ६ और ७ को प्रतिरूपित करती हैं।

निश्चय ही वह देवी आठ क़दम चल कर अंतर्ध्यान हो गई।

माया और परमात्मा

आप सोच रहे होंगे कि इस द्वि-आधारी संख्यांक पद्धति का क्या उपयोग है? ठीक ही कहा है कि गणितज्ञ तो अपने संकेतों से खेलना भर जानते हैं और यह भी उसी खेल का एक रूप है। हमारी तो दशाधारी संख्यांक पद्धति भली।

आइए, थोड़ा-सा इस विषय पर और विचार करें। द्वि-आधारी पद्धति में केवल ० और १ से काम तो चल जाता है, पर छोटी-सी दशाधारी संख्या का भी द्वि-आधारी रूप में फैलाव बहुत हो जाता है। इसीलिए यह साधारण काम-काज के लिए उतनी उपयोगी नहीं है। परंतु इसमें कुछ गुण ऐसे हैं जो इसे सभी की चर्चा का विषय बना देते हैं। प्रसिद्ध गणितज्ञ लेबनेज़ तो इससे इतना प्रभावित हुआ कि वह इसमें अलौकिक गुण देखने लगा। उसने कहा कि परमात्मा १ है और उस '१' ने शून्य अर्थात् न कुछ से पूरी सृष्टि की रचना की। वही अलौकिक क्रिया गणित जगत् की सृष्टि में भी द्वि-आधारी

संख्यांक पद्धति के द्वारा होती है जिसमें १ और ० मिल कर पूर्ण संख्या-जगत् की रचना करते हैं।

एक नई गुणन-क्रिया

साधारण रूप से गुणा करने में हमें कम से कम ६ तक पहाड़े याद रखना आवश्यक होता है। परन्तु रूस के कुछ भागों में एक अत्यंत सरल-सी क्रिया प्रचलित है जिसमें केवल २ से गुणा करने या भाग देने से ही गुणनफल प्राप्त हो जाता है। मान लीजिए ३६ को ४५ से गुणा करना है। इस प्रणाली में हम पहले इन दोनों संख्याओं को एक दूसरे के आमने-सामने रख देंगे। फिर इनमें से किसी एक को दो से गुणा करते जाएँगे और साथ ही दूसरी को दो से भाग देते जाएँगे। गुणा करने पर गुणनफल गुण्य के नीचे रख देंगे। इसी प्रकार भाग देने पर भजनफल भी भाज्य के नीचे लिखते जाएँगे। भाग देने पर यदि कुछ शेष बचता है तो उस शेष को हम कुछ नहीं मानेंगे। केवल पूर्णांक भजनफल को ही लिखकर काम करेंगे।

यह गुणा और भाग की क्रिया तब तक करते रहेंगे जब तक कि भाग वाले स्तंभ में भजनफल १ न आ जाए। उसके बाद २ का भाग संभव न होने से इस क्रिया को समाप्त कर देंगे। यह गुणन-क्रिया कुछ निम्न प्रकार होगी :

(दो से भाग)	(दो से गुणा)
४५	३६
२२	~~७२~~
११	१४४
५	२८८
२	~~५७६~~
१	११५२
	१६२०

पहले स्तंभ (भाग वाले स्तंभ) में कुछ सम संख्याएँ हैं और कुछ विषम। हम दूसरे स्तंभ (गुणा वाले स्तंभ) में वे सभी संख्याएँ काट देते हैं जो पहले स्तंभ में लिखी सम संख्याओं के सामने हैं। बची हुई संख्याओं को जोड़ने पर १६२० फल आएगा। यही इच्छित गुणनफल है। साधारण रूप से गुणा कर इसकी सत्यता परखी जा सकती है। रूस के गाँवों में किसान आज भी इसी रीति से गुणा करते हैं।

प्रथम विचार हो सकता है कि इसमें कोई रहस्य है। परंतु वस्तुतः यह प्रक्रिया द्वि-आधारी संख्या के मूलभूत गुणों पर आश्रित है। यदि हम ४५ को द्वि-आधारी संख्या के रूप में लिखें तो इस रहस्य का उद्घाटन हो जाएगा।

$$४५ = १\times२^{५} + ०\times२^{४} + १\times२^{३} + १\times२^{२} + ०\times२^{१} + १\times२^{०}$$
$$= १,०१,१०१$$

इसलिए यदि इसमें ३६ का गुणा करें तो निम्न फल प्राप्त होगा :
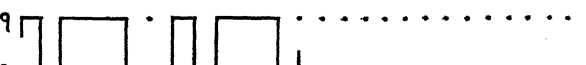
$$४५ \times ३६ = (१ \times २^{५} + ० \times २^{४} + १ \times २^{३} + १ \times २^{२} + ० \times २^{१} + १ \times २^{०}) \times ३६$$
$$= (३२ + ० + ८ + ४ + ० + १) \times ३६$$
$$= (१,१५२ + ० + २८८ + १४४ + ० + ३६)$$
$$= १,६२०$$
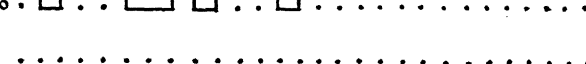
४५ के द्वि-आधारी संख्या रूप में $२^{४}$, $२^{१}$ के गुणक शून्य हैं। इसलिए उन संख्याओं को जो इनसे ३६ को गुणा करने पर प्राप्त हों, योग में नहीं लिया जाना चाहिए। यदि हम देखें तो हमारे दूसरे स्तंभ में ३६ को $२^{४}$ से गुणा करने पर ५७६ और $२^{१}$ से गुणा करने पर ७२ प्राप्त हुए थे। पहले स्तंभ में सम संख्याओं के सामने दूसरे स्तंभ में यही संख्याएँ थीं। हमारे नई गुणन रीति के नियमों के अनुसार इन्हीं संख्याओं को काट दिया गया। केवल वे संख्याएँ ही जोड़ी गईं जिनका द्वि-आधारी रूप में गुणक '०' नहीं है। इसीलिए हमारा गुणनफल ठीक आया।

यदि यह स्पष्ट हो गया हो तो अब हमें किन्हीं भी दो संख्याओं का गुणा करने के लिए दो से बड़े पहाड़े को याद रखने की ज़रूरत नहीं रही।

आधुनिक युग

ऊपर के वर्णन से कुछ ऐसा आभास होता है कि द्वि-आधारी संख्यांक पद्धति यदि खेल ही नहीं तो केवल कुछ पिछड़े लोगों के काम में आने वाली चीज़ है। यह कहना कुछ समय पूर्व तक ठीक था। दशाधारी प्रणाली पहले हमारे साधारण काम-काज के लिए और फिर हमारी वैज्ञानिक समस्याओं के लिए भी आधारशिला बनी। पर पिछले कुछ दशकों में गणक-यंत्रों के आने से द्वि-आधारी संख्या का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। इलेक्ट्रोनिक गणक-यंत्रों की गति तो अवर्णनीय है—एक सेकण्ड में लाखों क्रियाएँ संभव हैं। इसलिए काम की अधिकता की उसके सामने कोई समस्या नहीं। पर उनके लिए इच्छित काम को सरलतम रूप में प्रस्तुत करना उपयोगी ही नहीं, कदाचित् अनिवार्य-सा है। यदि हम दशाधारी संख्या का उपयोग करें तो उसके लिए दस विशेष चिह्नों की आवश्यकता होती है, परन्तु द्वि-आधारी के लिए केवल दो ही पर्याप्त हैं। बिजली की मशीनों में ये चिह्न बड़े ही काम आए। इन मशीनों में बिजली के आवेग की उपस्थिति का अर्थ 'एक' माना गया और उसके अभाव का अर्थ 'शून्य'। यह एक सरलतम क्रिया है। उदाहरण के लिए बिजली के आवेग का एक तारतम्य नीचे प्रस्तुत है। देखिए, उसका अर्थ हम कितनी सरलता से निकाल सकते हैं।

आवेग की उपस्थिति १
आवेग का अभाव ०
समय की इकाई

इस तारतम्य का अर्थ हुआ १०,११,१०,०१,०१,११० जो दशमलव रूप में ५,६३४ है। मशीन के लिए ५,६३४ को दशाधारी पद्धति में लिखना अत्यंत कठिन है, पर द्वि-आधारी पद्धति में उससे कहीं बड़ा रूप १०,११,१०,०१,०१,११० अत्यंत सरल।

हम मशीनों के काम करने की विधि की चर्चा यहाँ नहीं करेंगे। यहाँ इतना कहना पर्याप्त है कि जो गणना-संबंधी कार्य कुशल से कुशल गणितज्ञ वर्षों में कर सकता है, वह काम ये मशीनें घंटों में कर सकती हैं।

और उनकी इस गणना क्रिया का आधार है द्वि-आधारी संख्यांक पद्धति।

क्या अन्य पद्धतियाँ भी संभव हैं?

यदि ऊपर का द्वि-आधारी संख्यांक पद्धति का वर्णन एक मूल तत्त्व को स्पष्ट कर सका हो तो यह सरलतापूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है कि कोई अन्य संख्या भी इसी प्रकार एक विशिष्ट संख्या-पद्धति का आधार बनाई जा सकती है। पृष्ठ ६५ पर दिया हुआ नियम ही किसी संख्या को नए आधार पर बनाने के लिए पर्याप्त होगा। हाँ, यदि हम संख्या-पद्धति का आधार दस से अधिक रखना चाहें तो उनके लिए कुछ अन्य संख्या-चिह्न भी बनाने होंगे क्योंकि हमारे पास केवल दस चिह्न ही उपलब्ध हैं। और दस या उससे बड़ी संख्याएँ दस चिह्नों के आधार पर उन्हीं दस चिह्नों को स्थान-मान देकर ही लिखी जा सकती है, अन्यथा नहीं।

एक आने में बारह पाइयाँ क्यों थीं?

कभी-कभी यह कहा जाता है कि दस का आधार एक बहुत ही कष्टदायक आधार है क्योंकि १० के केवल दो गुणन खण्ड ही हो सकते हैं—२ और ५। यदि इसके तीन, चार या छः हिस्से करने पड़ें तो भिन्नांकों का सहारा लेना पड़ता है, पूर्णांक पर्याप्त नहीं होते हैं। प्रसिद्ध गणितज्ञ लेबिनेट्ज इसीलिए १२ को संख्यांक पद्धति का आधार बनाने के पक्ष में था। १२ वह छोटे से छोटा अंक है जिसके अधिकतम सम भाग हो सकते हैं—२, ३, ४ और ६। इसी सुविधा की दृष्टि से संभवतः पहले एक आने में १२ पाई मानी गई और एक शिलिंग में १२ पेंस माने गए। रुपए-पैसे की दशमलव प्रणाली जो हमने अब अपनाई है, साधारण व्यक्ति को साग-सब्जी या छोटे-मोटे विनिमय करने के लिए तो असुविधाजनक ही है; बड़े हिसाबों में अलबत्ता यह अधिक आसान है। इसीलिए इस दशमलव प्रणाली को अपनाया गया। परन्तु और भी बड़े हिसाब में तो द्वि-आधारी संख्या ही अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

कुछ और र-परिवर्त्तन

आइए, आधार-परिवर्त्तन की क्रिया को कुछ उदाहरणों से स्पष्ट कर इस विषय

की समीक्षा समाप्त करें। त्रि-आधारी पद्धति में तीन अंक (०, १, २) ही होंगे, सप्त-आधारी में सात (०, १, २, ३, ४, ५, ६)। आधार-बदल के लिए पहले बताई पद्धति के अनुरूप त्रि-आधारी बदल के लिए ३ से भाग और सप्त-आधारी के लिए ७ से भाग तब तक देते रहेंगे जब तक भजनफल शून्य न हो जाए। शेष संख्याओं को एक स्तंभ में रखते जाएँगे। अन्त में इन शेषों को नीचे से प्रारंभ कर साधारण संख्या के रूप में तरतीब से लिख कर इच्छित रूप प्राप्त होगा। देखें दशाधारी २३४५ के द्वि-आधारी, त्रि-आधारी तथा सप्त-आधारी रूप क्या होते हैं?

द्वि-आधारी

		शेष
२	२३४५	
२	११७२	— १
२	५८६	— ०
२	२९३	— ०
२	१४६	— १
२	७३	— ०
२	३६	— १
२	१८	— ०
२	९	— ०
२	४	— १
२	२	— ०
२	१	— ०
	०	— १

२,३४५=१,००,१०,०१,०१,००१

त्रि-आधारी

		शेष
३	२३४५	
३	७८१	— २
३	२६०	— १
३	८६	— २
३	२८	— २
३	९	— १
३	३	— ०
३	१	— ०
	०	— १

२,३४५=१,००,१२,२१२

सप्त-आधारी

		शेष
७	२३४५	
७	३३५	— ०
७	४७	— ६
७	६	— ५
	०	— ६

२,३४५=६,५६०

इस प्रकार

२,३४५ दशाधारी =१,००,१०,०१,०१,००१ द्वि-आधारी
=१,००,१२,२१२ त्रि-आधारी=६,५६० सप्त-आधारी

	द्वि-आधारी	त्रि-आधारी	चतुः-आधारी	पंच-आधारी	षष्ठ-आधारी	सप्त-आधारी	अष्ठ-आधारी	नव-आधारी	दश-आधारी	एकादश-आधारी	द्वादश-आधारी
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
२	१०	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
३	११	१०	३	३	३	३	३	३	३	३	३
४	१००	११	१०	४	४	४	४	४	४	४	४
५	१०१	१२	११	१०	५	५	५	५	५	५	५
६	११०	२०	१२	११	१०	६	६	६	६	६	६
७	१११	२१	१३	१२	११	१०	७	७	७	७	७
८	१०००	२२	२०	१३	१२	११	१०	८	८	८	८
९	१००१	२००	२१	१४	१३	१२	११	१०	९	९	९
१०	१०१०	२०१	२२	२०	१४	१३	१२	११	१०	द	द
११	१०११	२०२	२३	२१	१५	१४	१३	१२	११	१०	ग
१२	११००	२१०	३०	२२	२०	१५	१४	१३	१२	११	१०
१३	११०१	२११	३१	२३	२१	१६	१५	१४	१३	१२	११
१००	११००१००	१०२०१	१२१०	४००	२४४	२०२	१४४	१२१	१००	९१	८४
५०१	१११११०१०१	२००१२०	१३३११	४००१	२१५३	१३१४	७६५	६१६	५०१	४१६	३५९

त्रि-आधारी या सप्त-आधारी से दशाधारी पद्धति में बदलने के लिए प्रत्येक अंक को स्थान-मान के रूप में लिख योग करने से इच्छित संख्या प्राप्त होती है ।

ऊपर हम कह चुके हैं कि दस से बड़े आधार के लिए अधिक अंक-संकेतों की आवश्यकता होगी। आइए, हम दस के लिए 'द' और 'ग्यारह' के लिए 'ग' संख्या-संकेत मान लें। सामने के पृष्ठ पर दी गई सारिणी में विभिन्न दशाधारी संख्याओं को दो से बारह तक आधारों पर अवलंबित प्रणालियों में निरूपित किया गया है।

अध्याय ६

संख्या-संकल्पना का विस्तार - १

प्राकृतिक संख्या-क्षेत्र

अभी तक हम प्राकृतिक संख्यांकों (१, २, ३, ४...) तथा पूर्णांक संख्यांकों (०, १, २, ३, ४,...) से परिचित हो चुके हैं। गणित में हम इस संख्या-समुदाय को 'प्राकृतिक संख्या-क्षेत्र' भी कहते हैं। 'क्षेत्र' का अर्थ आगे विवेचन से स्पष्ट होगा। इन अंकों पर जो चार गणितीय संक्रियाएँ—जोड़ना, घटाना, गुणा और भाग—की जा सकती हैं उनके अर्थ को हम अध्याय ४ में भलीभाँति समझ चुके हैं। उदाहरण के लिए यदि हम दो संख्याएँ ६ और ३ लें तो उन पर इन चारों संक्रियाओं के करने का फल निम्न होगा :

जोड़ : ६+३=९
बाक़ी : ६—३=३
गुणा : ६×३=१८
भाग : ६÷३=२

विशेष बात यह है कि इन दो संख्याओं पर इन चारों क्रियाओं के करने से प्राप्त फल ९, ३, १८ और २ सभी प्राकृतिक संख्याएँ हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि इन क्रियाओं के लिए हमें 'प्राकृतिक संख्या-क्षेत्र' से बाहर नहीं जाना पड़ा।

पर अब विचारणीय यह है कि क्या सदा ही यह संभव होगा ? यदि दो प्राकृतिक संख्याओं को जोड़ें, घटाएँ, गुणा करें अथवा भाग दें, तो क्या फल एक अन्य प्राकृतिक संख्या ही मिलेगी ? इसी प्रश्न का उत्तर अब हम पाने की चेष्टा करेंगे।

यह स्पष्ट ही है कि यदि हम किन्हीं दो प्राकृतिक संख्याओं को जोड़ें तो उत्तर एक प्राकृतिक संख्या ही होगी। ८+४=१२, ३+७=१०,... हम चाहे कितनी भी कोशिश करें, हमें इसका अपवाद नहीं मिल सकता है। इसी प्रकार किन्हीं भी दो प्राकृतिक संख्याओं को गुणा करें तो फल एक प्राकृतिक संख्या ही होगी, जैसे ८×४=३२, ७×३ =२१ इत्यादि। इसी तथ्य को गणितीय भाषा में कहते हैं कि योग और गुणन क्रियाओं के लिए 'प्राकृतिक संख्या-क्षेत्र' आत्मनिर्भर है।

अंकों का सरल रेखा पर निरूपण

ऊपर वर्णित तथ्य को और भी स्पष्ट करने के लिए हम पूर्णांक संख्यांकों को रेखा पर बिन्दुओं द्वारा प्रस्तुत करेंगे। हमें मालूम है कि एक सरल रेखा बिन्दुओं का समूह होती है। इनमें से किसी भी एक बिन्दु को हम 'शून्य' मान सकते हैं, क्योंकि यह रेखा इच्छानुसार दाहिनी और बाईं दोनों ही ओर बढ़ाई जा सकती है। यह 'शून्य' बिन्दु इस रेखा
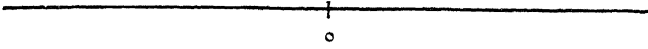
को दो बराबर भागों में विभाजित करता है।

अब इस 'शून्य' चिह्न के दाहिनी ओर पर हम एक **निश्चित** दूरी पर एक अन्य बिन्दु को '१' मान लें। यह उल्लेखनीय है कि यह निश्चित दूरी कुछ भी हो सकती है। हमें
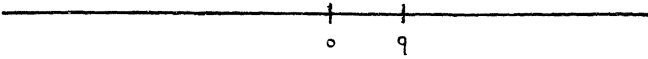
इन दोनों बिन्दुओं के स्थान-निर्धारण में पूर्ण स्वतंत्रता है। शर्त केवल एक है कि '१' का बिन्दु '०' के बिन्दु की दाहिनी ओर होना चाहिए। इस प्रकार शून्य के निश्चयन के बाद १ के स्थान निश्चयन के लिए हम दाहिनी ओर बढ़े हैं, बाईं ओर नहीं। अब पुनः हम १ के दाहिनी ओर चलते हैं। '०' से '१' तक की दूरी निश्चित हो चुकी है। '१' के आगे उतनी ही दूरी पर एक और चिह्न लगा दें और इसी तरह एक के बाद एक समान दूरी पर चिह्न लगाते जाएँ। ये बिन्दु क्रमशः '२', '३', '४',. . . इत्यादि कहलाएँगे।

इस प्रकार इस सरल रेखा पर जहाँ तक भी चाहें वहाँ तक पूर्णांकों को बिन्दुओं द्वारा निरूपित करते जा सकते हैं। जहाँ एक ओर हमारे संख्यांक अनगिनत हैं, वहाँ हमारी सरल रेखा भी दाहिनी ओर कितनी ही दूर तक बढ़ाई जा सकती है। चूँकि सरल रेखा के ये बिन्दु संख्या को निरूपित करते हैं, हम उन्हें 'संख्या-बिन्दु' की संज्ञा दे सकते हैं। ये संख्या-बिन्दु सरल रेखा पर हमारे 'प्राकृतिक संख्या-क्षेत्र' को निरूपित करते हैं।
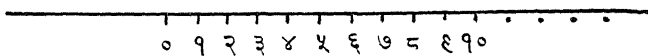
संख्या-बिन्दुओं का योग

आइए, अब देखें कि इस सरल रेखा के संख्या-बिन्दुओं पर जोड़ का अर्थ क्या है। ५+२ का योगफल कैसे निकाला जाए? ५ तो हम जानते हैं और उसका बिन्दु सुनिश्चित है। पर जोड़ने का क्या अर्थ है? जोड़ने की क्रिया को हम इस रेखा पर 'दाहिनी ओर चलना' मान सकते हैं। ५ में हमें २ जोड़ना है तो ५ के संख्या-बिन्दु से हम यदि २ स्थान दाहिनी ओर चलें तो कहाँ पहुँचेंगे?

५ +२ ७

० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
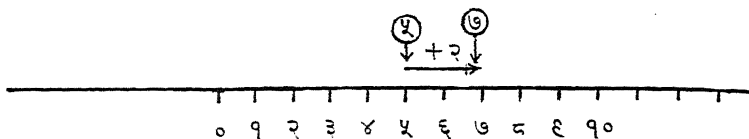
निश्चय ही हम उस संख्या स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ ७ लिखा है। इस प्रकार हमारी इस योग परिभाषा से ५+२ का अर्थ हुआ ७, अर्थात् ५+२=७।

और यही उत्तर हमें पिछले अध्याय में बताई रीति से दो संख्याओं ५ और २ को जोड़ने से प्राप्त होता है।

हम चाहें तो किन्हीं भी दो प्राकृतिक संख्याओं का योग ऊपर बताई रीति से निकाल सकते हैं। किन्हीं भी दो प्राकृतिक संख्याओं का योग एक प्राकृतिक संख्या ही होगा क्योंकि उनमें से पहली प्राकृतिक संख्या तो सरल रेखा पर एक निश्चित संख्या-बिन्दु होगी ही और योग का अर्थ है उसकी दाहिनी ओर चलना। जब दूसरी प्राकृतिक संख्या के मान के अनुसार हम दाहिनी ओर बढ़ेंगे तो हम उसी रेखा पर ही किसी निश्चित बिन्दु पर पहुँचेंगे क्योंकि यह रेखा दाहिनी ओर कितनी भी बढ़ाई जा सकती है। अतः उन दोनों संख्याओं का योग इसी रेखा पर '०' की दाहिनी ओर एक निश्चित बिन्दु होगा। इसलिए हमारी परिभाषा के अनुसार वह भी एक संख्या-बिन्दु होगा और वह एक प्राकृतिक संख्या को निरूपित करता है।

प्राकृतिक संख्या-क्षेत्र की असमर्थता—२ में से ५ गए तो क्या बचा?

आप शायद सोचते हों कि ऊपर वर्णित बातें तो सब स्वयंसिद्ध ही हैं, इनके विस्तार की क्या आवश्यकता? परंतु ऐसा नहीं है। मान लीजिए किसी ने पूछा कि '५ में कितने जोड़ें तो योगफल २ होगा?' पहले पहल अनुमान होगा कि शायद पूछने वाले से कुछ ग़लती हो गई है। यह शंका उठाने के बावजूद प्रश्नकर्त्ता उसी प्रश्न को दुहराता है। गणित की भाषा में हमें समीकरण ५+क=२ में क का मूल्य निकालना है।

यदि प्रश्न होता कि ५+क=७ तो शीघ्र ही हम कह देते क=२। परंतु यहाँ इस नये प्रश्न में हम निरुत्तर से हो जाते हैं। हमें तो कोई ऐसा पूर्णांक मालूम नहीं जिसे ५ में जोड़ा जाए तो योगफल २ हो।

५+क=२ को हम पिछले अध्याय में क=२—५ के रूप में देख चुके हैं। इसलिए वस्तुतः हमारे सामने २ में से ५ को घटाने की समस्या है। परंतु हम प्राकृतिक संख्या-क्षेत्र के अन्तर्गत २—५ का मूल्य बताने में असमथ हैं।

इस प्रकार जहाँ हम किन्हीं दो संख्याओं का योग उसी क्षेत्र की संख्या द्वारा व्यक्त कर सकते हैं हम सभी दो संख्याओं पर ऋण की क्रिया नहीं कर सकते हैं। हमारे पास २—५ का उत्तर नहीं है।

यही हमारे प्राकृतिक संख्या-क्षेत्र की पहली असमर्थता है।

आइए, हम अपनी रेखा के संख्या-बिन्दुओं पर यह प्रश्न करके देखें, क्या उत्तर मिलता है? प्रश्न है कि ५ में कौन-सी संख्या जोड़ें तो २ योगफल होगा। जोड़ने का अर्थ है दाहिनी ओर चलना। इस अर्थ में यह प्रश्न हुआ कि किस स्थान से हम ५ क़दम दाहिनी ओर चलें तो हम २ के बिन्दु तक आ पहुँचेंगे? हमारा गन्तव्य है २ का बिन्दु। यह स्पष्ट है कि वहाँ तक दाहिनी ओर ५ क़दम चल कर पहुँचने के लिए हमें ० के बिन्दु के बाईं
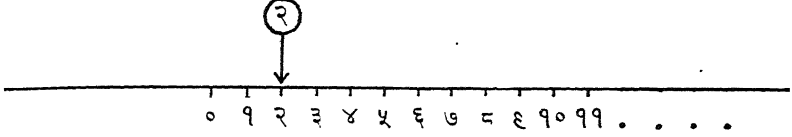
ओर से प्रारंभ करना पड़ेगा। परंतु हमारे संख्या-बिन्दु अभी तक शून्य के दाहिनी ओर ही हैं और वे पूरे प्राकृतिक संख्या-क्षेत्र को निरूपित करते हैं। अभी शून्य के बाईं ओर का विस्तार हमारे लिए अनजान प्रदेश है। पर फिर भी उधर चलें और देखें कि क्या मिलता है? लीजिए, हम बाईं ओर भी दाहिनी ओर की भाँति ही निशान लगा दें। दो समीप के बिन्दुओं की दूरी वही रखें जो ० और १ के बीच थी। दाहिनी और बाईं ओर के बिन्दुओं के विषय में कहीं भ्रम न हो इसलिए हम बाईं ओर के बिन्दुओं के लिए बायाँ शब्द प्रयोग करेंगे अथवा संक्षेप में ब अक्षर। इस प्रकार दाहिनी ओर ०, १, २, ३, . . . तो हमारे सुपरिचित पूर्णांक संख्यांक हैं ब१, ब२, ब३ हमारे नये बिन्दु ० के बाईं ओर हुए जिनके अनुरूप संख्या शब्द हमारे पास नहीं है।

ब३
२
५
. . . .१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ . . .
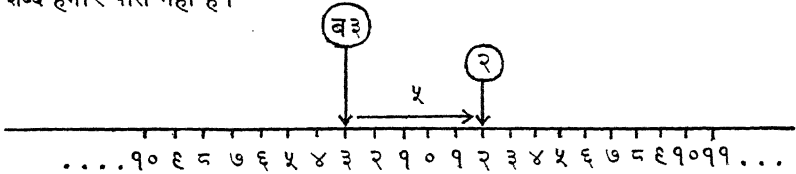
अब स्पष्ट है कि २ तक ५ क़दम दाहिनी ओर चलकर पहुँचने के लिए हमें ब३ से चलना प्रारंभ करना होगा। इस प्रकार हमें ५+क=२ का हल मिल गया और ५+(ब३)=२ अर्थात् क=ब३ अथवा ब३ वह संख्या है जिसमें ५ जोड़ने से योगफल २ होता है।

इसी प्रश्न को किंचित् दूसरे रूप में देखिए। यदि ५+क=२ को एक योगात्मक समस्या के रूप में हल करने के बजाय यह जानना चाहें कि २—५= ? तो क्या करना होता है?

हम यह देख चुके है कि ५+ब३=२ है अर्थात् ब३ वह संख्या है जिसे ५ में जोड़ने पर योगफल २ होता है। अध्याय ४ में हमने घटाने का अर्थ स्पष्ट किया था। उसके अनुसार यही बात दूसरे शब्दों में इस प्रकार कही जा सकती है कि '२ में से ५ घटाने पर ब३ शेष बचता है' अर्थात् २—५=ब३।

पृष्ठ ७८ के चित्र में देखिए तो ज्ञात होगा कि २+५=७। इस जोड़ में योगफल '७'

को निरूपित करने वाला संख्या-बिन्दु २ और ५ को निरूपित करने वाले दोनों संख्या-बिन्दुओं की दाहिनी ओर है। परंतु २ में से ५ घटाने पर फल ब३ मिलता है जो दोनों के बाईं ओर है। इससे स्पष्ट है कि २ संख्या-बिन्दु से ब३ बिन्दु तक पहुँचने के लिए हमें बाईं ओर चलना होगा। यदि हम अपनी रेखा पर घटाने की क्रिया को बाईं ओर चलना मान लें तो हमें इच्छित उत्तर मिल जाता है। 'जोड़ने' को हमने रेखा पर 'दाहिनी ओर चलना' माना था। उसी प्रकार हमें 'घटाना' उस पर 'बाईं ओर चलना' मानना होगा। दोनों क्रियाएँ एक दूसरे की विरोधी होती हैं।
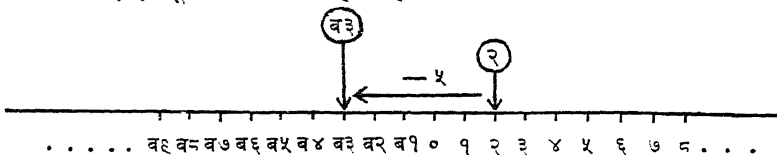
आइए, एक बार फिर मूल समस्या को देखें। ५+क=२ का हल था क=ब३। अब ५+क=२ में यदि क के स्थान पर ब३ लिखें तो पाएँगे ५+(ब३)=२। इसका क्या अर्थ हुआ ? ५ में किसी संख्या के जोड़ने का अर्थ है 'दाईं ओर चलना'। परंतु ५ में ब३ जोड़ने पर हम उससे बाईं ओर के एक बिन्दु पर पहुँचते हैं। इसलिए ब३ एक ऐसी संख्या प्रतीत होती है जिससे जोड़ने के लिए दाहिनी ओर न चलकर बाईं ओर चलना होता है। ३ के जोड़ने पर हम तीन क़दम दाहिनी ओर चलते हैं परंतु ब३ को जोड़ने के लिए उतने ही क़दम बाईं ओर चलना होता है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि
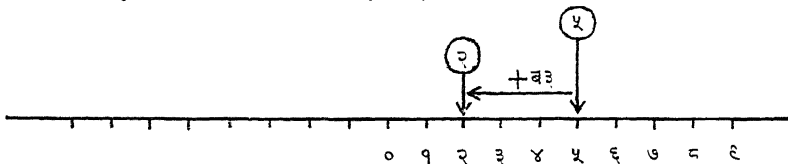
ब३ का जोड़ना और ३ का घटाना एक ही क्रिया है। यदि हम ३ और ब३ को जोड़ें तो क्या पाएँगे ?
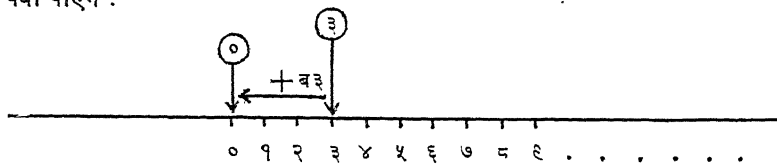
३ के संख्या-बिन्दु से ३ क़दम बाईं ओर चलने पर हम शून्य संख्या-बिन्दु पर पहुँचते जाते हैं जिसका अर्थ हुआ

३+(ब३)=०

इसी प्रकार यदि क कोई भी पूर्णांक संख्या है तो हम देख सकते हैं

क+(बक)=०

ऋणात्मक पूर्णांक

हमारी संख्या-संकल्पना में अब तक ब३ अथवा ब क के लिए कोई स्थान नहीं है। परंतु यदि हम पूर्णांक संख्याओं में जोड़ और बाकी की सभी समस्याओं को हल करना चाहते हैं तो ब३ और ब क के रूप की संख्याओं की आवश्यकता प्रतीत होती है। हम इस प्रकार की संख्याओं को ऋणात्मक पूर्णांक संख्या कह सकते हैं। ब३ पूर्णांक संख्या ३ की ऋणात्मक संख्या हुई क्योकि ३+(ब३)=०। इसी प्रकार ब क पूर्णांक संख्या क की ऋणात्मक पूर्णांक संख्या हुई। यही ऋणात्मक संख्या की परिभाषा है।

$$क + (ब क) = ०$$

हम ब क को 'ऋणात्मक क' भी लिख सकते हैं। बार-बार 'ऋणात्मक' अथवा 'ब' लिखने की बजाय हम क की ऋणात्मक संख्या को '—क' के रूप में लिखते हैं। इस प्रकार:

$$क + (—क) = ०$$

और हम अपनी रेखा पर ० के बाईं ओर के चिह्नों को भी संख्या की परिभाषा में सम्मिलित कर लेते हैं। ये नए बिन्दु ऋणात्मक पूर्णांक संख्याओं को निरूपित करते हैं।

ऋणात्मक पूर्णांक धनात्मक पूर्णांक

·· —९ —८ —७ —६ —५ —४ —३ —२ —१ ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ····

इस प्रकार हमारी संख्या का विस्तार अब सरल रेखा पर दोनों ओर संभव हो गया है।

इस अध्याय के आरंभ में हमने देखा था कि किन्हीं दो प्राकृतिक संख्याओं को जोड़ना सदा ही संभव है, क्योंकि उनका योगफल सदा एक अन्य प्राकृतिक संख्या होती है। परंतु उस समय किन्हीं दो प्राकृतिक संख्याओं को घटाना सभव न था। हम '२ में से ५ गए तो क्या बचा?' इसी प्रश्न पर अटक गए थे। परंतु अब इस संख्या-संकल्पना के विस्तार के साथ ही किन्हीं भी दो संख्याओं को घटाना भी संभव हो गया। घटाने का अर्थ है बाईं ओर चलना और हमारी सरल रेखा बाईं ओर भी कितनी ही दूरी तक खींची जा सकती है और इस प्रकार घटाने की क्रिया करके हम इच्छित बिन्दु तक पहुँच सकते हैं।

प्रत्येक धनात्मक पूर्णांक के अनुरूप हमारे पास एक ऋणात्मक पूर्णांक भी होगा, क्योंकि 'क' चाहे कोई भी और कितनी भी बड़ी संख्या क्यों न हो '—क' भी एक ऐसी संख्या होगी जिससे क+(—क)=०।

इस प्रकार ऋणात्मक पूर्णांक भी अगणित हैं।

हम यह भी देख चुके हैं कि एक पूर्णांक संख्या के घटाने—जैसे ५ में से ३ का घटाने—का अर्थ वही होता है जो एक पूर्णांक संख्या में 'दूसरे पूर्णांक की ऋणात्मक संख्या' का जोड़ना। अर्थात्

$$५ — ३ = २$$
$$५ + (— ३) = २$$

क्योंकि दोनों समीकरणों का फल एक ही है इसलिए 'ऋणात्मक पूर्णांक को जोड़ने' को हम 'एक पूर्णांक संख्या को ऋण करने' के रूप में ही लिखते हैं। अर्थात् निम्न दोनों रूप एक ही हैं :

५+(—३)=५—३

ऋणात्मक पूर्णांकों का गणित

ऋणात्मक संख्याओं के संबंध में दो अन्य प्रश्न हो सकते हैं जिनका उत्तर अभी हमने नहीं दिया है। पहला यह है कि दो ऋणात्मक संख्याओं का जोड़ना क्या है ? और दूसरा यह कि एक ऋणात्मक संख्या का घटाना क्या है ? पहले प्रश्न का गणित की भाषा में निम्न रूप है :

—३+(—२)= ?

आइए, हम फिर अपनी रेखा पर संख्या-बिन्दुओं को देखें। यह तो हम देख ही चुके हैं कि '—२ को जोड़ना' का अर्थ है '२ को घटाना' अर्थात्

—३+(—२)=—३—२

—५ —३ —२

...—११ —१० —९ —८ —७ —६ —५ —४ —३ —२ —१ ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११...
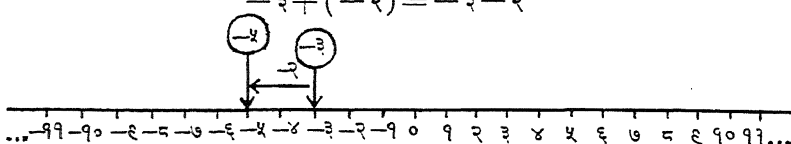
अब यदि हम —३ के संख्या-विन्दु से चलना प्रारंभ करें और उसमें से २ को घटाएँ तो २ क़दम उससे बाईं ओर पहुँचेंगे और वह बिन्दु है '—५ का रेखा-बिन्दु'। इस क्रिया के अनुसार फल प्राप्त हुआ :

—३—२=—५

हम यह जानते हैं कि २+३=५, और ५ की ऋणात्मक संख्या '—५' है। इसलिए —५ स्वयं २ और ३ के योग की ऋणात्मक संख्या है अर्थात् —५=—(२+३)। इस प्रकार एक ऋणात्मक संख्या में से दूसरी ऋणात्मक संख्या को जोड़ने का अर्थ हुआ उनकी धनात्मक संख्याओं के जोड़ की ऋणात्मक संख्या। यदि क और ख कोई दो धनात्मक पूर्णांक संख्याएँ हैं तो

—क+(—ख)=—क—ख=—(क+ख)

अब यदि एक ऋणात्मक पूर्णांक को घटाना हो तो उसका क्या अर्थ हुआ ?

+३—(—२)= ?

इस समस्या को हल करने के लिए हमें —(—२) क्या है इसे देखना होगा। हम ऊपर देख चुके हैं :

२+(ब२)

का अर्थ है पहले शून्य बिन्दु से २ तक दाहिनी ओर जाइए और फिर दो क़दम बाईं ओर आ जाइए। अर्थात् इस समीकरण में शून्य से दाहिनी ओर जाकर फिर शून्य बिन्दु पर

ही आ गए। इसलिए

$$२+(ब२)=०$$
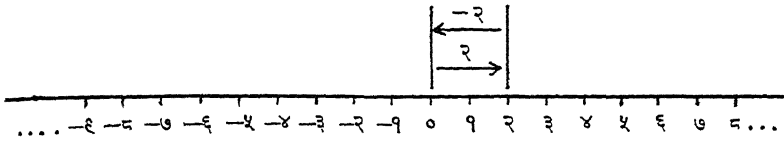
इस प्रकार ब२ पूर्णांक संख्या २ की ऋणात्मक संख्या है। अब यदि हम इस गमनागमन की क्रिया को उलट दें अथवा दूसरे शब्दों में यदि हम ० बिन्दु के पहले बाईं ओर चलें और फिर दाहिनी ओर चलें तो क्या होगा? पहले दो स्थान बाईं ओर चलने पर हम '—२' पर पहुँचते हैं और फिर २ स्थान दाहिनी ओर चलें तो शून्य बिन्दु स्थान पर ही
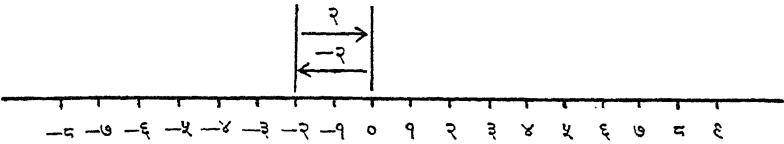
आ पहुँचेंगे। अर्थात् (ब२)+२=०। इसका मतलब हुआ संख्या २ संख्या ब२ की ऋणात्मक संख्या है। चूँकि 'क' की ऋणात्मक संख्या 'बक' है इसलिए 'ब२' की ऋणात्मक संख्या ब(ब२) हुई। इस प्रकार

$$ब(ब२)=२$$

$$\text{अथवा } -(-२)=२$$

मूल समीकरण में यदि —(—२) का यह मूल्य रख दें तो हमें उसका हल प्राप्त हो जाएगा

$$+३-(-२)=+३+२$$
$$=+५$$

इस प्रकार हमें यह नियम मिला कि किसी 'ऋणात्मक पूर्णांक संख्या की ऋणात्मक संख्या' वही 'पूर्णांक संख्या' होती है। यदि —क एक ऋणात्मक संख्या है तो —क की ऋणात्मक संख्या स्वयं पूर्णांक संख्या क होगी।

$$-(-क)=क$$

पूर्णांक क्षेत्र

इस प्रकार हमारी नई संख्या पद्धति में अब धनात्मक पूर्णांक, ऋणात्मक पूर्णांक और शून्य समाविष्ट हैं। इन्हें संक्षेप में हम पूर्णांक संख्या कहते हैं। इन पूर्णांक संख्याओं में किन्हीं भी दो संख्याओं को जोड़ा या घटाया जा सकता है और उनका योगफल अथवा ऋणफल एक पूर्णांक संख्या ही होगी।

इस प्रकार हम अब धनात्मक पूर्णांकों की एक कमी पूरी कर सकने में सफल हो गए हैं। इसे हम पूर्णांक-क्षेत्र की संज्ञा देते हैं। अब तक का संख्या-विस्तार कुछ इस प्रकार है :

१, २, ३, ४, ५, ...	प्राकृतिक संख्या
०, १, २, ३, ४, ५, ...	धनात्मक पूर्णांक
..., —५, —४, —३, —२, —१, ०, १, २, ३, ४, ५, ...	पूर्णांक संख्या

पूर्णांक-क्षेत्र की भी असमर्थता—६ फल और ४ बालक

इस अध्याय के प्रारंभ में एक अन्य प्रश्न किया गया था जिसका उत्तर अभी हमें नहीं मिला। किन्हीं भी दो प्राकृतिक संख्याओं का गुणा करने पर एक प्राकृतिक संख्या ही मिलती है और यह गुणा सदा संभव भी होता है। पर क्या किन्हीं भी दो प्राकृतिक संख्याओं का भाग सदा संभव है ? अथवा यदि भाग को गुणा के रूप में देखें और निम्न दो प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ें तो क्या हमें पूर्णांक क्षेत्र में उसका उत्तर मिलेगा ?

१. 'वह कौन-सी संख्या है, जिसका २ में गुणा करें कि गुणनफल ६ हो ?'

२. 'वह कौन-सी संख्या है जिसका ४ में गुणा करें कि गुणनफल ६ हो ?'

पहला प्रश्न गणित में निम्न रूप से लिखते हैं:

$$२ \times क = ६$$

अथवा $$६ \div २ = क$$

समस्या हमारे सामने 'क' का मूल्य निकालने की है। इन समीकरणों को देखकर ही कोई भी कह सकता है कि क=३। परंतु दूसरे प्रश्न का क्या हल है ? गणित की भाषा में प्रश्न है :

$$४ \times क = ६$$

अथवा $$क = ६ \div ४$$

में 'क' का मूल्य निकालना। 'पूर्णांक-क्षेत्र' को खोजने पर हमें ऐसी कोई संख्या नहीं मिलेगी जिससे ये संबंध संतुष्ट किए जा सकें।

साधारण भाषा में यह समस्या कुछ इस प्रकार होगी। मान लीजिए हम बाज़ार से ६ आम लाए हैं और इन्हें ४ बालकों को बराबर बराबर देना है तो क्या हम उन्हें बाँट सकते हैं ? फलों का बाँटना असंभव होगा जब तक कि हम चाकू का उपयोग न करें। प्राकृतिक संख्याओं में अथवा पूरे फलों के रूप में इस समस्या का कोई हल नहीं है।

स्थिति यह है कि हम ऋणात्मक संख्याओं को संख्या समुदाय में मिलाकर जोड़ बाक़ी की समस्या का हल तो कर चुके परंतु हम गुणा और भाग की समस्या में आकर उलझ गए।

वास्तव में यह उलझन बहुत पुरानी है और मनुष्य समाज बहुत बाद ही इसका संतोषजनक हल निकाल पाया। हमारा काम प्राकृतिक संख्याओं से नहीं चल सकता, हमें उन संख्याओं के भाग करने होंगे। एक रोटी को बाँटने के लिए टुकड़े करने होंगे या आम को चाकू से काटना होगा। देखिए संख्या-क्षेत्र में यह किस प्रकार किया जाता है ।

हम फिर से अपनी सरल रेखा की ओर ध्यान देंगे। ० और १ के संख्या-चिह्न किन्हीं दो स्थानों पर लगाए थे तथा १ के चिह्न को ० के चिह्न के दाहिनी ओर रखा था। फिर इसी मानक दूरी के सहारे दाहिनी ओर और बाईं ओर निशान लगाते गए थे। दाहिनी ओर के चिह्न धनात्मक पूर्णांक और बाईं ओर के चिह्न ऋणात्मक पूर्णांक ठहरे थे। यही हमारा पूर्णांक संख्या समुदाय है जो 'पूर्णांक-क्षेत्र' भी कहलाता है।

अब हम ० और १ संख्या-चिह्नों के बीच के स्थान की ओर ध्यान दें। हम इस निश्चित दूरी को जितने भी बराबर-बराबर हिस्सों में चाहें विभाजित कर सकते हैं। नीचे के चित्र में उसे २, ३, ४, ५ और ६ बराबर भागों में विभाजित किया गया है। अब प्रश्न यह उठता है कि ० और १ के बीच के इन बिन्दुओं को क्या कहा जाए।
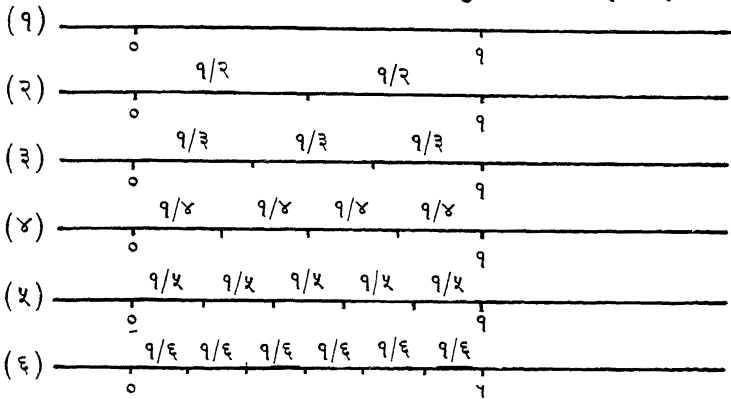
ये पूर्णांक नहीं हैं, इतना स्पष्ट है। क्योंकि ० के बाद पहला पूर्णांक है १ और दूसरा पूर्णांक उसकी दाहिनी ओर है जिसे हम २ कहते हैं। पर ये नये बिन्दु-चिह्न ० की दाहिनी ओर हैं और १ की बाईं ओर। इसलिए पूर्णांक नहीं हो सकते।

इन नये बिन्दुओं का एक गुण है कि ये ०—१ की दूरी को बराबर हिस्सों में विभाजित करते हैं। सुविधा के लिए हम उस लंबाई को जो ०—१ की दूरी को दो बराबर हिस्सों में बाँटती है '$\frac{१}{२}$' कह देते हैं, जो उसे तीन बराबर हिस्सों में बाटे उसे '$\frac{१}{३}$'... इत्यादि। $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$,... इत्यादि का अर्थ अभी हमारे लिए कुछ भी नहीं है। वे ० और १ के बीच की दूरी को उतने ही बराबर भागों में विभाजित होने के द्योतक हैं। इस प्रकार $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$,... अभी हमारे लिए एक ज्यामितीय क्रिया के संकेत मात्र हैं। आइए, अब हम इन नये संकेतों के साथ थोड़ा-सा खिलवाड़ करें।

अभी तक के उन सभी गणितीय नियमों को, जो हमने संख्या-बिन्दुओं के विषय में माने हैं, हम इन नये संकेतों के लिए भी लागू होता मान लेते हैं। रेखा (२) पर यदि हम ० से दाहिनी ओर चलें तो सबसे पहले जो ०—१ के बीच का मध्य-बिन्दु मिलता है, उसके बाद फिर उतनी ही दूर दाहिने चलने पर १ का बिन्दु आएगा। दाहिनी ओर चलने को हमने जोड़ने की परिभाषा दी है। इस प्रकार प्रतीत होता है कि इन नये संकेतों से निम्न सबंध स्थापित हो सकता है: $\frac{१}{२}+\frac{१}{२}=१$

इसी प्रकार हम रेखा (३) पर ० से दाहिनी ओर चलें तो पहले पहला $\frac{१}{३}$ का बिन्दु, फिर दूसरा $\frac{१}{३}$ का बिन्दु और फिर १ का संख्या-बिन्दु मिलेगा। इस प्रकार तीन वार रुक-रुक कर यात्रा करने पर ० से १ तक पहुँचे। पुनः गणित के जोड़ की भाषा में संकेत $\frac{१}{३}$ का तीन वार जोड़ना १ के बराबर हुआ।

$$\frac{१}{३}+\frac{१}{३}+\frac{१}{३}=१$$

तथा उसी प्रकार अन्य रेखाओं पर यात्रा करने पर हमें निम्न संबंध प्राप्त होंगे :

$$\frac{१}{४}+\frac{१}{४}+\frac{१}{४}+\frac{१}{४}=१$$
$$\frac{१}{५}+\frac{१}{५}+\frac{१}{५}+\frac{१}{५}+\frac{१}{५}=१$$

इन सभी समीकरणों को देख कर हमें पिछले अध्याय में स्पष्ट किए गए जोड़ और गुणा का संबंध ध्यान आता है। यदि इन नये संकेतों पर हम चाहें तो हमारे गुणा के नियमों को भी लगाकर इन समीकरणों को गुणा के रूप में भी लिख सकते हैं। स्मृति को ताज़ा करने की दृष्टि से एक बार फिर से देखिए कि ४ को ३ से गुणा करने का अर्थ था ४ को तीन बार जोड़ना अर्थात्

$$३\times४=४+४+४$$

और यदि क कोई भी संख्या है तो भी उसी प्रकार $३\times$क का अर्थ है क$+$क$+$क। इसी नियम को हम यदि इन नए संकेत $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{४}$ इत्यादि पर भी लागू करें तो क्या होगा। इस नियम से :

$$\frac{१}{२}+\frac{१}{२}=२\times\frac{१}{२}$$
$$\frac{१}{३}+\frac{१}{३}+\frac{१}{३}=३\times\frac{१}{३}$$
$$\frac{१}{४}+\frac{१}{४}+\frac{१}{४}+\frac{१}{४}=४\times\frac{१}{४}$$

ऊपर के समीकरणों में यदि बाईं ओर की राशियों में जोड़ को गुणा रूप में लिख दें तो फल कुछ इस प्रकार होगा :

$$२\times\frac{१}{२}=१,\quad ३\times\frac{१}{३}=१,\quad ४\times\frac{१}{४}=१ \text{ इत्यादि}$$

अभी हमें $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{४}$ इत्यादि क्या हैं यह नहीं मालूम, क्योंकि वे हमारी संख्या संकल्पना के बाहर हैं। फ़िलहाल हम इन्हें भी संख्या मान लेते हैं और एक प्रश्न के उत्तर पर विचार करते हैं।

'वह कौन-सी संख्या है जिसे ३ में गुणा करने से गुणनफल १ होगा ?'

यदि हम ऊपर के समीकरण देखें तो

$$३\times\frac{१}{३}=१$$

अर्थात् $\frac{१}{३}$ वह संख्या है जिसमें ३ से गुणा करें तो गुणनफल १ होता है। यहाँ हम यह सोच सकते हैं कि यदि इन नये चिह्नों से हमारे प्रश्न का उत्तर मिल जाता है और अभी तक के सभी संख्या संबंधी नियमों का पालन भी हो रहा है तो क्यों हम इन नये संकेतों को भी वास्तव में संख्या मान ही लें। इसमें कोई आपत्ति नहीं बशर्ते कि आगे कोई कष्ट न हो।

$\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$ इत्यादि नये संकेतों को हम 'भिन्न संख्या' की संज्ञा देते हैं।

आइए, हम रेखा (३) पर फिर से एक बार अपनी यात्रा '०' संख्या-चिह्न से प्रारंभ करें। सबसे पहले हमें $\frac{१}{३}$ भिन्न संख्या का बिन्दु-स्थान मिलेगा। उतनी ही दूर और दाहिनी ओर चलने पर हम एक और बिन्दु पाएँगे जहाँ तक हमारी ० से दूरी $\frac{१}{३}+\frac{१}{३}$ हो गई। हमने ०—१ के तीन बराबर हिस्से किए थे। उसके एक हिस्से को हमने $\frac{१}{३}$ नाम दिया। अभी तक $\frac{१}{३}$ में हमें रेखा के नीचे की संख्या '३' का मंतव्य तो स्पष्ट है पर ऊपर की संख्या '१' का अर्थ यही प्रतीत होता है कि संभवतः इसलिए लिखा गया कि हमने ०—१ के हिस्से किए हैं। अब हम इस रेखा के ऊपर के '१' का अर्थ ० और १ के बीच के तीन हिस्सों में से केवल एक की यात्रा पूरी करना लगाएँ तो कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। उसके आगे चल कर जब हम उसके २ हिस्सों को पार करें तो रेखा के ऊपर २ रख सकते हैं और ० से लेकर दूसरे भाग के अंत तक की दूरी को $\frac{२}{३}$ का मान दे सकते हैं। इस प्रकार हम $\frac{१}{३}+\frac{१}{३}$ को $\frac{२}{३}$ के रूप में लिखते हैं। अंत में हम तीनों हिस्सों को पार कर '१' पर पहुँच जाते हैं।

इसी प्रकार यदि हम रेखा (६) पर चलें तो इसी नियम से मार्ग में क्रमशः $\frac{१}{६}$, $\frac{२}{६}$, $\frac{३}{६}$, $\frac{४}{६}$, $\frac{५}{६}$ बिन्दु-स्थान मिलेंगे और अंत में '१' संख्या-बिन्दु पर पहुँचेंगे। $\frac{३}{६}$ का अर्थ है ० और १ के बीच के ६ हिस्सों में से ३ हिस्सों का तय करना, $\frac{४}{६}$ का अर्थ है ६ में से ४ हिस्सों का तय करना इत्यादि। इस सब संख्याओं को भी हम भिन्न संख्या ही कहते हैं।

अब मान लीजिए कि जिस प्रकार हमने ०—१ को विभाजित किया, उसी प्रकार हम १—२ के बीच की दूरी को भी विभाजित करें तो क्या होगा? १—२ को भी हम छः हिस्सों में विभाजित करते हैं और १ से दाहिनी ओर यात्रा प्रारंभ करते हैं। जब १—२ के बीच के पहले हिस्से पर पहुँचें तब हम १ से दाहिनी ओर $\frac{१}{६}$ स्थान दूरी पार कर चुके होंगे। गणित की भाषा में इसका अर्थ हुआ $१+\frac{१}{६}$ परन्तु यदि हम ०—१ के भी ६ हिस्सों को ध्यान में रखें तो ० से १ तक पहुँचने के लिए हमें $\frac{१}{६}$ के बराबर के ६ स्थान पार करने पड़ेंगे और इसके आगे के स्थान तक पहुँचने के लिए ० से प्रारंभ कर कुल ७। इसे हम अपनी नई भाषा में $\frac{७}{६}$ कहते हैं। इस प्रकार $१+\frac{१}{६}=\frac{७}{६}$। सुविधा की दृष्टि से $१+\frac{१}{६}$ को केवल $१\frac{१}{६}$ भी लिखा जाता है।

इसी प्रकार २—३ के पहले बिन्दु तक पहुँचने के लिए पहले ०—२ के बीच के १२ खण्ड और फिर $\frac{१}{६}$ का एक खण्ड अर्थात् कुल १३ खण्ड पार करने होते हैं।

$$\text{इसलिए } २ + \frac{१}{६} = २\frac{१}{६} = \frac{१३}{६}$$
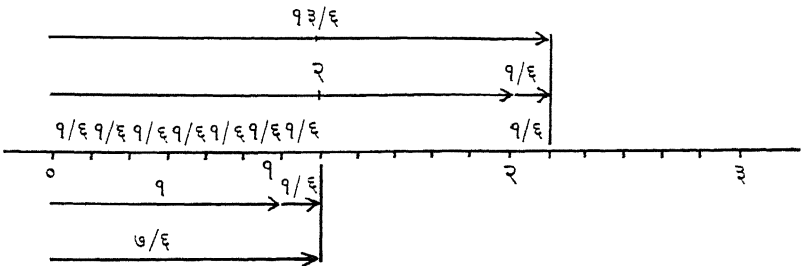
यदि हम अपनी सरल रेखा को भूल जाएँ तो देखेंगे कि इस प्रकार की मिश्र संख्याओं को भिन्न के रूप में परिवर्त्तित करने का सरल-सा नियम है :

$$१\frac{१}{६} \text{ में } \frac{१ \times ६ + १}{६} \quad \frac{६ + १}{६} = \frac{७}{६}$$

$$२\frac{१}{६} \text{ में } \frac{२ \times ६ + १}{६} = \frac{१२ + १}{६} = \frac{१३}{६}$$

अर्थात् पूर्णांक संख्या को भिन्न के हर से गुणा कीजिए और उसे उसी भिन्न के अंश में जोड़ दीजिए। हर को वैसा ही रहने दें। इसी नियम से

$$५\frac{१}{३} = \frac{५ \times ३ + १}{३} = \frac{१६}{३}$$

संख्याओं के अनेक रूप

ऊपर विभिन्न रेखाओं पर यात्रा करते समय हमने अनुभव किया कि उसी स्थान की दूरी उन पर विभिन्न रूप से लिखी जाती है। इसका क्या रहस्य है? उदाहरण के लिए हमने देखा कि संख्या-बिन्दु १ के अनेक रूप हो सकते हैं। यदि हम रेखा (२) पर यात्रा करें तो उसे $\frac{२}{२}$ लिखेंगे, रेखा (३) पर उसे $\frac{३}{३}$ और रेखा (६) पर $\frac{६}{६}$ इत्यादि। इसी प्रकार २ के लिए क्रमशः $\frac{४}{२}$, $\frac{६}{३}$,...... $\frac{१२}{६}$......इत्यादि। भिन्न रूप में पूर्णांकों को लिखने के लिए ये सभी रूप सत्य हैं और प्रयुक्त हो सकते हैं। १ के लिए $\frac{१}{१}$, $\frac{२}{२}$, $\frac{३}{३}$,....; २ के लिए $\frac{२}{१}$, $\frac{४}{२}$, $\frac{६}{३}$,....; ३ के लिए $\frac{३}{१}$, $\frac{६}{२}$,... इत्यादि। सभी रूप समान रूप से सार्थक हैं। परन्तु प्रत्येक प्राकृतिक अंक के इन असंख्य रूपों में से साधारणतः हम किसी का भी उपयोग नहीं करते हैं, प्राकृतिक अंकों को १, २, ३ . . . रूप में ही लिखते हैं। पर कभी-कभी हम उनका $\frac{१}{१}$, $\frac{२}{१}$, $\frac{३}{१}$,......; $\frac{६}{१}$ रूप भी प्रयोग करते हैं। अर्थात् अंश में स्वयं पूर्णांक संख्या और हर में १ रख देते हैं। जब भी उनका कोई अन्य रूप सामने आता है तब उसे सरलतम और बोधगम्य रूप में लिखते हैं यथा $\frac{८६७६}{१२३}$ वास्तव में $\frac{७३}{१}$ अथवा केवल ७३ ही है। गणित में राशियों को सरलतम रूप में रखना स्वयं में एक महत्त्वपूर्ण विषय है। यदि क और ख कोई भी दो पूर्णांक संख्याएँ हैं (ख शून्य नहीं हो) तो $\frac{क}{ख}$ एक भिन्न संख्या कहलाती है। परन्तु यदि 'क' में 'ख' का भाग पूरी-पूरी तरह चला जाता है और 'क/ख' उसका भजनफल है तो

$$\frac{क}{ख} = \frac{\text{'क/ख'}}{१}$$

जो एक पूर्णांक है।

जिस प्रकार पूर्णांक संख्याओं के अनेक संभव रूप हैं, उसी प्रकार अन्य भिन्न संख्याओं

के भी अनेक रूप होते हैं। यदि हम पुन: (२), (४), (६) रेखाओं को देखें तो हमें १ का आधा भाग कई रूपों में मिलेगा और इसी प्रकार १ का तिहाई हिस्सा भी.....।

(३) ० १/३ १/३ १/३ १ — २/३

(२) ० १/२ १/२ १ — १/२

(६) ० १/६, १/६, १/६, १/६ १/६, १/६ १ — ४/६

(४) ० १/४ १/४ १/४ १/४ १ — २/४

(९) ० १/९, १/९, १/९, १/९, १/९, १/९ १/९, १/९, १/९ १ — ६/९

(६) ० १/६, १/६, १/६ १/६, १/६, १/६ १ — ३/६
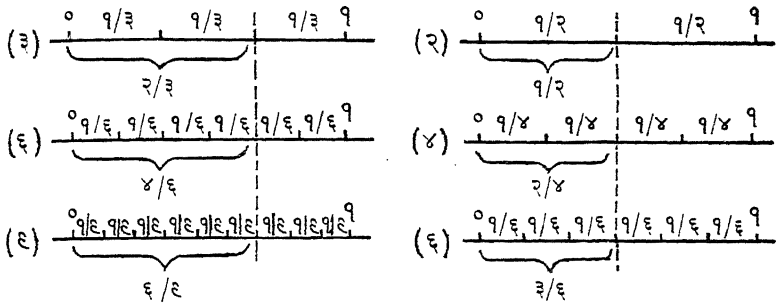
प्रस्तुत दो चित्रों के आधार पर हम कह सकते हैं कि विभिन्न रेखाओं पर वही दूरी निम्न प्रकार है :

$$\frac{१}{२}=\frac{२}{४}=\frac{३}{६},\ \frac{२}{३}=\frac{४}{६}=\frac{६}{९}\ \text{इत्यादि}$$

इस प्रकार हम इन संख्याओं को और भी अनेक रूपों में लिख सकते हैं। और ये सभी रीतियाँ ठीक हैं। वे सभी रूप मूल रूप से उसी संख्या को निरूपित करते हैं। परंतु उनका रेखा के संख्या-बिन्दुओं के रूप में विशिष्ट अर्थ भी है। $\frac{४}{६}$ का अर्थ है कि हम एक ऐसी रेखा का विचार कर रहे हैं जिसमें ६ भाग किए गए और $\frac{२७४}{४११}$ का अर्थ है कि उसके ४११ भाग किए गए हैं। परन्तु $\frac{४}{६}$ तथा $\frac{२७४}{४११}$ दोनों ही $\frac{२}{३}$ के बराबर ही हैं।

आइए, हम $\frac{२}{३}=\frac{४}{६}$ को थोड़ा और ध्यान से देखें। रेखा (३) और रेखा (६) में क्या अंतर है? रेखा (३) में तीन बराबर हिस्से किए हैं और रेखा (६) में ६ बराबर हिस्से। अर्थात् रेखा (३) के प्रत्येक खण्ड को पुन: दो-दो खण्डों में विभाजित कर देने पर हमें रेखा (६) का निरूपण प्राप्त होता है। इसका असर हमारी $\frac{२}{३}$ भिन्न संख्या पर क्या पड़ा? रेखा (३) का $\frac{२}{३}$ रेखा (६) पर $\frac{४}{६}$ हो गया। $\frac{४}{६}$ को $\frac{२\times२}{२\times३}$ रूप में भी लिखा जा सकता है। अर्थात् $\frac{४}{६}$ वास्तव में $\frac{२}{३}$ के हर और अंश दोनों में ही २ का गुणा कर प्राप्त हुई। परन्तु संख्या के मूल्य में कोई अंतर नहीं आया क्योंकि दोनों ही रेखाओं पर हमने बराबर दूरी तय की थी। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि किसी भिन्न संख्या के हर और अंश दोनों में ही किसी भी एक पूर्णांक (जो शून्य न हो) से गुणा कर दिया जाए तो उसके मान में कोई अंतर नहीं होगा। यदि प कोई पूर्णांक है और क/ख एक भिन्न संख्या है तो

$$\frac{क}{ख}=\frac{प\times क}{प\times ख}$$

$$\text{इस प्रकार}\ \frac{२}{३}=\frac{४}{६}=\frac{२०}{३०}=\frac{२२२}{३३३}=\frac{२७४}{४११}=\ \ldots$$

इसी प्रकार दूसरा नियम यह भी है कि यदि किसी भिन्न संख्या के हर और अंश दोनों को

एक ही पूर्णांक से भाग दे दिया जाए तो उसके मूल्य में अन्तर नहीं होगा। भाग गुणा का ही दूसरा रूप है। इस प्रकार $\frac{४}{६}$ के हर और अंश दोनों में ही २ का भाग दें तो $\frac{२}{३}$ प्राप्त होगा। गणित में इस क्रिया को करने का सीधा नियम यह है कि हर और अंश दोनों को ही छोटे से छोटे गुणन खण्डों में विभाजित कर रख देते हैं और जो गुणन खण्ड हर और अंश दोनों में ही समान पाया जाए, उसे काट देते हैं। इस नियम से :

$$\frac{४}{६}=\frac{२\times२}{२\times३}=\frac{२}{३} \text{ या } \frac{६}{९}=\frac{३\times२}{३\times३}=\frac{२}{३}$$

$$\frac{२२२}{३३३}=\frac{२\times३\times३७}{३\times३\times३७}=\frac{२}{३}$$

$$\frac{२७४}{४११}=\frac{१३७\times२}{१३७\times३}=\frac{२}{३}$$

यदि हम कहीं $\frac{२७४}{४११}$ लिखा पाएँ तो जब तक हमारा गणितीय ज्ञान बहुत अच्छा नहीं है, हम चक्कर में पड़ जाएँगे कि यह क्या है? परन्तु $\frac{२}{३}$ को सभी समझ सकते हैं। बिना पढ़ा-लिखा आदमी भी दो-तिहाई अच्छी तरह समझता है। इस प्रकार भिन्न संख्याओं को उनके छोटे से छोटे रूप में लिखने की परिपाटी है क्योंकि उसी रूप में वह अपने सबसे अधिक सुस्पष्ट और बोधगम्य रूप में होती हैं।

भिन्न संख्याओं का गुणन

एक बात स्पष्ट करना और शेष रह गया है। दो भिन्न संख्याओं के गुणा का क्या अर्थ है? यदि $\frac{२}{३}$ और $\frac{३}{४}$ का गुणा किया जाए तो कौन-सी संख्या मिलेगी? हमारी पुरानी परिभाषा यहाँ काम आती प्रतीत नहीं होती जिसके अनुसार ३×४ को हम कह देते थे कि $३\times४=४+४+४$।

$\frac{२}{३}\times\frac{३}{४}$ में $\frac{२}{३}$ को $\frac{३}{४}$ बार कैसे लिखा जा सकता है?

हम ३×४ के चित्र रूप में गुणन पर पुनः विचार करेंगे। इसका रूप कुछ निम्न था :

X ४   १   १   १   १

अब यदि हम $\frac{२}{३}$ और $\frac{३}{४}$ को भी इसी प्रकार चित्र बना कर प्रस्तुत करें, तो क्या पाएँगे ?
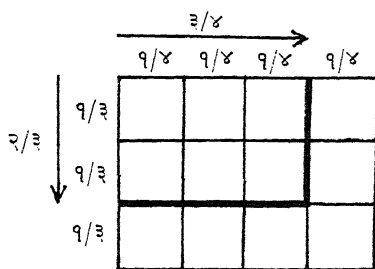
ऊपर के वर्ग में चारों भुजाओं का नाप '१' है। आड़ी रेखा को ४ बराबर भागों में विभाजित किया गया है और खड़ी को ३ में। उन पर क्रमशः $\frac{३}{४}$ और $\frac{२}{३}$ दूरी अलग से अंकित करते हैं और फिर उनका एक आयत बना देते हैं। हमारी परिभाषा के अनुसार मोटी रेखाओं से बना आयत इनका गुणन हुआ। हम देख सकते हैं कि पूरे वर्ग के कुल १२ बराबर हिस्से हुए। मोटी रेखा के आयत के अंदर ६ हिस्से हैं। इसलिए वह हिस्सा $\frac{६}{१२}$ हुआ जो $\frac{२}{३}$ और $\frac{३}{४}$ का गुणन है। इस प्रकार

$$\frac{२}{३} \times \frac{३}{४} = \frac{६}{१२}$$

यदि इस गुणा को ध्यान से देखें तो गुणनफल का अंश ६, $\frac{२}{३}$ के अंश २ और $\frac{३}{४}$ के अंश ३ का गुणनफल है और इसी प्रकार उसका हर १२ इन दोनों संख्याओं के हर ३ और ४ का गुणनफल है। इसलिए

$$\frac{२}{३} \times \frac{३}{४} = \frac{२ \times ३}{३ \times ४} = \frac{६}{१२}$$

यदि $\frac{क}{ख}$ और $\frac{च}{छ}$ दो भिन्न संख्याएँ हैं तो उनका गुणनफल $\frac{क \times च}{ख \times छ}$ होगा। इस प्रकार

$$\frac{क}{ख} \times \frac{च}{छ} = \frac{क \times च}{ख \times छ}$$

यदि हम चाहें तो ऊपर बताई चित्र की रीति से इस गुणन क्रिया का परीक्षण कर सकते

$६ \div ४ = ?$

अंत में हम देखें कि क्या हमें इस नई संख्या के आधार पर अपने मूल प्रश्न का उत्तर मिल गया—'चार में कितने का गुणा किया जाए तो गुणनफल ६ होगा ?' अथवा $४ \times क = ६$ का क्या हल होगा? हम फ़ौरन देख सकते हैं कि हमने जो अब तक सीखा है उसके आधार पर यदि क के स्थान पर $\frac{६}{४}$ लिख दें तो कार्य सिद्ध हो जाएगा।

सबसे पहले हम ४ को एक भिन्न के रूप में लिखते हैं $४ = \frac{४}{१}$ फिर हम ऊपर बताई

रीति से दो भिन्नों का गुणन करेंगे। इस नई भिन्न के हर और अंश दोनों में एक गुणन खण्ड ४ समान है, इसलिए उसे काटा जा सकता है। इस प्रकार

$$४ \times \frac{६}{४} = \frac{४}{१} \times \frac{६}{४} = \frac{४ \times ६}{१ \times ४} = \frac{\cancel{४} \times ६}{१ \times \cancel{४}} = \frac{६}{१} = ६$$

इससे यह स्पष्ट हो गया कि $\frac{६}{४}$ वह संख्या है जिसे ४ में गुणा किया जाए तो गुणनफल ६ होगा।

इस प्रकार इन नयी भिन्न संख्याओं के सहारे हम इस प्रकार के सभी प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं जैसे

'वह कौन-सी संख्या है जिसे ख में गुणा करने पर गुणनफल क होता है ?'

उत्तर है $\frac{क}{ख}$।

हम ऊपर बताई विधि से गुणा कर इसकी सत्यता के विषय में आत्मसंतुष्टि कर सकते हैं।

$\frac{क}{ख}$ एक भिन्न संख्या है।

परिमेय संख्या समुदाय या 'परिमेय-क्षेत्र'

इस प्रकार हम अपनी यात्रा में अब उस स्थान पर आ पहुँचे हैं जहाँ हम बेधड़क जोड़, बाक़ी, गुणा और भाग के किन्हीं भी प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। इस संख्या समुदाय को हम परिमेय संख्या समुदाय कहते हैं। पूर्णांक संख्या समुदाय परिमेय संख्या समुदाय का एक उप-समुदाय है—धनात्मक पूर्णांक, पूर्णांक समुदाय का उपसमुदाय और प्राकृतिक संख्या धनात्मक पूर्णांक का उपसमुदाय। यह तो वैसी ही बात हुई जैसे मैं सनाढ्य हूँ, सनाढ्य हिन्दी भाषी ब्राह्मण है जो ब्राह्मणों की एक उपशाखा है जो हिन्दू है और जो मानव है। अब तक के संख्या समुदाय के विस्तार को नीचे दर्शाया गया है।

१, २, ३, ४, . . . प्राकृतिक संख्या समुदाय

०, १, २, ३, ४, . . . धनात्मक पूर्णांक संख्या समुदाय

. . ., —४, —३, —२, —१, ०, १, २, ३, ४, . . . पूर्णांक संख्या समुदाय

$\cdots\frac{-४}{१}\cdots\frac{-३}{१}\cdots\frac{-२}{१}\cdots\frac{-१}{१}\cdots ० \cdots\frac{१}{४}\cdots\frac{१}{२}\cdots\frac{१}{१}\cdots\frac{२}{१}\cdots\frac{३}{१}, \ldots$ परिमेय संख्या समुदाय

अध्याय ७

परिमेय संख्या – कुछ और तथ्य

क्या खरगोश कछुए से आगे निकल सकता है?

आइए, इन संख्या-बिन्दुओं की सृष्टि में अंदर प्रवेश करें।

दो हज़ार वर्षों से भी अधिक हुए, प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता ज़ीनो ने एक समस्या प्रस्तुत की जो विचारकों के लिए हज़ारों वर्ष तक विस्मय, चिन्ता तथा गवेषणा का विषय बनी रही। समस्या कुछ इस प्रकार है. . .

एक कछुए और एक खरगोश में दौड़ हुई। अपनी शारीरिक सीमाओं के कारण कछुआ कुछ धीरे चलता है इसलिए उसे कुछ प्रारंभिक लाभ दे दिया गया। वह दौड़ प्रारंभ होने के स्थान से कुछ आगे खड़ा हुआ। दौड़ प्रारंभ हुई. . .कछुआ आगे था और खरगोश पीछे. . .

ज़ीनो ने दावा किया कि इस दौड़ में खरगोश चाहे कितनी तेज़ी से क्यों न दौड़े कछुए के आगे नहीं निकल सकता है।

यह तो बिल्कुल ही असंभव-सी बात प्रतीत होती है। हमारा रोज़ का अनुभव है कि दौड़ में दो व्यक्तियों में पीछे वाला अपनी चाल तेज़ कर दूसरे के आगे निकल सकता है। दौड़ में अव्वल आने वाला तो अक्सर आख़िरी कुछ सेकण्डों में ही दम लगाकर सबको पार कर जाता है। पर ज़ीनो का कहना कुछ उल्टा ही है—जो एक बार आगे चला, वह सदा ही आगे रहेगा; पीछे चलने वाला उसके आगे कभी नहीं निकल सकता। हाँ, गणित की दुनिया ही कुछ ऐसी है।

ज़ीनो का तर्क कुछ इस प्रकार था :

कछुआ खरगोश के आगे है। मान लीजिए दौड़ के प्रारंभ में खरगोश सरल रेखा के बिन्दु क पर है और कछुआ बिन्दु ख पर। दौड़ प्रारंभ होती है और हम दोनों की स्थितियों को ध्यान से देखते रहते हैं। कुछ समय के बाद खरगोश बिन्दु ख पर पहुँच जाएगा पर उस समय तक कछुआ भी अपनी धीमी चाल से ख के कुछ आगे एक बिन्दु ग पर पहुँच जाएगा। देखने योग्य बात यह है कि इस समय भी कछुआ खरगोश के आगे ही है। इस स्थिति को हम दौड़ का प्रथम चरण मान लेते हैं।
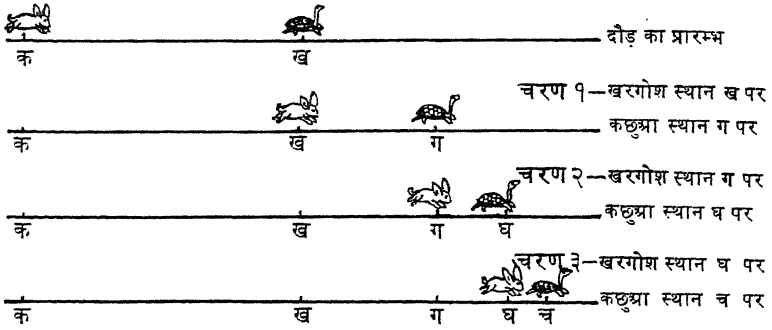
परंतु अभी दौड़ समाप्त नहीं हुई। दोनों दौड़ रहे हैं। फिर कुछ ही समय बाद खरगोश स्थान ग पर पहुँच जाएगा। परंतु कछुए ने अभी हार नहीं मानी है, इतनी देर में वह स्थान ग से चल कर घ तक पहुँच गया होगा। यह दौड़ का दूसरा चरण हुआ।

अब खरगोश ग बिन्दु पर और कछुआ घ बिन्दु पर आ गया है। पर मूल रूप में स्थिति वही रही जो दौड़ के प्रारंभ में थी। कछुआ आगे है और खरगोश पीछे। अंतर केवल इतना है कि अब दोनों के बीच की दूरी कुछ कम हो गई है। परंतु दूरी का कम होना तो एक आपेक्षिक बात है। हमने दौड़ के प्रारंभ में कछुआ कितना आगे है इसका कोई ख़ास ध्यान नहीं रखा था। जब तक कछुआ आगे है मूल-स्थिति में परिवर्त्तन नहीं होता है।

हम प्रश्न कर सकते हैं कि तब फिर क्या हुआ?

अभी भी दोनों स्वस्थ हैं और दौड़ चालू है। कुछ समय के बाद खरगोश जहाँ चरण २ के अंत में कछुआ है, उस स्थान पर अर्थात् बिन्दु घ पर पहुँचेगा। परन्तु उस समय तक कछुआ उससे आगे के एक अन्य बिन्दु च पर पहुँच जाएगा। अर्थात् दौड़ के तीसरे चरण के अंत में भी मूल स्थिति वही है। दूरी कम अवश्य होती जा रही है, पर दौड़ का निर्णय नहीं हुआ।

इसी प्रकार एक चरण से दूसरे चरण तक यह दौड़ चालू रहेगी। इसके सौवें चरण के बाद भी खरगोश उस स्थान पर पहुँचेगा जहाँ कछुआ निन्यानबें चरण के अंत में था और कछुआ आगे ही रहेगा। एक लक्ष चरणों के बाद भी मूल रूप से स्थिति वही होगी। प्रत्येक चरण में बेचारा खरगोश उस बिन्दु पर पहुँच पाता है जिसे कछुआ कुछ समय पहले छोड़ चुका होता है।

इसीलिए आचार्य ज़ीनो कहते हैं कि कछुआ सदा ही आगे रहेगा।

हम चाहे कितनी कोशिश करें, खरगोश की जीत के लिए; खरगोश, चाहे कितना भी तेज़ क्यों न दौड़े, वह कछुए के आगे नहीं निकल सकता है। वस्तुतः वह ज़ीनो के इस चक्कर से नहीं निकल सकता है।

बेचारा जीत की मृगतृष्णा में इन बिन्दुओं की 'घनी' बस्ती में फँस कर कछुए से आगे निकलने के लिए दम तोड़ता रहेगा।

आइए, इस घनी बस्ती में कुछ देर विचरण करें।

बिन्दुओं की घनी बस्ती

हमने अपने दैनिक जीवन में अनेक वस्तियाँ देखी होंगी, पर यह बिन्दुओं की बस्ती अति विचित्र प्रतीत होती है जहाँ खरगोश एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर उछलता चला जा रहा है पर गति होते हुए भी कुछ आगे नहीं बढ़ पा रहा है। कितनी घनी है यह वस्ती ? यह जानने के लिए हमें अपने संख्या-बिन्दुओं का पुन:परीक्षण करना होगा।

इसके पूर्व हमने पृष्ठ ७७ पर एक सरल रेखा पर किसी एक विन्दु को ० का स्थान मानकर दाहिनी ओर किसी एक माप के बराबर दूरी नाप कर अगणित निशान लगाकर प्राकृतिक संख्याओं को दर्शाया था। इस प्रकार रेखा के दाहिनी ओर के कुछ विन्दुओं को हमने पूर्णांकों को निरूपित करने के लिए उपयोग किया था। हमारी संख्या संकल्पना की अभिवृद्धि के साथ हमने इसी प्रक्रिया को '०' स्थान के बाईं ओर भी दुहराया और उसी निश्चित् माप के बराबर लगातार दूरी नाप कर ऋणात्मक पूर्णांकों को दर्शाया था। इस प्रकार संपूर्ण सरल रेखा—बाईं ओर अनन्त से लेकर दाहिनी ओर अनन्त तक—के कुछ विन्दुओं के द्वारा पूरे पूर्णांक संख्या समुदाय को दर्शाया था।

परंतु इस प्रक्रिया में इन पूर्णांकों को निरूपित करने वाले किन्हीं दो बिन्दुओं के वीच के अनेक बिन्दु अछूते ही रहे। क्या ये बिन्दु भी किन्हीं संख्याओं को दर्शाते हैं ? क्या हम इन छूटे हुए बिन्दुओं को भी संख्यात्मक संज्ञा दे सकते हैं ? पूर्णांकों के अलावा हमारे पास अब भिन्न संख्या समुदाय भी और आ चुके हैं। हम देख चुके हैं कि ० और १ के बीच में एक ऐसा बिन्दु है जो इस दूरी को दो बराबर भागों में विभाजित करता है। हम उस बिन्दु को '$\frac{१}{२}$' संख्या का परिचायक अथवा उसका संवादी संख्या-बिन्दु कह सकते हैं। इसी प्रकार ० और १ के बीच दो ऐसे बिन्दु हैं जो उसे तीन बराबर हिस्सों में विभाजित करते हैं। हम उनमें से पहले बिन्दु को $\frac{१}{३}$ और दूसरे को $\frac{२}{३}$ का संख्या-बिन्दु कहते हैं। इसी प्रकार से ० के बाईं ओर ० और —१ के बीच कुछ बिन्दु निश्चित किए जा सकते हैं जो $-\frac{१}{२}$, $-\frac{१}{३}$, $-\frac{२}{३}$ कहे जाएँ।

—१ $-\frac{२}{३}$ $-\frac{१}{२}$ $-\frac{१}{३}$ ० १/३ १/२ २/३ १
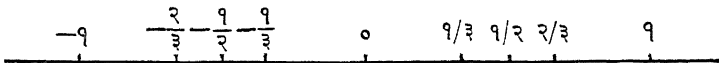
यह प्रक्रिया हम जब तक चाहें करते जा सकते हैं। इस रीति से हम प्रत्येक भिन्न संख्या को एक बिन्दु का निश्चित स्थान दे सकते हैं। $\frac{११}{५३}$ का अर्थ है कि ० और १ के बीच की दूरी को ५३ बराबर भागों में बाँट कर ० से ग्यारहवें स्थान को गिन कर निशान लगाना। यही संख्या-बिन्दु $\frac{११}{५३}$ कहलाएगा। $\frac{क}{ख}$ (जिसमें ख क से बड़ा पूर्णांक है) का अर्थ है कि ० और १ के बीच की दूरी को 'ख' बराबर भागों में बाँटिए और ० से क बार इस दूरी को गिन लीजिए और इस प्रकार जिस स्थान पर पहुँचें वही बिन्दु $\frac{क}{ख}$ कहलाएगा।

जहाँ एक ओर पूर्णांक सरल रेखा पर छितरे हुए अवस्थित हैं, अर्थात् एक दूसरे

इसी प्रकार $\frac{१}{१०}$ लिखना हुआ तो १० (∩) का उलटा चिह्न बनाते थे। इन भिन्न संख्याओं का अंश सदा १ होता है। गणित में इस प्रकार की भिन्न संख्या को नाम दिया गया है 'एकांश भिन्न'।

परंतु हमने तो और बहुत-सी भिन्न संख्याएँ भी देखी हैं जिनका अंश १ नहीं है। उन्हें मिस्रवासी किस प्रकार लिखते होंगे? ऐसी संख्याओं को लिखने की भी विधि उन लोगों को मालूम थी। वे उन्हें दो या अधिक ऐसी एकांश भिन्न संख्याओं के जोड़ के रूप में लिखा करते थे। संभवतः किसी भी भिन्न संख्या को एकांश भिन्नों के योग के रूप में लिखने की पूरी प्रक्रिया का तो ज्ञान उन्हें नहीं था, पर कुछ संख्याओं के बारे में वे अवश्य जानते थे। जैसे $\frac{३}{४}$ को वे $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$ के रूप में लिखते थे और $\frac{२}{६१}$ को $\frac{१}{४०}$, $\frac{१}{२४४}$, $\frac{१}{४८८}$, $\frac{१}{६१०}$। ध्यान देने की बात है कि ये लोग '+' की तरह का कोई चिह्न उपयोग में नहीं लाते थे, दो संख्याओं को पास-पास रखने का अर्थ ही जोड़ना होता था। रींड पापीरस (१३०० ई० पू०) में एक सारिणी मिलती है जिसमें ३ से लेकर १०१ तक की विषम संख्याओं से २ को भाग देने पर जो भिन्नांक बनते हैं अर्थात् $\frac{२}{३}$, $\frac{२}{५}$, $\frac{२}{७}$, ... $\frac{२}{१०१}$—उन्हें एकांश भिन्नों के योग के रूप में लिखा है।

मिस्रवासी केवल एक ही ऐसे भिन्न अंक का उपयोग करते थे जो एकांश भिन्न न हो—वह था $\frac{२}{३}$। वास्तव में इससे तो उनका इतना अधिक लगाव था कि वे $\frac{१}{३}$ को भी १ और $\frac{२}{३}$ के अंतर के रूप में व्यक्त करते थे।

यह आश्चर्यजनक है कि मिस्रवासी, जो अन्य क्षेत्रों में इतने अधिक आगे पहुँच चुके थे, भिन्नांकों के लिए कोई विधि नहीं ढूँढ़ पाए। आज वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हमारे साधारण जीवन का कितना अभिन्न अंग बन गई हैं, इसका सहसा अनुभव नहीं होता। प्रसिद्ध वैज्ञानिक अरस्तू को $\frac{३}{४}$ कहने के लिए इस प्रकार का सुंदर संकेत उपलब्ध न था। उसे वह $\frac{१}{२}+\frac{१}{४}$ के रूप में व्यक्त करता था। हीरो उसी काल में $\frac{३१}{४१}$ के लिए $\frac{१}{२}+\frac{१}{२७}+\frac{१}{३४}+\frac{१}{५१}$ उपयोग करता था। रूस में सत्रहवीं शताब्दी में भी $\frac{१}{९६}$ के लिए एक लम्बा पद 'आधा-आधा-आधा-आधा-आधा-तिहाई' कहना होता था। हमारी नई पद्धति ने जो हमें विचार व्यक्त करने में सरलता प्रदान की, वह हमें इन उदाहरणों से भलीभाँति स्पष्ट हो गई होगी।

एक प्रश्न का उत्तर देना यहाँ उचित होगा। क्या हम सभी भिन्न संख्याओं को एकांश भिन्नों के योग के रूप में लिख सकते हैं? इसका उत्तर है हाँ और इसकी विधि भी बड़ी सरल-सी है। हम **सभी** एकांश भिन्न संख्याओं को क्रम से लिख सकते हैं। ये हैं :

$$\frac{१}{२}, \frac{१}{३}, \frac{१}{४}, \frac{१}{५}, \frac{१}{६}, \frac{१}{७}, \ldots$$

इसमें $\frac{१}{२}$ सबसे बड़ी संख्या है और उसके बाद की सभी संख्याओं का हर बढ़ता जाता है जिसके फलस्वरूप संख्या स्वय क्रमशः छोटी होती जाती है। अब अगर किसी संख्या को हम एकांश भिन्नों के योग के रूप में रखना चाहते हैं तो सर्वप्रथम यह देखना होगा कि वह एकांश भिन्नों में से किस बड़ी से बड़ी भिन्न संख्या से बड़ी है। इसे जानने के लिए एक आसान तरीक़ा है, जिसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है।

मान लीजिए हमें $\frac{३}{७}$ को एकांश भिन्नों के रूप में लिखना है। सबसे पहले क्रम से

लिखी ऊपर सभी एकांश संख्याओं के हर और अंश दोनों को ३ से गुणा कर दें। इस क्रिया से, हमें स्मरण होगा, कि इन संख्याओं का रूप तो बदल जाएगा, पर मूल्य वही रहेगा। (देखिए पृष्ठ ८८)। इस प्रकार एकांश भिन्न संख्या समूह $\frac{१}{२}, \frac{१}{३}, \frac{१}{४}, \ldots$ का नया रूप हुआ :

$$\frac{३}{६}, \frac{३}{९}, \frac{३}{१२}, \frac{३}{१५}, \ldots$$

अब हम अपनी संख्या $\frac{३}{७}$ की इन संख्याओं से आसानी से तुलना कर सकते हैं। सभी का अंश '३' है इसलिए छोटाई-बड़ाई संख्या के 'हर' पर निर्भर होगी। बड़ा हर होने का अर्थ संख्या का छोटा होना है। हम आसानी से देख सकते हैं कि हमारी भिन्न संख्या $\frac{३}{७}$ दो भिन्न संख्याओं $\frac{३}{६}$ और $\frac{३}{९}$ के बीच की है। वह $\frac{३}{६}$ से छोटी है तथा $\frac{३}{९}$ से बड़ी है अर्थात् वह $\frac{१}{२}$ से छोटी है, पर $\frac{१}{३}$ से बड़ी है। इसलिए $\frac{१}{३}$ ही वह सबसे बड़ी एकांश भिन्न है जिससे $\frac{३}{७}$ बड़ी है।

अब हम इस बड़ी से बड़ी एकांश भिन्न को $\frac{३}{७}$ में से घटा देते हैं :

$$\frac{३}{७} - \frac{१}{३} = \frac{३ \times ३ - ७}{२१} = \frac{९ - ७}{२१} = \frac{२}{२१}$$

इस प्रकार $\frac{३}{७} = \frac{१}{३} + \frac{२}{२१}$

परंतु अभी दूसरी संख्या एकांश भिन्न नहीं है। इसलिए हमें जो उसका दूसरा भाग एकांश नहीं है, उसकी ओर ध्यान देना होगा। जिस प्रकार हमने $\frac{३}{७}$ में से दीर्घतम एकांश भिन्न का पता लगाया, उसी प्रकार $\frac{२}{२१}$ में भी निहित एकांश भिन्न का पता लगाना होगा। इसके लिए सर्वप्रथम हमें $\frac{२}{२१}$ एवं एकांश भिन्न समुदाय के अंशों को बराबर करना होगा। हम फिर से मूल एकांश भिन्नों के हरों और अंशों को २ से गुणा कर लिखेंगे :

$$\frac{२}{४}, \frac{२}{६}, \frac{२}{८}, \frac{२}{१०}, \frac{२}{१२}, \frac{२}{१४}, \frac{२}{१६}, \frac{२}{१८}, \frac{२}{२०}, \frac{२}{२२}, \frac{२}{२४}, \ldots$$

हम फिर देख सकते हैं कि हमारी भिन्न संख्या $\frac{२}{२१}$ दो भिन्न संख्याओं $\frac{२}{२०}$ और $\frac{२}{२२}$ के बीच में स्थित है। वह $\frac{२}{२०}$ से छोटी और $\frac{२}{२२}$ से बड़ी है। अतः हम $\frac{२}{२१}$ में से $\frac{२}{२२}$ अर्थात् $\frac{१}{११}$ घटा देंगे :

$$\frac{२}{२१} - \frac{१}{११} = \frac{२२ - २१}{२३१} = \frac{१}{२३१}$$

अथवा $\frac{२}{२१} = \frac{१}{११} + \frac{१}{२३१}$

इस प्रकार हम अपनी मूल संख्या $\frac{३}{७}$ को निम्न रूप में लिख सकते हैं :

$$\frac{३}{७} = \frac{१}{३} + \frac{१}{११} + \frac{१}{२३१}$$

अथवा मिस्र की लिपि में वह iii ∩i ९९∩∩∩i रूप में प्रस्तुत होगी।

भिन्न संख्याओं के अन्य रूप

हम भिन्न संख्याओं के अनेक रूप देख चुके हैं। परंतु क्या इनको लिखने की और

भी कोई विधि है ? हाँ, एक और विधि है और वह भी है अत्यंत महत्त्वपूर्ण। हमें याद होगा कि हमारी दशमलव संख्या पद्धति में प्रत्येक अंक का मान बाईं ओर एक स्थान हटने में दस गुना हो जाता है। और दाईं ओर एक स्थान हटने में मान दशमांश रह जाता है। इसमें दाहिनी ओर का अंतिम स्थान 'इकाई' है। बाईं ओर कितने भी स्थान हो सकते हैं।

सैकड़ा	दहाई	इकाई
२	०	०
	२	०
		२

अब हम यह प्रश्न कर सकते हैं कि क्या दाहिनी ओर अंतिम स्थान होना आवश्यक है ? यदि स्थान मान के मूल सिद्धांत को कायम रखा जाए अर्थात् दाहिनी ओर एक स्थान हटाने से अंक का मूल्य दशमांश हो जाय परंतु इकाई के दाहिनी ओर भी अंकों के रखने की व्यवस्था कर दी जाय तो इन अंकों का उस स्थान पर क्या मान होगा ? अब तक के सिद्धांतों के अनुसार, उसका कोई अर्थ नहीं। पर मूल्य ह्रास के नियम के अनुसार उस अंक का एक स्थान दाहिनी ओर हटने पर दशमांश मूल्य रह जाना चाहिए। यह ध्यान देने योग्य है कि ऐसा करने पर इकाई के दाहिनी ओर स्थानों का एक नया क्रम प्रारंभ होता है। और हम अंकों को चाहे कितनी दूर भी दाहिनी ओर ले जा सकते हैं।

इकाई			
२	०	०	०
०	२	०	०
०	०	२	०
०	०	०	२

इकाई-दहाई तथा उनके बाईं ओर के स्थानों को इकाई के दाहिनी ओर के स्थानों से स्पष्ट रूप से अलग रखने के लिए हमने यहाँ एक मोटी रेखा खींच दी है। संख्या लिखने में भी यह आवश्यक है कि कोई चिह्न ऐसा हो जो इकाई के अंक को सुनिश्चित कर सके । अन्यथा २५७८ में क्या मालूम कि कौन-सा अंक इकाई का है। यदि ८ को इकाई मानें तो यह संख्या दो हज़ार पाँच सौ अठहत्तर है। यदि '५' इकाई का अंक है तो संख्या पच्चीस हुई, व उसके दाहिनी ओर के दो अंक ७ और ८ का मूल्य ऊपर बताई रीति से निकालना

होगा। ऊपर चित्र में मोटी रेखा से इकाई और उसके दाहिने के अंकों को अलग करते हैं। पर साधारण रूप से संख्या लिखने में तो ऐसे रेखा नहीं लगाई जा सकती है। इसलिए जिस संख्या में इकाई अंतिम अंक नहीं होता है उसमें हम इकाई के बाद एक बिन्दु लगा देते हैं जिसे दशमलव कहते हैं। इस प्रकार

२५७८ है दो हजार पाँच सौ अठहत्तर,

२५७.८ है दो सौ सत्तावन दशमलव आठ,

२५.७८ है केवल पच्चीस दशमलव सात आठ...

आइए, अब इकाई के दाहिनी ओर अंक को हटाकर रखने पर उसका मूल्य किस प्रकार घटता है, यह और नजदीक से देखें। पृष्ठ १०० के दूसरे चित्र में अंक २ के दाहिनी ओर एक स्थान हटने से उसका मूल्य $२ \times \frac{१}{१०}$ हो गया, दो स्थान हटने से $२ \times \frac{१}{१०} \times \frac{१}{१०}$ और तीन स्थान हटने से $२ \times \frac{१}{१०} \times \frac{१}{१०} \times \frac{१}{१०}$ हो गया। दशमलव रीति से लिखने के लिए दशमलव और प्रथम अंक के बीच जिन स्थानों पर कोई अंक नहीं है, वहाँ शून्य रख देते हैं। इस प्रकार $२ \times \frac{१}{१०} = .२$

$$२ \times \frac{१}{१०} \times \frac{१}{१०} = .०२ \text{ और } २ \times \frac{१}{१०} \times \frac{१}{१०} \times \frac{१}{१०} = .००२$$

हो गया। १३५.७३ का अर्थ है $१०० + ३० + ५ + \frac{७}{१०} + \frac{३}{१००}$।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि हमने २ को २.० के रूप में लिखा है। किसी पूर्णांक के बाईं ओर लिखे शून्य का कोई मान नहीं होता है, जैसे यदि हम ००००२ को भी लिखें तो इस संख्या का मान केवल २ ही है। उसी प्रकार यदि दशमलव के दाहिनी ओर के अंतिम अंक के आगे शून्य लिखा जाए तो उसका कोई मान नहीं। जैसे .२ को हम .२०,०० भी लिख सकते हैं। शून्य तो केवल संख्याओं के आधार के रूप में ही उपयोगी होता है। .२०,००,०१ में चार शून्य २ और १ के बीच लगे हैं। उनका महत्त्व है। इस संख्या में उनके ही कारण अन्तिम अंक १ वास्तव में $\frac{१}{१०,००,०००}$ है।

हमने बड़ी संख्याओं को लिखने की एक सरल विधि भी पिछले अध्याय में देखी थी। २३,००,००,००० को हम २३×१०^{७} लिख सकते हैं। उसी प्रकार इन अत्यन्त छोटी संख्याओं को भी लिखा जा सकता है। .००,००,००,०२ का अर्थ क्या है?

$$\frac{२}{१० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १०} \text{ अथवा } \frac{२}{१०^{८}}$$

। इसी को हम २×१०^{-८} भी लिखते हैं। १० के ऋण घात का अर्थ अभी हमने स्पष्ट नहीं किया है। देखें यह क्या है?

हम जानते हैं कि यदि क, त और थ कोई भी पूर्णांक हों तो

$$क^{त} \div क^{थ} = क^{त-थ}$$

मान लीजिए

$$क = १०$$

$$१०^{त} \div १०^{थ} = १०^{त-थ}$$

अब मान लीजिए कि $न = ०$

$$१०^{०} \div १०^{थ} = १०^{०-थ}$$

अथवा क्योंकि $१०^{०} = १$ और $० - थ = -थ$

$$१ \div १०^{थ} = १०^{-थ};\quad १ \div १०^{थ} \text{ को } \frac{१}{१०^{थ}}$$ के रूप में भी लिखा जाता है;

इसलिए

$$\frac{१}{१०^{थ}} = १०^{-थ}$$

यदि इस समीकरण में थ = १, २, ३, ४, . . . रखें तो निम्न फल प्राप्त होंगे :

$$\frac{१}{१०} = १०^{-१}$$

$$\frac{१}{१०^{२}} = १०^{-२}$$

$$\frac{१}{१०^{३}} = १०^{-३}$$

इत्यादि।

इस रीति से छोटी से छोटी संख्या सरल और सुगम रीति से लिखी जा सकती है। एक इलेक्ट्रॉन का वजन .०००००००००००००००००००००००००००९१०८ ग्राम होता है। पहले तो इस संख्या का ठीक लिखना ही कठिन है, कहीं एक आध शून्य रह न जाय। और दूसरे जब भी जानना हो कि यह संख्या क्या लिखी हुई है तो सभी शून्यों को प्रारंभ से गिनना होगा। परंतु इसी संख्या को १० के ऋणात्मक घातों की सहायता से हम ९.१०८×१०^{-२८} ग्राम के रूप में भी लिख सकते हैं। इस संख्या को देखते ही हमें उसके लगभग मान का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार पहली विधि जितनी दुरूह है, दूसरी विधि उतनी बोधगम्य है, उतनी ही सुंदर।

अब हम एक बार पुनः भाग की समस्या पर विचार करेंगे। हमारा मूल प्रश्न था कि 'वह कौन-सी संख्या है जिसे ४ से गुणा करने पर गुणनफल ३ होगा ?' हमें प्राकृतिक संख्याओं में इसका उत्तर खोजने पर नहीं मिला। इसके उत्तर की खोज में हमने अपनी संख्या-संकल्पना को विस्तृत किया। इस नये संख्या-परिवार में हमें भिन्नांक प्राप्त हुए और हमारे प्रश्न का उत्तर मिल गया $\frac{३}{४}$।

इस उत्तर को सुनकर कोई भी कह सकता है कि 'वाह क्या सुंदर उत्तर दिया हैं ! ज़रा $\frac{३}{४}$ के अर्थ क्या होते हैं, यह तो बताइए।' $\frac{३}{४}$ का अर्थ होता है ३ में ४ का भाग। क्या ही खूब, यह तो उसी प्रश्न को दूसरे रूप में लिख लिया और मन को समझा लिया कि उत्तर मिल गया। दिल्ली में पहली बार आने वाले ने पूछा कि संसद भवन कहाँ है, उत्तर मिला—विजयचौक के पास। और उसने कुछ सोचकर फिर पूछा—विजयचौक कहाँ है ? उत्तर मिला, वहीं संसद भवन के दक्षिणी फाटक पर। उसे दोनों ही प्रश्नों का उत्तर तो मिल गया पर प्रश्नकर्त्ता उनकी स्थिति के विषय में उतना ही अनजाना बना रहा जितना वह पहले था। इसीलिए तो कहते हैं कि गणित एक पुनरुक्तिपूर्ण विषय मात्र

है—जिसमें एक ही बात को अनेक रूपों में कहा जाता है।

क्या यह कथन अक्षरशः ठीक है अथवा इसके परे भी कुछ है ? $\frac{३}{४}$ को हम दो प्रकार से देख सकते हैं। पहली रीति है कि हम ३ का स्थान निर्धारण करें और ४ हिस्सों में विभाजित करें तो उसका एक भाग $\frac{३}{४}$ होगा। दूसरी रीति है, १ को ही चार बराबर हिस्सों में विभाजित करना और उसमें से ३ हिस्से अलग करना। दोनों प्रकार से उत्तर एक ही मिलता है पर क्रियाएँ भिन्न हैं। परन्तु ध्यान रहे कि इनके ज्ञान से हमारी दृष्टि अधिक
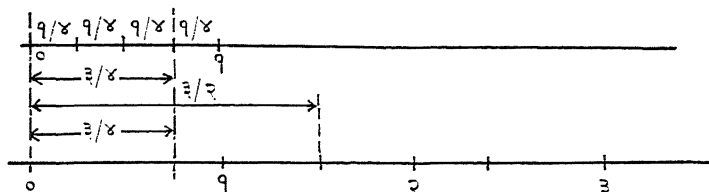
स्पष्ट होती है तथा हमें इन संख्याओं को लिखने की एक नई विधि भी मिलती है। यह स्वयं में ही एक मूल्यवान् उपलब्धि है। आइए, इन संख्याओं को व्यक्त करने की एक और नई विधि की खोज करें।

आवर्त्त दशमलव

ऊपर हम देख चुके हैं कि दशमलव के दाहिनी ओर के शून्यों का कोई मूल्य नहीं होता, जब तक कि उनके दाहिनी ओर अंतिम स्थान पर कोई अंक न हो। २ और २.०००० वही संख्या है। आइए देखें कि $\frac{३}{४}$ में यदि अंश को हम दशमलव रूप में लिखें तो क्या होगा?

$\frac{३}{४} = \frac{३.०००\ldots}{४}$। ३.००० के बाद '...' चिह्न लगाने का अर्थ है कि हम ३.००० के बाद भी इसी प्रकार कितने ही शून्य रखते जा सकते हैं। क्या अब हम ३.०००... में ४ द्वारा भाग दे कर किसी समाधान पर पहुँच सकते हैं ? उत्तर है, जी हाँ। जो संख्या दाहिनी ओर इकाई पर आकर समाप्त हो जाती थी दशमलव के प्रयोग से अब उसके दाहिनी ओर अनंत अंकों के प्रयोग करने की संभावना हो गई। दशमलव के भाग के नियमों से $\frac{३}{४}$ को हम दशमलव रूप में निम्न रीति से परिवर्त्तित कर सकते हैं :

```
४) ३.०००० (.७५
   २८
   ──
    २०
    २०
    ──
     ×
```

$\frac{३}{४} = .७५$

इस भाग में हमें केवल दो शून्यों के उपयोग करने की ही आवश्यकता पड़ी और हमारा उत्तर आ गया .७५। यह $\frac{३}{४}$ को लिखने की दूसरी रीति है।

अब देखें $\frac{१}{३}$ को किस प्रकार लिखा जाए। इसी नियम से हम १ को १.००००० के रूप में लिख सकते हैं और फिर भाग दे सकते हैं :

अब तो ऐसा प्रतीत होता है कि हम किसी भूलभुलैया में फँस गए। निकलने का कोई रास्ता ही नहीं प्रतीत होता है। दशमलव के दाहिनी ओर शून्य जोड़ते जाइए और भाग देते जाइए। जब तक चाहे तब तक कीजिए भजनफल में ३ जुड़ते जाएँगे। यह तो न खत्म होने वाली कहानी हो गई।

बात भी कुछ ऐसी ही है। यहाँ भिन्न रूप में एक छोटी-सी संख्या $\frac{१}{३}$ का दशमलव रूप में अनंत विस्तार हो गया है और उसका रूप है :

.३३३३....

हम दाहिनी ओर चाहे, कितनी बार भी अंक ३ को दुहराते जाएँ, पर यह संख्या $\frac{१}{३}$ के बराबर नहीं होगी, क्योंकि अभी तो उसके आगे भी बहुत कुछ शेष है। यदि हम ३ को १०० बार भी लिखें तो भी अगणित बार '३' का लिखना शेष रह जाएगा।

तब फिर इस झगड़े से लाभ ?

हाँ, लाभ है अवश्य। साधारण रूप से काम चलाने के लिए हमें पूर्णता की आवश्यकता नहीं होती। हमारी सरल रेखा पर अंकित किए गए संख्या बिन्दुओं को ही देखिए। पहले हमने किसी स्थान पर '०' का चिह्न लगाया और फिर हमने निशान लगाया अंक १ के लिए। चाहे किसी भी प्रकार से हम निशान क्यों न लगाएँ, जिस चीज़ से निशान लगाएँगे,
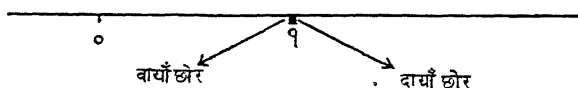
उसकी मोटाई कुछ न कुछ होगी अर्थात् इस चिह्न का बायाँ छोर होगा और दाहिना छोर भी। जब ऐसा है तो प्रश्न है कि १ का वास्तविक स्थान कहाँ पर है। उस निशान के बाएँ कोने पर या दाहिने कोने पर अथवा इन दोनों सीमाओं के कहीं बीच में। यदि

इतनी संभावनाएँ हैं तो विवाद समाप्त करने के लिए हम कह सकते हैं कि १ का वास्तविक स्थान न दाहिनी सीमा पर और न बाईं सीमा पर परंतु उनके बीच में। पर उस 'बीच' को हम किस प्रकार रेखा पर दर्शाएँगे। जैसे ही हम उसे किसी निशान द्वारा दर्शाने का प्रयत्न करेंगे, वही पुरानी समस्या फिर आ जाएगी। वह निशान और भी बारीक हो सकता है, पर उसकी भी कुछ न कुछ मोटाई तो होगी ही। इसलिए बायाँ छोर भी होगा और दाहिना छोर भी। फिर बिन्दु कहाँ है ?

यह तो बड़ी लाचारी हो गई—इसका समाधान? समाधान यही हो सकता है कि हम अपने मन में सोच लें कि एक ऐसा बिन्दु है। उसका लगभग स्थान जानने के लिए कागज़ पर केवल सुविधा के लिए ही निशान लगाएँ। हमारा वास्तविक बिन्दु उसी चिह्न के अंतर्गत कहीं होगा। वास्तव में बिन्दु की कोई लम्बाई-चौड़ाई नहीं हो सकती क्योंकि जहाँ हमने यह माना कि उसकी एक निश्चित चौड़ाई भी है तो फ़ौरन वही सवाल होगा कि उसका निश्चित स्थान इस चौड़ाई में कहाँ है।

इन्हीं समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए बिन्दु की ज्यामितीय परिभाषा है कि 'बिन्दु के कोई विमा नहीं होती'। उसका अस्तित्व हमारी विचार की दुनिया में ही है, प्रत्यक्ष जगत् में तो उसका आभास मात्र है।

तो स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष जगत् में हमें निश्चित वस्तुएँ नहीं मिलतीं। निश्चित माप नहीं हो सकता। हम उनके लगभग अथवा सन्निकट मूल्यों से संतुष्ट हो जाते हैं। जैसे कि यदि हम बिल्कुल ही मोटे हिसाब से १/३ का मान दशमलव रूप में रखना चाहें तो उसके लगभग मूल्य से उसके वास्तविक मूल्य का अंतर देख लेंगे। जैसे-जैसे दशमलव अंकों की संख्या बढ़ती जाती है यह अंतर कम होता जाएगा और अंत में जहाँ हमें यह संतोष हो जाए कि हमारे काम के लिए एक निश्चित मूल्य पर्याप्त है तो हम वहाँ रुक सकते हैं।

इस तालिका से देखा जा सकता है कि कुछ अत्यंत साधारण काम के लिए $\frac{1}{3}$ के स्थान पर यदि .३ लिख दें तो भी काम चल जाएगा। जैसे-जैसे हम अधिक दशमलव अंकों तक '३' लिखते जाते हैं, सन्निकट मूल्य वास्तविक मूल्य के समीप आता जाता है। $\frac{1}{3}$ का स्थान-चित्रण इसे स्पष्ट करता है। चित्र में .३ और .४ के बीच के स्थान को क्रमश: दस गुना कर दिखाया गया है। इसमें $\frac{1}{3}$ दो बिन्दुओं .३३ और .३४ के बीच है। इसको फिर बढ़ाकर दिखाने पर .३३३ तथा .३३४ के बीच मिलता है...

$\frac{1}{3}$ और उसके चार दशमलव अंकों तक के मान .३३३३ में अंतर निकालने के लिए तो बहुत ही अच्छी ख़ुर्दबीन की आवश्यकता होगी। परंतु अगर हम इलेक्ट्रॉन के वजन से संबंधित कोई समस्या हल कर रहे हों तो चार दशमलव अंकों से काम नहीं चलेगा और शायद तीस दशमलव अंकों तक ३ लिखना पड़ेगा।

इस प्रकार जहाँ वही अंक दशमलव के बाद आवर्त्त होने लगता है उस दशमलव को आवर्त्त दशमलव कहते हैं। $\frac{1}{3}$ को दशमलव के रूप में .३̇ लिखा जाता ३ के ऊपर ˙ लगाने का अर्थ है कि हम '३' को अनन्त बार लिख सकते हैं। इस प्रकार .७̇ का अर्थ है .७७७...

यह आवश्यक नहीं है दशमलव के बाद का पहला अंक ही आवर्त्त करे या केवल एक अंक आवर्त्त करे। .४३७̇२५६̇ का अर्थ है कि दशमलव के बाद ४३ तो स्थायी है परंतु उसके बाद ७२५६ इन चार अंकों को इसी क्रम में कितनी भी बार लिखा जा सकता है। इस प्रकार .४३७̇२५६̇ का वास्त

.४३ ७२५६ ७२५६ ७२५६ ७२५६ ७२५६ ७....

उदाहरण के लिए देखें $\frac{17}{70}$ दशमलव रूप में क्या होगा?

इसमें हम देखते हैं कि कुछ समय भाग देने के पश्चात् शेष ३० रहता है जो पहली बार भाग देने पर प्राप्त हुआ था। अब दशमलव के बाद अनंत शून्यों में से हम एक-एक शून्य ही उतारते जाएँगे और यहाँ से उसी क्रिया की पुनरावृत्ति होगी जो हम पहले कर चुके हैं। इसलिए इसके बाद यदि हम भाग देंगे तो ४२८५७१ ये ही अंक इसी क्रम से आते रहेंगे। स्थान क ख के बीच का ही क्रम फिर से प्रारंभ हो जाता है। हम चाहे जब तक भाग देते रहें, इन ही अंकों का आवर्त्तन इसी क्रम में होता रहेगा। इस प्रकार

$$\frac{१७}{७०} = .२\ ४२८५७१\ ४२८५७१\ ४२८५७१\ ४\cdots$$
$$.२\dot{४}२८५७\dot{१}$$

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि भिन्न अंकों को दशमलव के रूप में लिखने पर या तो कुछ समय बाद भाग की क्रिया पूरी हो जाती है क्योंकि शेष शून्य हो जाता है अथवा कुछ अंकों का आवर्त्तन होने लगता है। पहले के उदाहरण हैं $\frac{१}{२}$, $\frac{३}{४}$, $\frac{२}{५}$ इत्यादि और दूसरे के उदाहरण हैं $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{७}$, $\frac{१७}{७०}$, इत्यादि।

कौन-सी भिन्न संख्या आवर्त्त दशमलव होगी और कौन-सी अनावर्त्ती या सांत दशमलव, यह जानने के लिए भी एक सादा-सा नियम है। सर्वप्रथम हम भिन्न संख्या के हर के लघुतम खण्ड कर लेते हैं। यदि इन खण्डों में केवल २ और ५ ही एक या अधिक बार आए हों तो उसका दशमलव रूप अनावर्त्ती या सांत होगा। परंतु यदि इनके सिवाय अन्य कोई अंक आ गया तो उसका दशमलव रूप आवर्त्ती होगा। २ और ५ के अलावा तो अगणित अंक हैं। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसी भिन्न संख्याएँ बहुत अधिक हैं जिनका दशमलव रूप आवर्त्ती हो। सांत दशमलवों की संख्या उनकी अपेक्षा कहीं कम होगी। १ से १०० तक संख्या में आवर्त्ती और सांत दशमलव रूप देने वाले हर निम्न तालिका में दिए गए हैं। जिन अंकों को कोष्ठक में लिखा गया है, केवल वे ही सांत दशमलव संख्या देंगे; अन्य सभी से आवर्त्त दशमलव प्राप्त होगा।

(२) ३ (४) (५) ६ ७ (८) ९ (१०) ११ १२ १३ १४ १५
(१६) १७ १८ १९ (२०) २१ २२ २३ २४ (२५) २६ २७
२८ २९ ३० ३१ (३२) ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ (४०)
४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ (५०) ५१ ५२ ५३
५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ (६४) ६५ ६६
६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ (८०)
८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४
९५ ९६ ९७ ९८ ९९ (१००)

अब हम दशमलव अंकों के दो रूपों से परिचित हो चुके हैं: आवर्त्ती (जैसे .३३३...) और सांत (जैसे .७५)। क्या इनके अलावा भी कोई अन्य दशमलव हो सकता है? यहाँ केवल यह कहना मात्र पर्याप्त होता है कि हाँ ऐसे भी दशमलव अंक हो सकते हैं जो न आवर्त्ती हों और न सांत। एक उदाहरण से यह कथन स्पष्ट होगा। निम्न दशमलव अंक को देखिए :

०१, ००१, ०००१, ००००१, ०००००१, ०००...

इस अंक को लिखने की विधि है पहले एक शून्य लिखिए उसके बाद १ लिखिए, उसके बाद दो शून्यों के बाद अंक १, उसके बाद तीन शून्यों के बाद अंक १, . . . । इसी प्रकार क्रमशः चार, पांच, छः. . . शून्य लगाकर १ लिखते जाएँ तो ऊपर का अंक कहीं तक भी लिख सकते हैं। इस लिखने की विधि से यह स्पष्ट है कि यह अंक जो कुछ भी हो, न तो आवर्त्ती है और न सांत ही। इसे हम 'अनावर्त्ती सतत दशमलव' की संज्ञा देते हैं। इसके विषय में विस्तृत विचार अगले अध्याय में करेंगे।

एक अन्य प्रश्न विचारणीय है। क्या कोई ऐसी भिन्न संख्या है जिसको दशमलव रूप में परिवर्त्तित करें तो वह अनावर्त्ती सतत दशमलव हो? इसका उत्तर है 'नहीं'। कोई भी भिन्न संख्या दशमलव रूप में या तो सांत दशमलव होगी या आवर्त्त दशमलव। वह अनावर्त्त सतत दशमलव नहीं हो सकती। कारण स्पष्ट है। भिन्न संख्या को दशमलव में परिवर्त्तन करने के लिए हम उसके अंश को हर से भाग देते हैं। जब अंश की संख्या हर की संख्या से छोटी होती है जिससे इसमें हर का भाग नहीं जाता है तो हम दशमलव रख कर उसके आगे शून्य रखते जाते हैं। इस प्रकार इस भाग की क्रिया के लिए सदा अंक उपलब्ध रहते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि इस भाग देने की क्रिया में भाजक से शेष सदा कम होगा। जैसे $\frac{१७}{७०}$ को दशमलव रूप में परिवर्त्तित करने के लिए १७ में ७० का भाग देते हैं। इस क्रिया में शेष सदा ७० से कम ही होगा। ७० से भाग देने पर शेष ०, १, २, ३, . . . ६९ अर्थात् शून्य से लेकर ६९ तक की सत्तर संख्याओं में से ही एक हो सकता है। इसलिए हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यदि हम अंश को ७० से भाग देते रहें तो शेष फल सत्तर से अधिक नहीं हो सकते अर्थात् शेष का आवर्त्तन सत्तर बार भाग देने के पूर्व ही प्रारंभ हो जाएगा। वास्तव में $\frac{१७}{७०}$ में आवर्त्तन सात बार भाग देने के बाद ही प्रारंभ हो गया था।

इसी प्रकार यदि क/ख कोई भी एक भिन्न संख्या है तो क को ख से भाग देने की क्रिया में शेष सदा ही ख से कम होगा। इसलिए या तो किसी स्थल पर आकर शेष शून्य हो जाएगा अथवा शेष का आवर्त्तन होने लगेगा। शेष के आवर्त्तन का अर्थ है भजन-फल का आवर्त्तन। इसलिए उस संख्या का रूप आवर्त्त दशमलव हुआ। तात्पर्य यह है कि किसी भी भिन्न संख्या का दशमलव रूप या तो सांत दशमलव अथवा आवर्त्त दशमलव होगा। वह अनावर्त्त सतत दशमलव नहीं हो सकता है। इसलिए ये अनावर्त्त सतत दशमलव संख्याएँ किसी भिन्न को निरूपित नहीं करतीं। वह क्या है, इसे हम आगामी अध्याय में स्पष्ट करेंगे।

अब हम इसके उलटे प्रश्न पर विचार करेंगे। क्या प्रत्येक आवर्त्त दशमलव एक भिन्न संख्या के रूप में परिवर्त्तित किया जा सकता है? इसका उत्तर है 'हाँ, अवश्य'। इस परि-वर्त्तन के लिए व्यावहारिक नियम जानने के पहले हमें यह देखना होगा कि किसी दशमलव अंक को दस से गुणा करने पर क्या होता है? हमें मालूम है कि हमारे स्थान मान नियम में दस से गुणा का अर्थ है प्रत्येक अंक को बाईं ओर एक स्थान का लाभ।

१	५	३	६	३	×१०
१	५	३	६	३	×१०
१	५	३	६	३	

इस चित्र में यदि दस के गुणा के पूर्व और बाद की संख्याओं की तुलना करें तो केवल एक अंतर होगा कि गुणा के बाद दशमलव एक स्थान दाहिनी ओर हट गया। यदि एक बार और दस से गुणा करें तो दशमलव एक स्थान और दाहिनी ओर चला जाएगा। इस नियम से १०, १००, १०००, इत्यादि से किसी दशमलव संख्या में आसानी से गुणा किया जा सकता है। दस से गुणा का अर्थ है दशमलव को एक स्थान दाहिनी ओर हटा देना, सौ से गुणा का अर्थ है दो स्थान हटा देना इत्यादि। उदाहरण के लिए:

$$१,२३४.५६७८ \times १०$$
$$= १२,३४५.६७८$$
$$१२३.४५६७८ \times १०००$$
$$= १,२३,४५६.७८$$

अब आइए देखें कि .४̇५̇ का क्या अर्थ हुआ। मान लीजिए इस संख्या का मान य है। अर्थात्

$$य = .४५\ ४५\ ४५\ ४५\ ४....$$

अब यदि दोनों ओर से १०० से गुणा करें तो

$$१०० \times य = १०० \times .४५\ ४५\ ४५\ ४५\ ४..$$
$$= ४५\ .४५\ ४५\ ४५\ ४५\ ४..$$
$$= ४५ + .४५४५४५...$$

चूँकि ४५ के बाद .४५४५४५... पुनः वही संख्या प्राप्त हुई है, जिसका मान हम प्रारंभ में जानना चाहते थे

$$१००य = ४५ + य$$

अथवा, $१००य - य = ४५$

अथवा, $९९य = ४५$

अथवा, $य = \frac{४५}{९९}$

हम देख सकते हैं कि यदि एक सांत दशमलव .४५ को भिन्न संख्या के रूप में लिखना चाहते तो उसका भिन्नांक रूप होता $\frac{४५}{१००}$ परंतु ४५ में आवर्त्तन होने से .४̇५̇ भिन्न संख्या को दशमलव रूप में परिवर्त्तन के लिए ४५ को १०० के स्थान पर ९९ से भाग देना पड़ा। $.\dot{४}\dot{५} = \frac{४५}{९९}$। इससे आवर्त्त दशमलव को भिन्नांक रूप में लिखने के लिए एक सरल-सा नियम प्रतिपादित होता है। यदि आवर्त्तन दशमलव बिन्दु के तत्काल बाद प्रारंभ हो जाता है तो अंश में आवर्त्तन होने वाली राशि लिख दीजिए और हर में उतने ही बार अंक '९' लिख दीजिए। यही इच्छित भिन्नांक होगा। उदाहरण के लिए

$.\dot{३}२\dot{७} = \frac{३२७}{९९९}$

अथवा

$.\dot{४}३५\dot{२} = \frac{४३५२}{९९९९}$

परंतु कुछ आवर्त्ती दशमलव संख्याएँ ऐसी भी हैं जिनमें दशमलव के ठीक बाद कुछ अंक आवर्त्त नहीं होते जैसे .४५ ३५ ३५ ३५ ३. . . में ४५ आवर्त्तित नहीं हो रहा है। इस प्रकार की संख्याओं के परिवर्त्तन के लिए नियम की स्थापना हम यहाँ नहीं करेंगे। उसके लिए नियम का उल्लेख मात्र करेंगे। नियम की स्थापना पाठक स्वयं कर सकता है। वह एक अच्छा मनोविनोद भी होगा। यदि हमें $.३१४\dot{७}३\dot{८}$ को भिन्न रूप में लिखना है तो क्रिया निम्न प्रकार होगी :

$$.३१४\ ७३८\ ७३८\ ७३८\ ७\ldots = .३१४\dot{७}३\dot{८}$$

$$= \frac{३,१४,७३८ - ३१४}{९,९९,०००}$$

$$= \frac{\overset{\overset{४३६७}{\cancel{३६३०३}}}{\cancel{३१४४२४}}}{\underset{\underset{१३८७५}{\cancel{१२४८७५}}}{\cancel{९९९०००}}}$$

ऊपर सबसे पहले संख्या को आवर्त्त दशमलव लगाकर लिख लो। फिर अंश में इस पूरी संख्या को अर्थात् ३,१४,७३८ को लिख देते हैं। इसमें से अनावर्त्ती भाग अर्थात् ३१४ को घटा दीजिए। यह इच्छित संख्या का अंश हो गया। हर को लिखने के लिए जितने अंकों का आवर्त्तन होता हो उतने बार पहले '९' लिखिए। ऊपर की संख्या में तीन अंकों का आवर्त्तन हो रहा है इसलिए ९९९ लिखा। और उसके बाद उतने शून्य लगा दीजिए जितने अंकों का आवर्त्तन नहीं होता हो। इस संख्या में तीन अंकों का आवर्त्तन नहीं होता है इसलिए तीन शून्य लगा दिए जिससे इच्छित संख्या का हर ९,९९,००० हो गया। इस प्रकार संख्या $\frac{३,१४,४२४}{९,९९,०००}$ प्राप्त हुई। इसके हर और अंश में समान गुणन खण्डों को काट देने पर सरलतम रूप में यह भिन्न अंक $\frac{४३६७}{१३८७५}$ हुआ जो इच्छित संख्या है।

कुछ और उदाहरण इस प्रकार हैं :

$$.३५५५५\ldots = .३\dot{५} = \frac{३५ - ३}{९०}$$

$$= \frac{३२}{९०} = \frac{१६}{४५}$$

$$.१२३७३७३७३\ldots = .१२\dot{३}\dot{७} = \frac{१२३७ - १२}{९९००}$$

$$= \frac{१२२५}{९९००} = \frac{४९}{३९६}$$

अध्याय ८

संख्या संकल्पना का विस्तार – २

बिन्दुओं की सघन बस्ती में भी कुछ छिद्र

अभी तक हमें संख्या संकल्पना को विस्तृत करने की तीन बार आवश्यकता हुई थी। इन विभिन्न संख्या समुदायों को एक सरल रेखा पर बिन्दुओं द्वारा निरूपित कर हमने आवश्यकतानुसार सुस्पष्ट भी किया था। संक्षेप में ये तीन क़दम निम्नांकित थे :

सरल रेखा पर निरूपण

१. (क) गणना की आवश्यकता तथा गणना अथवा प्राकृतिक अंकों की रचना
१, २, ३, ४, . . .

(ख) लिखने में स्थान मान का उपयोग और शून्य का आविष्कार ०, १, २, ३, ४, . . . धनात्मक पूर्णांक संख्या
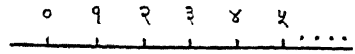
२. जोड़ने की क्रिया के लिए धनात्मक पूर्णांक संख्या का पर्याप्त होना; परंतु घटाना सदा संभव नहीं
४ + ? = १ अथवा
१ – ४ = ?
प्रश्न के उत्तर की चेष्टा में ऋणात्मक पूर्णांकों की स्थापना।
. . ., –४, –३, –२, –१, ०, १, २, ३, ४, ५, . . .
पूणाक सख्या समुदाय
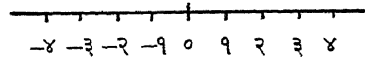
गुणा की क्रिया के लिए पूर्णांक संख्या
समुदाय का पर्याप्त होना परंतु भाग
देना सदा संभव नहीं।

४ × ? = ३ अथवा

३ ÷ ४ = ?

प्रश्नों के उत्तर की चेष्टा में भिन्न
अंकों की स्थापना।

. . —२ . . $\frac{३}{२}$ . . —१ . . $\frac{१}{२}$ . . ० . . $\frac{१}{२}$ . . $\frac{३}{२}$ . . २ . .

परिमेय संख्या समुदाय

. . —२ —$\frac{३}{२}$ —१ —$\frac{१}{२}$ ० $\frac{१}{२}$ १ $\frac{३}{२}$ २ $\frac{५}{२}$ . . .
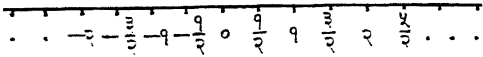
इससे यह स्पष्ट है कि संख्या के विकास में अब तक हम ऐसी स्थिति पर पहुँच चुके हैं जहाँ जोड़ना, घटाना, गुणा और भाग ये चारों क्रियाएँ हम निस्संकोच कर सकते हैं। अथवा यदि इसी को थोड़ी गणितीय भाषा में कहा जाए तो निम्न एक-घात समीकरण (अर्थात् जिसमें अज्ञात राशि य की घात एक है) का हल सर्वदा संभव है :

$$क\,य + ख = ०$$

जिसमें क और ख कोई भी दो पूर्णांक हैं।

इस समीकरण में य का मूल्य सरलतापूर्वक निकल सकता है :

$$य = -\frac{ख}{क}$$

$-\frac{ख}{क}$ स्वयं एक परिमेय संख्या है। वास्तव में यदि इस समीकरण में क और ख कोई दो परिमेय संख्याएँ हों तब भी कोई अंतर नहीं होगा क्योंकि उन्हें पूर्णांक बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए निम्न समीकरण लीजिए

$$\frac{३}{५}\,य + \frac{७}{४} = ०$$

यदि इस समीकरण में हम २० का गुणा कर दें तो एक नया समीकरण प्राप्त होगा

$$१२\,य + ३५ = ०$$

इस समीकरण में भिन्नांकों के स्थान पर पूर्णांक हैं। परंतु वस्तुतः दोनों समीकरण एक ही हैं और दोनों में अज्ञात राशि य का वही मूल्य $\frac{३५}{१२}$ प्राप्त होता है। इसीलिए $क\,य + ख = ०$ समीकरण में क और ख को परिमेय मानना अथवा पूर्णांक मानना एक ही बात है। सरलता के लिए हम क, ख, . . . इत्यादि को सदा पूर्णांक ही मानेंगे।

दूसरी ओर सरल रेखा पर संख्या समुदायों का बिन्दुओं द्वारा निरूपण करते समय हम पूर्णांक समुदाय की छितरी बस्ती से परिमेय संख्या के अति घने आवास में पहुँच गए। वह कितना घना है, इसकी कल्पना करना भी संभव नहीं। चाहे कितने ही समीप अवस्थित दो बिन्दु क्यों न ले लें, उनके बीच अगणित अन्य परिमेय संख्याओं को निरूपित करने वाले बिन्दु मिल ही जाएँगे। इन्हीं बिन्दुओं की घनी बस्ती में बेचारा खरगोश फँस गया था और प्रयास करने पर भी कछुए के आगे नहीं निकल पाया था।

इस प्रकार हम असंख्य परिमेय संख्यांकों को सरल रेखा पर निरूपित कर चुके हैं। प्रत्येक छोटे से छोटे भाग में भी असंख्य परिमेय संख्यांक हैं और उन्हें निरूपित करने वाले असंख्य संख्या-बिन्दु। जहाँ तक संख्याओं का प्रश्न है, अभी तक हमारी परिकल्पना परिमेय संख्यांकों तक ही सीमित है, हम किसी अन्य संख्या की फिलहाल कल्पना भी नहीं कर सकते। प्रत्येक परिमेय संख्यांक के लिए सरल रेखा पर एक निश्चित बिन्दु है। हम चाहे कोई भी परिमेय संख्यांक क्यों न ले लें उसका संवादी बिन्दु हम ढूँढ़ निकाल सकते हैं। परंतु अब प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकार हम सरल रेखा के सभी बिन्दुओं को नाम दे सके हैं अथवा अभी भी कुछ छूट गए हैं। हम कह सकते हैं कि प्रतीत तो ऐसा नहीं होता; जब किसी छोटे से छोटे स्थल पर भी असंख्य संख्यांक निरूपित हो चुके हैं तब साधारण कामकाज की दृष्टि से तो कोई कमी प्रतीत नहीं होती है। परंतु वास्तविकता ऐसी नहीं है। कुछ बिन्दु अभी भी अछूते बच गए हैं जो किसी भी परिमेय संख्या को निरूपित नहीं करते हैं। आइए, इनकी खोज की जाए।

कारीगर समकोण कैसे बनाता है ?

गणित से हटकर हम एक साधारण कारीगर के पास चलेंगे। घर की नींव खोदने के लिए लाइन डालने में यह आवश्यक है कि लम्बाई-चौड़ाई की लाइनें एक दूसरे पर समकोण बनाएँ नहीं तो कमरे टेढ़े-मेढ़े हो जाएँगे। इसके लिए कारीगर एक रस्सी लेकर एक ओर से ५ गज, फिर ४ गज और फिर ३ गज पर गाँठ बाँध लेता है। ये गाँठें चित्र में ख, ग और घ बिन्दुओं पर लगी हुई हैं। क इस रस्सी का एक कोना है। इसके बाद
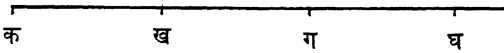
वह क और घ को मिला देगा और रस्सी को क ख ग एक त्रिभुज का आकार दे देगा। इस त्रिभुज में ग एक समकोण होगा और वह कारीगर मकान की दो दीवारों के लिए क ग और ग ख दिशाएँ चुन सकता है।
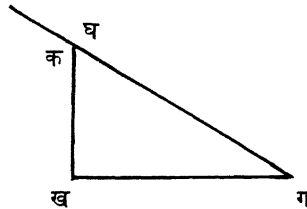
यह ३, ४ और ५ इन तीन संख्याओं में क्या गुण है कि उनकी सहायता से एक समकोणीय त्रिभुज बन जाता है? वास्तव में यह समकोणीय त्रिभुज की भुजाओं की लम्बाई की एक विशेषता है जिसे हम स्कूल में पाइथागोरस प्रमेय के नाम से पढ़ते हैं। उसके अनुसार किसी भी समकोणीय त्रिभुज की दो भुजाओं के वर्गों का योग उस त्रिभुज के कर्ण के वर्ग के बराबर होता है। यदि क ख ग कोई भी समकोणीय त्रिभुज है और उसकी

भुजाओं की लम्बाई य, र और ल है तो इस प्रमेय से हम जानते हैं कि
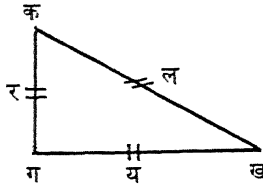
$$य^2 + र^2 = ल^2$$

अब देखिए कि ३, ४, ५ संख्याओं में यह गुण विद्यमान है :

$$३^2 + ४^2 = ५^2$$

इस प्रकार की और भी अनेक संख्याएँ हैं, जैसे :

$$५^2 + १२^2 = १३^2$$

$$६^2 + ८^2 = १०^2$$ इत्यादि।

यद्यपि समकोणीय भुजाओं के इस गुण की प्रस्थापना करने का श्रेय पाइथागोरस को दिया जाता है, पर भारत में उसके भी बहुत पूर्व इसका ज्ञान था। अहं को हेय मानने की भारतीय परंपरा के कारण किसने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया, यह तो नहीं मालूम, पर सर्वप्रथम इसका उल्लेख शुल्व ग्रंथ में मिलता है। डॉ० व्रजमोहन ने इसीलिए इसे शुल्व-प्रमेय का नाम दिया है और हम भी उसे इसी नाम से पुकारेंगे।

पाइथागोरस की उलझन

अब मान लीजिए कि अपनी सरल रेखा को आधार मान कर उस पर हम एक समकोणीय त्रिभुज बनाते हैं। इससे '०' के स्थान को क मानें और १ के स्थान को ग। ग पर एक लम्ब कोण खींचें और ख ग को क ग के बराबर बनाएँ। इसके बाद ख क को मिला दें। इस प्रकार क ख ग एक त्रिकोण बन जाएगा जिसमें क ग = ख ग = १। अब
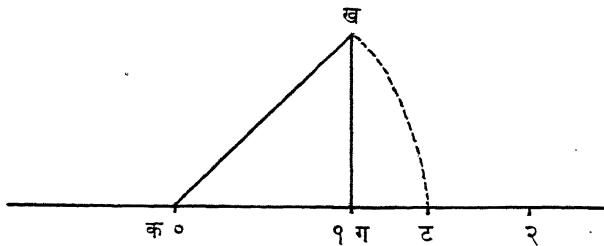
प्रश्न है कि क ख की क्या लम्बाई है? यदि क ख के बराबर की लम्बाई नाप कर सरल रेखा पर एक बिन्दु लगाएँ तो वह १ और २ के बीच में एक बिन्दु पर होगा। इस प्रकार क ख की लम्बाई सरल रेखा पर क ट के रूप में निरूपित हो गई है।

हमें शुल्व प्रमेय से विदित है कि समकोणीय त्रिभुज क ख ग में क ख का वर्ग क ग और ख ग दोनों के वर्गों के जोड़ के बराबर है

$$क ख^2 = क ग^2 + ख ग^2$$

क ग और ख ग की लम्बाई हम जानते ही हैं। दोनों ही भुजाएँ १ के बराबर हैं। क ख की लम्बाई हमें नहीं मालूम है। मान लीजिए क ख = य।

$$\text{इसलिए } य^2 = १^2 + १^2 = १ + १ = २$$

$$\text{अथवा } य = \sqrt{२} \text{ (} \sqrt{२} \text{ अर्थात् वह संख्या जिसका वर्ग २ हो)}$$

अर्थात् क ख की लम्बाई एक ऐसी राशि य है जिसका वर्ग २ होता है। यह एक निश्चित लम्बाई है। इस लम्बाई को निरूपण करने वाला बिन्दु भी हम सरल रेखा पर अंकित कर चुके हैं। अब समस्या है यह जानने की कि वह कौन-सी संख्या है जिसका वर्ग २ है। हमारी जान-पहचान का संख्या समुदाय अब तक केवल परिमेय संख्या समुदाय ही है। प्रश्न है कि क्या यह नई संख्या उस समुदाय की एक सदस्या है ?

हमने परिमेय संख्या को दो पूर्णांक संख्याओं के भाग के रूप में परिभाषित किया था। कोई भी परिमेय संख्या एक भिन्न-संख्या होती है और उसका रूप है $\frac{क}{ख}$ जिसमें क और ख कोई भी दो पूर्णांक हैं (परंतु इसमें ख शून्य नहीं है)। अर्थात् यदि हमारे त्रिकोण की भुजा की लम्बाई को निरूपित करने वाली राशि य एक परिमेय संख्या है तो उसका रूप $\frac{क}{ख}$ का होना चाहिए। परंतु हम पहले अध्याय (पृष्ठ ८-९) में देख चुके हैं कि ऐसा मानने से हम परस्पर विरोधी तथ्यों के चक्कर में पड़ जाते हैं। हम मान कर चलते हैं कि क और ख में कोई समान गुणन खण्ड नहीं है, पर $\sqrt{२}$ को $\frac{क}{ख}$ का रूप मानने से तर्क के आधार पर क और ख दोनों में २ एक समान गुणन खण्ड के रूप में प्रस्तुत हो जाता है। परंतु समान गुणन खण्डों का न होना और होना दोनों तथ्य एक साथ सत्य नहीं हो सकते। इसलिए निष्कर्ष यही है कि य के जिस रूप को मान कर हम चले थे उसी में भ्रांति है। अर्थात् य एक परिमेय संख्या नहीं हो सकती है।

इस प्रकार हम पुनः उसी स्थिति में फँस गए जहाँ दो बार पहले भी फँस चुके हैं। पहली बार घटाने की समस्या को लेकर और दूसरी बार भाग की समस्या के साथ। उन दोनों अवस्थाओं में हमें अपनी संख्या संकल्पना को विस्तृत करना पड़ा था—पहले ऋणात्मक पूर्णांक और फिर भिन्न संख्या। अब स्थिति ऐसी है जिसमें हमें अपने परिमेय संख्या परिवार को निरूपित करने वाले बिन्दुओं की असंख्य और सघन बस्ती में भी एक खाली स्थान मिल ही गया जिसे उस संख्या समुदाय में निरूपित करने वाला कोई संख्यांक है ही नहीं। इस बिन्दु के लिए हमें एक नई संख्या की स्थापना करनी पड़ेगी। क्योंकि यह संख्या परिमेय नहीं है, हम उसे अपरिमेय (अर्थात् जो परिमेय नहीं है) संख्या की संज्ञा दे सकते हैं।

अपरिमेय क्या है ?

अपरिमेय संख्या क्या है ? अभी तक हम यही कह सकते हैं कि जो परिमेय न हो।

पर इससे तो बात कोई स्पष्ट नहीं हुई। हमने ऊपर के समीकरण में हल निकाला य $= \sqrt{२}$।
पर यह भी कोई संतोषजनक रूप नहीं क्योंकि $\sqrt{२}$ भी तो 'वह संख्या जिसका वर्ग २ हो' को छोटे में लिखने की एक विधि मात्र है। हमने जहाँ से प्रारंभ किया, वहीं पर वापिस आ गए। ढूँढ़ने चले थे वह संख्या जिसका वर्ग २ हो और दूसरे रूप में यह लिख कर कि 'वह संख्या जिसका वर्ग २ हो अर्थात् $\sqrt{२}$' हम संतुष्ट हो गए मानो हमारी समस्या हल हो गई।

हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं कि परिमेय संख्या को यदि दशमलव रूप में लिखा जाए तो दो रूप हो सकते हैं या तो सांत दशमलव जैसा $\frac{१}{२} = .५$ के संबंध में अथवा आवर्त्त दशमलव जैसा $\frac{१}{३} = .\dot{३}$ के संबंध में। परंतु हमने एक उदाहरण और भी देखा था जो न आवर्त्त दशमलव ही है और न सांत दशमलव ही। वह था :

.१, ०१, ००१, ०००१, ००००१, ०००००१, ००...

यह एक ऐसी संख्या है जो अवश्य ही एक निश्चित मान रखती होगी, पर वह मान क्या है, हम नहीं कह सकते। हाँ, यह अवश्य है कि हम इसके सन्निकट अथवा लगभग मूल्य को जितनी भी पूर्णता से लिखना चाहें, लिख सकते हैं। एक लक्ष अंश, कोटि अंश, अथवा अर्बुदांश तक की ग़लती न चाहें तो वह भी संभव है, ऊपर लिखी हुई संख्या एक सहस्र शंख अंश तक ठीक है। परंतु यह असंभव है कि हम उसका पूर्णरूपेण सही मूल्य क्या है इसे काग़ज़ पर दशमलव रूप में लिख सकें। हम संसार में उपलब्ध पूरा काग़ज़ उपयोग क्यों न कर लें, तब भी इस संख्या के असंख्य अंक लिखने बाकी रह जाएँगे। इसी कठिनाई को दृष्टि में रखते हुए इसे अपरिमेय कहा गया है।

यही हाल है हमारे $\sqrt{२}$ का, जिसकी वास्तविक प्रकृति हम जानना चाहते हैं। काग़ज़ पर हम इसका बिन्दु अनुमानित कर सकते हैं जैसा ऊपर किया है, पर हज़ारों और लाखों दशमलव अंक लिखने पर भी हम उसका ठीक मूल्य नहीं लिख पाएँगे। हार मान कर गणितज्ञ ने इसे $\sqrt{२}$ ही लिख दिया और कह दिया कि सुनिश्चित नियमों के अनुसार हम जब चाहें इसके अच्छे से अच्छे सन्निकट अथवा लगभग मूल्य निकाल सकते हैं। इसके लिए तालिकाएँ भी बनाई गई हैं और आजकल परिकलन यंत्र तो कमाल ही कर दिखाते हैं। पचास दशमलव अंकों तक भी इनके मूल्य तालिकाओं में मिल जाएँगे। पर यह भी सन्निकट मान ही है, निश्चित मान नहीं।

मृत्यु-दण्ड और संख्याओं का समापवर्त्तक

इस 'विचित्र' संख्या की प्रकृति का पता सबसे पहले पाइथागोरस के अनुयायियों को लगा। उसके पूर्व सभी का विश्वास था कि किन्हीं दो संख्याओं का एक समापवर्त्तक अवश्य होता है। जैसे दो संख्याएँ ४ और ६ का समापवर्त्तक है २। यदि एक कपड़ा ४ गज़ लम्बा है और दूसरा ६ गज़ और यदि हमारे पास एक दो गज़ा माप हो तो हम इन दोनों कपड़ों को उससे माप सकते हैं। इसी प्रकार $\frac{१}{२}$ और $\frac{३}{४}$ का समापवर्त्तक $\frac{१}{४}$ है। $\frac{१}{४}$ गज़ के टुकड़े से $\frac{१}{२}$ और $\frac{३}{४}$ दोनों ही टुकड़ों को नापा जा सकता है। और $\frac{३}{७}$ तथा

$\frac{२}{३}$ का समापवर्त्तक $\frac{१}{२१}$ होगा। इन दोनों संख्याओं को जिस एक ही माप से नापा जा सकता है वह है $\frac{१}{२१}$। हम देख सकते हैं कि किन्हीं भी परिमेय संख्याओं का समापवर्त्तक निकाला जा सकता है। समापवर्त्तक का अर्थ है समान अपवर्त्तक (काटने वाला)। स्कूल में हम लघुतम समापवर्त्तक तथा महत्तम समापवर्त्तक निकालना सीखते हैं। उस छोटी से छोटी संख्या को जिससे दो संख्याओं को समान रूप से काट सकें, हम महत्तम समापवर्त्तक कहते हैं। और महत्तम समापवर्त्तक निकालने में हम उसी राशि की खोज करते हैं।

परंतु $\sqrt{२}$ एक विचित्र संख्या है जिसका परिमेय संख्याओं से अपवर्त्तक प्राप्त करना असंभव है क्योंकि उसे $\frac{क}{ख}$ रूप में नहीं लिखा जा सकता। इस तथ्य ने यूनानियों की एक प्रिय मान्यता को कड़ी ठेस पहुँचाई क्योंकि समापवर्त्तन को वे संख्याओं का दैवी गुण मानते थे। कहा जाता है कि उन्होंने इस सनसनीजनक खोज को छुपाने का बहुत प्रयास किया। अंतरंग सभा के बाहर इस रहस्य के उद्‌घाटन करने वाले के लिए उन्होंने मृत्यु-दण्ड तक देने की धमकी दी थी। ज्ञात नहीं कि इस रहस्य के उद्‌घाटन के लिए किसी को यह दण्ड दिया गया या नहीं।

क्या संख्याएँ बहरी भी होती हैं ?

आज इस प्रकार की संख्याओं को लिखने की कई विधियाँ तथा उनके कई नाम प्रचलित हैं। इनकी भी एक मनोरम कहानी है। यदि हम ३ को भुजा मान कर एक वर्ग बनाएँ तो उसका क्षेत्रफल ९ होगा।

इस प्रकार ९ क्षेत्रफल वाले वर्ग की भुजा ३ हुई। इसी कारण यूनानी गणितज्ञ इस प्रकार की संख्या को 'वर्ग संख्या' की 'भुजा' कहा करते थे। इस प्रकार से ३ को वर्ग संख्या ९ की 'भुजा' कहा करते थे। अथवा ४ को वर्ग संख्या १६ की 'भुजा' कहा करते थे। परंतु जब यूनान में भारतीय अंक पहुँचे तब उन्होंने धीरे-धीरे ज्यामिति पर आधारित इस वर्णन को छोड़ दिया। मूल में से जैसे एक पौधा उगता है—उसी प्रकार अपने मूल में से वर्ग संख्या के बढ़ने की कल्पना उन्होंने की। इस प्रकार वे वर्ग संख्या १६ को अपने 'मूल' ४ में से विकसित होने की कल्पना करते थे। हम भी ४ को १६ का वर्गमूल कहते हैं। यह 'मूल' का विचार भारत की ही देन है।

लैटिन में इस 'मूल' शब्द का अनुवाद 'रेडिक्स' हुआ जिसका पहला अक्षर है 'आर'

(r)। इस प्रकार '१६ का मूल' को r१६ = ४ लिखा जाता रहा। यही r धीरे-धीरे √ हो गया और इसी का अब हम वर्गमूल के चिह्न के रूप में उपयोग करते हैं। √१६ = ४। और '२ के वर्गमूल' को √२ रूप में लिखते हैं।

यूनानियों ने $\frac{२}{३}$, $\frac{३}{४}$ इत्यादि परिमेय संख्याओं को 'लॉगॉस' नाम दिया था। 'लॉगॉस' का अर्थ होता है 'एक शब्द' अथवा 'एक शब्द में निहित विवेक'। यह नाम इसलिए दिया है कि ये संख्याएँ ऐसी हैं जिनको हम अपनी बुद्धि से समझ सकते हैं। और क्योंकि √२, √३ इत्यादि संख्याएँ बुद्धि विवेक से समझी नहीं जा सकती थीं उसे 'लॉगॉस' का उल्टा 'अलॉगॉस' कहा। परंतु 'अलॉगॉस' का दूसरा शब्दार्थ 'एक शब्द' का उल्टा अर्थात् 'बिना एक शब्द' भी था। इसका वास्तविक अर्थ न समझ कर जब किसी ने उसे अरबी में अनुवाद किया तब उसका पर्याय अरबी का शब्द 'बहरा' हो गया। अरब गणितज्ञ अल्-ख्वोआरिज़्मी ने इसलिए √२, √३ संख्याओं को 'बहरी' संख्या कह कर वर्णित किया। जब अल्-ख्वोआ-रिज़्मी की लिखी पुस्तक का तीन सौ वर्ष बाद लैटिन में छेरोदो ने अनुवाद किया तब इन बहरी संख्याओं को लैटिन में भी बहरी ही कहा गया और उसके लिए लैटिन शब्द 'सर्डस' अर्थात् बहरा उपयोग किया गया। आज भी अंग्रेज़ी में √२, √३ संख्याओं को 'सर्ड' कहते हैं।

यह है अनुवाद की महिमा!

परिमेय और अपरिमेय

हम अपने मूल प्रश्न से इतिहास और अनुवाद के विषयातिरेक में पहुँच गए। √२ के प्रश्न को लेकर हमें कम से कम एक संख्या ऐसी मिली है जो परिमेय नहीं है और जिसके लिए हमें अपनी संख्या-संकल्पना का विस्तार करना पड़ा। 'कम से कम एक' पढ़ कर हम चौंक सकते हैं, क्योंकि पिछले अध्याय में इसी को लेकर हमने असंख्य परिमेय भिन्न अंकों को छोटे से छोटे स्थान में भरा पाया। वास्तव में अपरिमेय संख्या के विषय में भी वही बात ठहरती है। √२ एक अकेली ही अपरिमेय संख्या नहीं है। अपरिमेय संख्याएँ भी अगणित हैं। न केवल वे अगणित हैं, पर किन्हीं भी दो परिमेय संख्याओं के बीच हमें एक अगणित अपरिमेय संख्या-परिवार मिलता है। अर्थात् परिमेय संख्या की घनी बस्ती में एक और घनी बस्ती अपरिमेय संख्याओं की भी है। अगले अध्याय में हम देखेंगे कि अपरिमेय संख्याओं की बस्ती परिमेय संख्याओं की बस्ती से भी अधिक घनी है। हमारा खरगोश तो परिमेय संख्या बिन्दुओं के बीच फँस गया था; यदि हम अपरिमेय संख्या बिन्दु उसमें और मिला दें तब तो उसके निकल भागने की संभावना अति क्षीण हो जाएगी। बेचारा खरगोश!

हम अपरिमेय संख्या का एक गुण तो देख ही चुके हैं: दशमलव रूप में वह अनावर्त्त सतत दशमलव के रूप में ही लिखी जा सकती है। सांत और आवर्त्त दशमलव तो परिमेय संख्या परिवार के सदस्य हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं कि गणितज्ञों ने इस अगणित अपरिमेय संख्या सदस्यों के परिवार का और अन्वेषण न किया हो। वास्तव

में बिन्दुओं में जाति-उपजाति और उप-उपजातियों का जिस प्रकार लगभग न समाप्त होने वाला वर्गीकरण है, उसी प्रकार अपरिमेय संख्या परिवार में भी अनेक कुनबे हैं जिनसे हम थोड़ा परिचय यहाँ करेंगे।

अपरिमेय में भी उपभेद

पहला कुनबा इस परिवार में इन 'बहरी' संख्याओं का है जिन्हें करणी भी कहते हैं। करणी शब्द कर्ण से बना है जो एक समकोणीय त्रिभुज में समकोण के सामने की भुजा होती है। वर्ग संख्याओं को छोड़ अन्य किसी भी पूर्णांक का वर्गमूल पूर्णांक संख्या नहीं होगा। इसलिए वे सभी संख्याएँ करणी होंगी। ये हैं—$\sqrt{२}$, $\sqrt{३}$, $\sqrt{५}$, $\sqrt{६}$, $\sqrt{७}$, $\sqrt{८}$, $\sqrt{१०}$, . . . । इन संख्याओं को ज्यामीतीय ढंग से प्रस्तुत करने का अत्यंत सरल और मनोरंजक तरीका है। पहले एक समकोणीय समद्विबाहु त्रिभुज बनाइए जैसा नीचे बना है। उसका कर्ण $\sqrt{२}$ होगा। इस क ग कर्ण के ग बिन्दु पर एक समकोण बनाइए और ग घ भुजा को १ लम्बाई का खींचिए। क घ को मिला दीजिए। हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि क घ $= \sqrt{३}$।
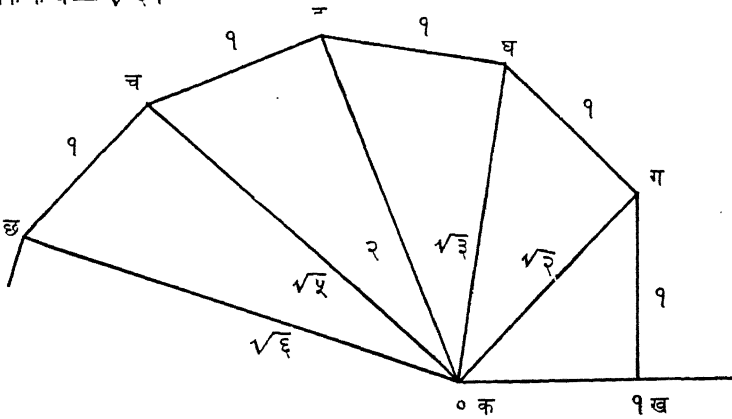
इसी पर पुनः कर्ण क घ के घ बिन्दु पर एक समकोण बनाइए और घ ङ को १ लम्बाई का बनाइए। क ङ को मिला दीजिए। क ङ $= \sqrt{४} = २$। इसी प्रकार हम क्रम से $\sqrt{५}$, $\sqrt{६}$, $\sqrt{७}$ इत्यादि सभी करणी संख्याओं को सरल रेखाओं द्वारा निरूपित करते जा सकते हैं।

पुरानी समस्या—नया रूप

$\sqrt{२}$ का अध्ययन हम अभी तक ज्यामितीय राशि के रूप में करते रहे जिसे अब से दो हज़ार वर्ष से भी अधिक हुए प्रथम बार सुलझाने का प्रयास किया गया। अब यदि हम इन ज्यामितीय आकृतियों का सहारा छोड़ दें तो क्या होगा ? हमारी मूल समस्या

है कि वह कौन-सी संख्या है जिसका वर्ग २ होता है अथवा यों कहें कि हम निम्न समीकरण में य का मूल्य जाना चाहते हैं :

$$य^{२} = २$$

इसी समीकरण को $य^{२} - २ = ०$ रूप में भी लिख सकते हैं। वास्तव में, अन्य करणी-संख्याओं का निर्धारण भी इसी प्रकार के समीकरणों में अज्ञात राशि य के हल की खोज है। जैसे $\sqrt{३}$ के लिए समीकरण है $य^{२} - ३ = ०$, $\sqrt{५}$ के लिए $य^{२} - ५ = ०$, . . . इत्यादि।

इसके पूर्व कि हम इन समीकरणों के विषय में आगे विचार करें, यह अच्छा रहेगा कि हम परिमेय संख्या से संबंधित समीकरण को एक बार फिर ध्यानपूर्वक देखें। यह समीकरण है :

$$क\,य + ख = ०$$

जिसमें य अज्ञात राशि है तथा क और ख कोई भी दो पूर्णांक हैं। इस समीकरण का हल है :

$$य = -\frac{ख}{क}$$

इसमें य स्वयं भी एक परिमेय संख्या ही है। इस प्रकार एक एक-घातीय समीकरण का हल सदा परिमेय संख्या परिवार में संभव हो सका है। ध्यान रहे कि इसी समीकरण के हल करने के प्रयास में हमें अपनी संख्या-संकल्पना को दो बार विस्तृत करना पड़ा था।

अब $य^{२} - २ = ०$ अथवा $य^{२} - ५ = ०$, ये समीकरण एक-घातीय नहीं हैं। यहाँ अज्ञात राशि का अधिकतम घात दो है, इसलिए हम इस समीकरण को द्वि-घात समीकरण कहते हैं। सर्वाधिक व्यापक द्वि-घात समीकरण का रूप निम्न होगा :

$$क\,य^{२} + ख\,य + ग = ०$$

जिसमें क, ख, ग कोई भी पूर्णांक संख्याएँ हैं तथा य एक अज्ञात राशि है। इस व्यापक समीकरण का अध्ययन इस स्थल पर विषयातिरेक होगा। हम अपनी वर्त्तमान समस्या से संबंधित कुछ द्वि-घात समीकरणों पर ही अभी ध्यान देंगे।

हम $य^{२} - २ = ०$ का हल ढूँढ़ रहे हैं। इसमें हमें कठिनाई हो रही है। परंतु यह कठिनाई सभी द्वि-घात समीकरणों के हल में नहीं पड़ती है। कुछ द्वि-घात समीकरणों का हल तो हमें पूर्णांकों में मिल जाता है, जैसे :

$य^{२} - ४ = ०$ का हल है $य = +२$ अथवा -२

अर्थात् २ और -२ ऐसी संख्याएँ हैं जिनका वर्ग ४ है। कुछ द्वि-घात समीकरणों के लिए हमें भिन्नांकों की आवश्यकता होती है, जैसे :

$$९\,य^{२} - ४ = ०$$

इसका हल $+\frac{२}{३}$ तथा $-\frac{२}{३}$ है अर्थात्

$$९\left(\frac{२}{३} \times \frac{२}{३}\right) - ४ = ०$$

$$\frac{३ \times ३ \times २ \times २}{३ \times ३} - ४ = ४ - ४ = ०$$

परंतु कुछ ऐसे समीकरण आते हैं जिनके हल हमें परिमेय संख्या परिवार में नहीं मिलते।

जैसे $य^2 - २ = ०$ अथवा $य^2 - ३ = ०$ इत्यादि।

इस प्रकार कुछ द्वि-घात समीकरणों के हलों के लिए हमें परिमेय संख्या परिवार के बाहर जाना होता है। इसलिए संख्या-संकल्पना को और भी अधिक विस्तृत करना आवश्यक है। अपरिमेय संख्याओं को संख्या परिवार में सम्मिलित करने से कुछ समस्या तो हल होती है जैसे $य^2 - २ = ०$ इत्यादि की। परंतु अभी हम यह नहीं कह सकते कि सभी द्वि-घात समीकरणों का हल हम इस अपरिमेय-संख्या परिवार में प्राप्त कर सकते हैं अथवा नहीं। उदाहरण के लिए एक समीकरण लीजिए :

$$य^2 + २ = ० \text{ जिसका अर्थ है } य^2 = -२$$

हमें कोई ऐसी संख्या नहीं मालूम जिसका वर्ग किया जाए तो वर्गफल —२ हो। हम जानते हैं $\sqrt{२} \times \sqrt{२} = २$ तथा $(-\sqrt{२}) \times (-\sqrt{२}) = २$। '—' और '—' का गुणनफल '+' होता है, इस प्रश्न पर हम कुछ समय बाद विचार करेंगे। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि कुछ द्वि-घात समीकरणों का हल हमें अपरिमेय संख्या परिवार में भी नहीं मिलता है।

अभी तक हम अपरिमेय परिवार में करणी संख्याओं से ही परिचित हुए हैं। क्या कुछ अन्य प्रकार की अपरिमेय संख्याएँ भी हैं ? आइए, इस लोक में थोड़ा और भ्रमण करें।

एथेंस की महामारी और २ का घन फल

प्रश्न है कि यदि एक त्रि-घात समीकरण हो तो क्या उसके हल के लिए हमें किसी अन्य संख्या परिवार का आश्रय लेना होगा ? एक सरलतम त्रि-घात समीकरण का रूप होगा

$$य^3 = घ$$

जिसमें घ एक पूर्णांक है। यदि $घ = १$ तो इस समीकरण का रूप $य^3 = १$ हो जाता है। हम जानते हैं कि इसका हल है $य = १$ क्योंकि $१ \times १ \times १ = १$। यदि $घ = ८$ तो समीकरण होगा $य^3 = ८$ और इसका हल हम $य = २$ निकाल सकते हैं। ८ का घनफल २ होता है अथवा यह कहा जा सकता है कि $२ \times २ \times २ = ८$।

परंतु १ और ८ के बीच हम २, ३, ४, ५, ६, ७ सभी अन्य पूर्णांकों को छोड़ गए। देखें, वह कौन-सी संख्या है जिसका घनफल २ है। अर्थात् हम यह जानना चाहते हैं कि निम्न समीकरण का क्या हल है :

$$य^3 = २$$

हमें अभी इसका हल नहीं मालूम है।

$य^2 = २$ का हल तो हमने ज्यामिति में शुल्व प्रमेय का उपयोग कर निकाल लिया था, पर क्या इस त्रि-घात समीकरण का हल भी ज्यामिति में संभव है? यह प्रश्न भी अनेक अन्य प्रश्नों की भाँति नया नहीं है; हज़ारों वर्ष पुराना है। इस समीकरण से संबंधित एक रोचक घटना है जिसका उल्लेख कर हम आगे बढ़ेंगे।

यूनानी दार्शनिक फिलोपोनस लिखते हैं कि सन् ४३० ईसा पूर्व एथेंस नगर में महामारी का प्रकोप हुआ और वहाँ के अनेक नागरिक मौत के घाट उतर गए। जब औषधि

और प्रार्थना किसी से भी काम न चला तो नागरिकों ने जगत्प्रसिद्ध देलास की सिद्ध-वाणी में महामारी के शमन का उपाय जानने के लिए एक प्रतिनिधि मण्डल भेजा। सिद्धवाणी ने बताया कि यदि एथेंस निवासी अपने नगर में स्थित एपोलो के मन्दिर की वेदी को दूना बना दें तो एपोलो प्रसन्न हो कर महामारी समाप्त कर देंगे।

प्रतिनिधि मण्डल कृतकृत्य होकर वापस आया। नागरिकों ने बड़े उत्साह के साथ देववाणी को शिरोधार्य किया। मन्दिर की वेदी एक घन के आकार की थी। उन्होंने उतना ही बड़ा एक और घन पहले घन के पास स्थित कर दिया। परंतु फिर भी महामारी
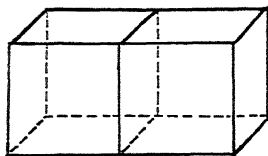
का प्रकोप कम नहीं हुआ। नागरिकों ने उस प्रतिनिधि मण्डल को पुनः देलास भेजा। वहाँ सिद्धवाणी ने बताया कि देवता की इच्छा पूरी न होने से वे क्रुद्ध हैं। उसने बताया कि नागरिकों ने दूसरी वेदी तो रख दी है, पर अब वेदी का आकार बदल गया है। देवता की आज्ञा है कि वेदी दूनी अवश्य हो, परंतु उसका आकार घन का ही होना चाहिए।

प्रतिनिधि मण्डल ने यह आदेश भी शिरोधार्य किया। इसे पूरा करने में उन्हें किसी प्रकार की कठिनाई की आशंका न थी। प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य मार्ग में ही विचार करते आ रहे थे कि इस कार्य को पूरा करने के लिए किस से पूछा जाए। इन्होंने निश्चय किया कि प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो के सामने यह समस्या रखी जाए। प्लेटो ने राय दी कि वे ज्यामिति-विशेषज्ञों से सलाह लें और उनसे आवश्यक परिगणना करवा कर एक नई वेदी बनवा लें। बस यहीं से ऐसी कठिनाइयाँ प्रारंभ हुईं जिनका आज तक कोई समाधान नहीं है और गणित के अनेक विद्यार्थियों का न जाने कितना समय गँवाया जा चुका है।

इतिहास महामारी के अन्त के विषय में मूक है।

बिना आकार बदले हुए एक घन को दूना करना अपने आप में कोई कठिन समस्या नहीं प्रतीत होती है। यूनानियों ने उसे वर्ग को दूने करने की समस्या के समान ही समझा होगा। वर्ग को दूना करना वे जानते थे। यदि वर्ग की भुजा के ऊपर एक समकोणीय त्रिभुज बनाया जाय जिसकी दूसरी भुजा भी वर्ग की भुजा के बराबर हो तो इस त्रिभुज का कर्ण
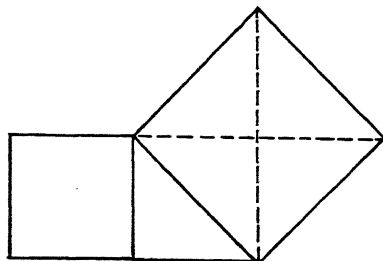
$\sqrt{२}$क होता है। उस कर्ण पर बने वर्ग का क्षेत्रफल २क^{२} होगा जो दिए वर्ग के क्षेत्रफल क^{२} का दूना है। इस प्रकार दिए वर्ग का दूना वर्ग बनाना अत्यन्त ही सरल कार्य है। उस समय तक समकोणीय त्रिकोण के इस गुण से यूनानी परिचित हो चुके थे। इसीलिए उनका यह सोचना स्वाभाविक था कि घनाकार में भी इसी प्रकार का कोई हल संभव होना चाहिए।
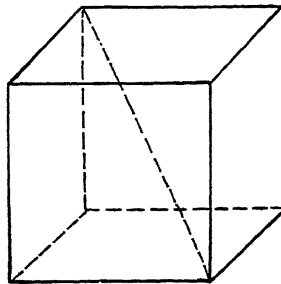
यह चित्र उस मन्दिर की वेदी का है जिसकी प्रत्येक भुजा बराबर है। मान लीजिए कि प्रत्येक की लम्बाई र है तो हम जानते हैं कि उसका घनफल होगा लम्बाई × चौड़ाई × ऊँचाई अर्थात् र × र × र = र^{३}। अब समस्या है एक ऐसी वेदी बनाने की जिसका घनफल इसका दूना हो अर्थात् २र^{३} हो। मान लीजिए इस इच्छित घनाकार की प्रत्येक भुजा य है। इस हिसाब से इसका घनफल हुआ य × य × य = य^{३} परंतु हम इस घन को पहले घनफल का दूना अर्थात् २र^{३} चाहते हैं। इसलिए य और र में संबंध स्थापित करने का समीकरण होगा :

$$य^{३} = २र^{३}$$

अथवा $$\frac{य^{३}}{र^{३}} = २$$

अथवा $$\left(\frac{य}{र}\right)^{३} = २$$

इस प्रकार अन्ततोगत्वा हम इस समस्या पर आ गए कि वह कौन-सी संख्या है जिसका घनफल २ है। वस्तुतः यह भी एक अपरिमेय संख्या है जिसे हम जितनी चाहें उतनी शुद्धता से जान सकते हैं पर पूर्ण शुद्धता पाना असंभव है। $\sqrt{२}$ की भाँति कोई ज्यामितीय रीति भी ऐसी नहीं है जिससे ऐसी रेखा खींची जा सके जिसकी लम्बाई ठीक उतनी ही हो कि उसका घनफल २ हो।

देव लगभग दूने से प्रसन्न होने वाले नहीं थे। उन्हें तो ठीक दूना इष्ट था और वह असंभव-सा सिद्ध हुआ। संभवतः देव का आशय इस बहाने गणित में लोगों की रुचि बढ़ाने का रहा होगा। अन्यथा महामारी के प्रकोप के लिए वे उस वेदी को ८ गुना भी बनवा सकते थे जिसके बनाने के लिए घन की सभी भुजाओं को दूना करना होता। एथेंस निवासी सहर्ष उसे आठ गुना कर देते। कारण कुछ भी रहा हो, फल यह हुआ कि न जाने कितने

गणितज्ञों ने अपनी मेधा को इस समस्या के समाधान में परखा और इस खोज में अनेक अन्य सुंदर गणितीय प्रमेय उन लोगों के हाथ लगे, यद्यपि मूल समस्या का समाधान नहीं हुआ।

हम अपरिमेय संख्या के कुनबों का जिक्र कर रहे थे जिनके सिलसिले में यह पुरानी कथा सामने आई। हम एक त्रि-घात समीकरण

$$य^3 = २$$

का हल खोज रहे थे। य एक परिमेय संख्या नहीं हो सकती है। हम चाहें तो स्वयं जिस प्रकार $य^2 = २$ के लिए य का अपरिमेय होना सिद्ध किया, उसी प्रकार $य^3 = २$ में भी य का अपरिमेय होना सिद्ध कर सकते हैं। य का मान हम दशमलव रूप में अवश्य निकाल सकते हैं और चाहें तो अगणित दशमलव अंक तक उसे लिखते जा सकते हैं।

जिस प्रकार हमने $य^2 = २$ के हल को सुविधा के लिए $\sqrt{२}$ लिख दिया था उसी प्रकार $य^3 = २$ के हल को भी $\sqrt[3]{२}$ लिखा जाता है। वास्तव में यह कोई हल नहीं हुआ वरन् हमने उसी प्रश्न को दूसरी तरह से लिख दिया। $\sqrt[3]{\ }$ इस वाक्यांश 'वह संख्या जिसका घनफल' को छोटे में लिखने की विधि है। इस प्रकार $\sqrt[3]{२}$ का अर्थ है 'वह संख्या जिसका घनफल २' है और वह उस अपरिमेय संख्या को निरूपित करती है। ये संख्याएँ भी करणी ही कहलाती हैं। इस कुनबे में भी अगणित संख्याएँ हैं। यदि हम १ से लेकर सभी पूर्णांकों का घनफल निकालने का प्रयास करें तो पाएँगे कि $\sqrt[3]{२}$ से $\sqrt[3]{७}$, $\sqrt[3]{९}$ से $\sqrt[3]{२६}$, $\sqrt[3]{२८}$ से $\sqrt[3]{६३}$ इत्यादि सभी अपरिमेय संख्याएँ हैं। इनमें केवल घन संख्या ८, २७, ६४, १२५, . . . के घनमूल छूट गए हैं क्योंकि स्पष्ट है कि उनके घनमूल पूर्णांक हैं। सर्वाधिक व्यापक त्रि-घात समीकरण निम्न रूप का होगा :

$$क\ य^3 + ख\ य^2 + ग\ य + घ = ०$$

जिसमें क, ख, ग, घ कोई भी पूर्णांक हैं। उसके हल के लिए हमें करणी संख्याओं की आवश्यकता होती है।

इसी प्रकार हम चतुर्घात, पंच-घात तथा अन्य ऊँची घातों वाले समीकरणों के भी हल के लिए आवश्यकतानुसार अन्य 'करणी' संख्याएँ लिख सकते हैं। जैसे $य^4 - २ = ०$ का हल है $य = \sqrt[४]{२}$; $य^5 = २$ का हल है $य = \sqrt[५]{२}$ . . . और व्यापक रूप में $य^र = २$ का हल है $य = \sqrt[र]{२}$ जिसमें 'र' कोई भी धनात्मक पूर्णांक है।

सबसे अधिक व्यापक र-घातवाले समीकरण का रूप होगा :

$$क\ य^{र} + ख\ य^{र-१} + ग\ य^{र-२} + \ldots + म = ०$$

जिसमें र एक पूर्णांक है और क, ख, ग, . . . म कोई भी पूर्णांक है। इस समीकरण के हल के संबंध में सभी घातों वाली करणी संख्याओं का उपयोग करना होगा। ये सभी अपरिमेय संख्याएँ हैं। वे अपरिमेय संख्याएँ जो इस प्रकार के बीजगणितीय समीकरणों के हल में सहायक हों, बीजीय अपरिमेय संख्याएँ कहलाती हैं। अपरिमेय संख्याओं का यह कुनबा बहुत बड़ा है। यदि हम सभी को लिखना प्रारंभ करें तो उनके कुछ सदस्य इस प्रकार होंगे :

$\sqrt{२}$, $\sqrt{३}$, $\sqrt{५}$, . . .
$\sqrt[३]{२}$, $\sqrt[३]{३}$, ... $\sqrt[३]{७}$, $\sqrt[३]{६}$, ...
$\sqrt[४]{२}$, $\sqrt[४]{३}$, $\sqrt[४]{५}$, $\sqrt[४]{६}$, ...

स्पष्ट है कि दोनों ओर ही अनंत श्रेणियाँ हैं। इन सभी अपरिमेय संख्याओं को हम करणी संख्या ही कहते हैं, यद्यपि इनका $\sqrt{२}$ की भाँति त्रिकोण के कर्ण से कोई संबंध नहीं है।

बीजीय संख्या

इन करणी संख्याओं की एक विशेषता है कि वे बीजगणित के समीकरण

$$क\ य^{र} + ख\ य^{र-१} + \ldots + म = ०$$

का हल होती हैं। वास्तव में अभी तक हमने उनको इसी रूप में देखा भी है। इसी कारण हम ऐसी सब संख्याओं को, जो बीजगणित के समीकरण का हल होती हैं, बीजीय संख्याएँ कहते हैं।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि यद्यपि सभी करणी संख्याएँ बीजीय संख्याएँ होती हैं, परंतु सभी बीजीय संख्याएँ करणी नहीं होती हैं। उदाहरण के लिए कोई भी पूर्णांक अनेक बीजणितीय समीकरणों का हल होता है, जैसे :

$$य - १ = ०,\ य^{२} - १ = ०,\ य^{३} - १ = ०,\ \ldots$$
$$य - २ = ०,\ य^{२} - ४ = ०,\ य^{३} - ८ = ०,\ \ldots$$

इत्यादि के हल हैं पूर्णांक १, २, . . . इत्यादि। इसलिए १, २, ३, . . . सभी बीजीय संख्याएँ हैं पर वे परिमेय हैं, अपरिमेय नहीं। इसी प्रकार सभी भिन्नांक भी बीजगणितीय समीकरणों के हल होते हैं, जैसे :

$$२य - १ = ० \ (\text{अर्थात्}\ य = \tfrac{१}{२}),\ ३य - १ = ० \ (\text{अर्थात्}\ य = \tfrac{१}{३}),\ \text{इत्यादि}$$

इसलिए $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$, ... इत्यादि भी बीजीय संख्याएँ हैं पर अपरिमेय नहीं।

इस प्रकार बीजीय-संख्या-समुदाय में परिमेय-संख्या-समुदाय और करणी-संख्या-समुदाय ही समाहित हैं।

क्या सभी बीजगणितीय समीकरणों के हल करणी या परिमेय संख्याओं में संभव हैं ? कुछ समीकरणों के लिए जैसे $य^{२} + २ = ०$ तो हम देख चुके हैं कि यह असंभव है। ऐसी कोई संख्या नहीं हो सकती जिसका वर्ग '—२' हो। परंतु कुछ समय पूर्व यह भी खोज हुई कि चतुर्घात समीकरणों तक के हल के लिए तो करणी संख्याएँ पर्याप्त हैं, परंतु सभी पंचघात समीकरणों का हल उनमें संभव नहीं है, जैसे :

$$य^{५} - २ = ०$$

का हल तो हम लिख सकते हैं कि यह है—$\sqrt[५]{२}$। परंतु यदि हम निम्न समीकरण को हल करना चाहें :

$$य^{५}+य-२=०$$

तो उसका हल करणी संख्याओं में संभव नहीं होगा। इसके हल के लिए पुनः एक नई संख्या की आवश्यकता होती है जिसे हम अतिकरणी या अतिमूलक संख्या कहते हैं। इसके लिए भी एक विशेष चिह्न प्रयुक्त होता है। $य^{५}+य-२=०$ का हल होगा √२ अथवा 'अतिमूल २'। ध्यान रहे कि 'मूल २' अथवा $\sqrt{२}$ द्वि-घाती समीकरण $य^{२}-२=०$ का हल है और 'अतिमूल' २ अथवा √२ पांच-घाती समीकरण $य^{५}+य-२=०$ का हल है। सर्वीय रूप में यदि क कोई भी एक पूर्णांक हो तो पाँच-घाती समीकरण

$$य^{५}+य-क=०$$

का हल है

$$य=\sqrt{क}$$

जिसे हम 'अतिमूल क' कहते हैं।

इस प्रकार करणी और अतिमूल दोनों ही बीजीय संख्याएँ हैं।

यदि हम अब तक के विवेचन का पुनरावलोकन करें तो संख्या संकल्पना के विस्तार का निम्न क्रम और आयाम पाएँगे।

. . . —४, —३, —२, —१, ०, १, २, ३, . . .

. . —$\frac{१}{२}$, —$\frac{१}{३}$, ०, $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{२}$.   भिन्नांक   बीजीय संख्या

$\sqrt{२}$, $\sqrt{३}$, ...   णी } अपरिमेय

√२, √३, ... अतिमूल संख्या }

अपरिमेय संख्या परिवार करणी और अतिमूल संख्याओं तक ही सीमित नहीं है। उसकी सभी उपजातियों का वर्णन करना तो यहाँ संभव नहीं होगा परंतु कुछ समय अबीजीय संख्याओं के परिचय में व्यतीत करना आवश्यक होगा। उसके साथ ही हमारी अपरिमेय उद्यान की सैर भी समाप्त होगी।

आवर्त्त दशमलव का अभिसारी रूप

अबीजीय संख्याओं के विवेचन के पूर्व एक बार हम परिमेय और अपरिमेय संख्याओं के दशमलव रूप का पुनरावलोकन करेंगे। हमने $\frac{१}{३}$ को आवर्त्त दशमलव के रूप में .३३३३ . . . लिखा था। वास्तव में इसका अर्थ है :

.३
+.०३
+.००३
+.०००३
+. . . . .
+. . . . .
.३३३३३ . . .

इस प्रकार यह आवर्त्त दशमलव एक अनंत संख्याओं का योग हुआ। यदि हम प्रत्येक संख्या को भिन्न अंक के रूप में लिखें तो उनका निम्न रूप होगा :

$$.३ = \frac{३}{१०}, \quad .०३ = \frac{३}{१०^{२}}, \quad .००३ = \frac{३}{१०^{३}}, \quad .०००३ = \frac{३}{१०^{४}}, \ldots .$$

अथवा $$.३३३३\ldots. = \frac{३}{१०} + \frac{३}{१०^{२}} + \frac{३}{१०^{३}} + \frac{३}{१०^{४}} + \ldots.$$

इस प्रकार आवर्त्त दशमलव भिन्न संख्याओं की एक अनंत श्रेणी का योग है।

हमने अपरिमेय संख्या को भी एक अनावर्त्तित सतत दशमलव के रूप में देखा था। इस अनावर्त्ती दशमलव को भी हम भिन्नांकों की एक अनंत श्रेणी के रूप में लिख सकते हैं, जैसे :

$$.१००१०००१००००१\ldots = \frac{१}{१०} + \frac{१}{१०^{४}} + \frac{१}{१०^{८}} + \frac{१}{१०^{१३}} + \ldots..$$

इन अनन्त श्रेणियों के भिन्नांकों में एक विशेष बात है कि प्रत्येक भिन्नांक का हर १० का कोई घात होता है। इसका कारण यह है कि हमारी संख्या लिखने की विधि दशाधारी है और दशमलव के बाद जैसे-जैसे हम दाहिनी ओर चलते हैं प्रत्येक का मान दशमांश होता जाता है। यदि हमारी संख्या का आधार अन्य कोई अंक होता जैसे २, ३, ४, इत्यादि तो उस रूप में लिखे दशमलव को भिन्नांक में परिवर्त्तन करने के लिए हमें भिन्नांकों में उसी संख्या के घात मिलते। (देखिये पृष्ठ ७०-७१) उदाहरण के लिए द्वि-आधारी रूप में लिखा हुआ

$$.१११११\ldots = \frac{१}{२} + \frac{१}{२^{२}} + \frac{१}{२^{३}} + \frac{१}{२^{४}} + \ldots...$$

और त्रि-आधारी रूप में

$$.१११११\ldots. = \frac{१}{३} + \frac{१}{३^{२}} + \frac{१}{३^{३}} + \frac{१}{३^{४}} + \ldots..$$

अपरिमेय संख्या की अभिसारी श्रेणियाँ

हमारे अपरिमेय परिवार की संख्याएँ सदा अनावर्त्त दशमलव के रूप में लिखी जा सकती हैं। और अनावर्त्त दशमलव एक असंख्य भिन्नांकों की श्रेणी के योग के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। इस श्रेणी में किसी भी पद का हर १० या उसका कोई घात ही हो सकता है। प्रश्न यह है कि क्या इस श्रेणी के अलावा भी कोई अन्य श्रेणी हो सकती है जो इन अपरिमेय संख्याओं को निरूपित करे? उत्तर है, हाँ। वास्तव में ऐसी अगणित अपरिमेय संख्याएँ हैं जिनका अनावर्त्ती दशमलव रूप सर्वाधिक सुविधाजनक नहीं है। उन्हें अन्य अनंत श्रेणियों के रूप में ही अधिक सरलतापूर्वक और बोधगम्य रीति से लिखा जा सकता है। इसके पूर्व कि हम उन संख्याओं का विवेचन करें, हमारे लिए कुछ अनन्त श्रेणियों से थोड़ा अधिक परिचय पा लेना उचित होगा।

अनन्त श्रेणियाँ मोटे तौर पर दो प्रकार की होती हैं। एक वे जिनकी संख्याओं का योग अनन्त हो और दूसरी वे जिनका योग किसी एक निश्चित संख्या की ओर अभिसरण करे। पहिली श्रेणी का उदाहरण है एक अनन्त श्रेणी $१+२+४+८+१६+\ldots$ यदि हम इस श्रेणी के अनन्त पदों को जोड़ें तो इसका योग अनन्त होगा। इस प्रकार की अनन्त श्रेणियाँ विशेष उपयोगी नहीं होती हैं, इसलिए हम उनका विवेचन नहीं करेंगे।

आइए, अब एक अभिसारी श्रेणी को देखें :

$$१-\frac{१}{२}+\frac{१}{३}-\frac{१}{४}+\frac{१}{५}-\frac{१}{६}+$$

इसमें एक धनात्मक पद के बाद एक ऋणात्मक पद है और प्रत्येक पद उससे पहले पद से छोटा है। जैसे-जैसे हम पद संख्या बढ़ाते जाएँगे पद छोटा होता जायेगा, यहाँ तक कि कुछ समय पश्चात् लगभग शून्य के बराबर हो जायेगा, पर शून्य नहीं।

इस श्रेणी के योग को हम एक सरल रेखा पर बिन्दुओं के सहारे निरूपित कर सकते हैं। धनात्मक पद का अर्थ है जोड़ना अर्थात् रेखा पर दाहिनी ओर चलना और ऋणात्मक पद का अर्थ है घटाना अर्थात् उस पर बाईं ओर चलना। इस अनन्त श्रेणी का योग क्रमशः एक, दो, तीन, चार, . . . पदों को जोड़ कर प्राप्त कर सकते हैं। ये सभी जोड़ इस श्रेणी के आंशिक योग कहलाएँगे। इस प्रकार :

$य_१$ = पहला आंशिक योग $= १$

$य_२$ = दूसरा ,, ,, $= १-\frac{१}{२}$

$य_३$ = तीसरा ,, ,, $= १-\frac{१}{२}+\frac{१}{३}$

$य_४$ = चौथा ,, ,, $= १-\frac{१}{२}+\frac{१}{३}-\frac{१}{४}$

. . .   .
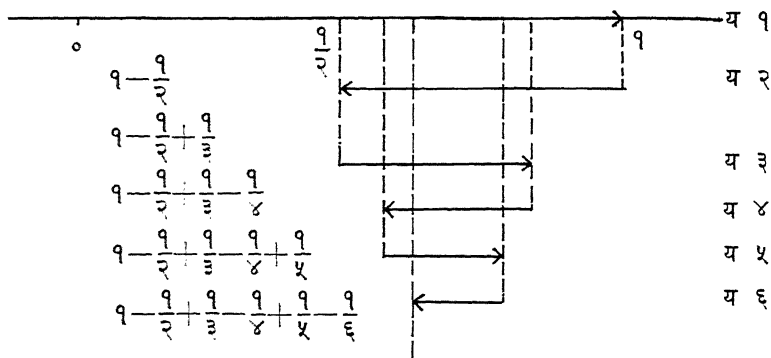
पहला आंशिक योग स्वयं पहला एक पद ही है जिसे हम सरल रेखा पर अंकित कर सकते हैं।

दूसरा पद $-\frac{१}{२}$ है अर्थात् बिन्दु १ से हम बाईं ओर चलें परंतु केवल $\frac{१}{२}$ दूरी तक। इस प्रकार दो पदों का आंशिक योग पहले आंशिक योग से कम हुआ।

अब तीसरा पद धनात्मक है इसलिए जहाँ तक दूसरे आंशिक योग पर पहुँच गए थे, वहाँ से दाहिनी ओर चलेंगे। परंतु तीसरा पद दूसरे पद से छोटा है इसलिए हम दाहिनी ओर दूसरे पद की अपेक्षा थोड़ी कम दूरी तय कर सकेंगे। इस प्रकार हम तीसरे क़दम में तीन संख्याओं का आंशिक योग प्राप्त कर लेंगे।

हमारा चौथा पद $-\frac{१}{४}$ ऋणात्मक है, इसलिए इस क़दम में हम फिर बाईं ओर चलेंगे। परंतु क्योंकि यह पद तीसरे पद से छोटा है, इस चरण में बाईं ओर तीसरे क़दम से कम दूरी तय करेंगे।

इस अनन्त श्रेणी का योग निकालने के लिए इसी प्रकार हम क्रमशः बाईं ओर तथा दाहिनी ओर चलते रहेंगे, जब तक चाहें तब तक। हाँ, एक बात अवश्य है जो ध्यान देने योग्य है। जब हम जोड़ने के लिए दाहिनी ओर चलते हैं तब कभी भी उतनी दूर तक नहीं पहुँचते जहाँ से हम इसके पूर्व बाईं ओर चले थे। और न इसी प्रकार जब हम घटाने के लिए बाईं ओर चलते हैं तो उधर उतनी दूर नहीं पहुँचते हैं जहाँ से उसके पूर्व एक बार चल चुके थे। जैसे-जैसे अधिक संख्याएँ आंशिक योग में जुड़ती जाती हैं, बाईं ओर और दाहिनी ओर चलने की सीमा उत्तरोत्तर छोटी होती जाती है। यदि हमने हज़ार पद जोड़ लिए तो अगला पद होगा $\frac{१}{१००१}$, इसी प्रकार एक लाख पदों के बाद का पद होगा $\frac{१}{१००००१}$। इस पद को जोड़ने के लिए हम केवल $\frac{१}{१००००१}$ दूरी ही तय करेंगे। यह कितनी छोटी दूरी है, इसका अंदाज़ा इससे लग सकता है कि बढ़िया से बढ़िया खुर्दबीन से भी इसे नहीं देखा जा सकता। आगे तो इससे भी छोटी संख्याएँ होंगी।

खुर्दबीन न देख सके, पर गणितज्ञ उससे संतुष्ट नहीं होगा। वह इस आंशिक योग क्रिया से क्रमशः एक बिन्दु के नज़दीक पहुँचता जाएगा—कभी उससे थोड़ा दाहिनी ओर और कभी थोड़ा बाईं ओर। फिर भी हम कभी भी उस बिन्दु पर नहीं पहुँच सकेंगे जो इस अनन्त श्रेणी के योग को निरूपित करता है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि इस श्रेणी का योग एक निश्चित संख्या नहीं है। वह निश्चित है और उसी को निरूपित करने वाले बिन्दु की ओर ये आंशिक योग अभिसरण करते हैं। जिस संख्या का निरूपण वह अभिसरण बिन्दु करता है, वही संख्या इस अनन्त श्रेणी का योग है। इस प्रकार की अनन्त श्रेणी अभिसारी अनन्त श्रेणी कहलाती है।

कौन-सी श्रेणी अभिसारी है और कौन-सी नहीं, इसके लिए गणित में कुछ कसौटियाँ हैं जो हमारे विवेचन की सीमा के बाहर हैं। हम केवल यही कहना चाहेंगे कि अभिसारी श्रेणी के पदों का क्रमशः छोटा होना और शून्यप्राय हो जाना नितांत आवश्यक है। कभी पदों के शून्यप्राय होने पर भी श्रेणी अपसारी हो सकती है। हम यहाँ जिन श्रेणियों की बात करेंगे, वे सब अभिसारी ही हैं।

ईश्वर ज्यामितिज्ञ है अथवा अंकगणितज्ञ ?

बीजीय अपरिमेय संख्या समुदाय से हम भली भाँति परिचित हैं। अब हम अबीजीय अपरिमेय संख्याओं की ओर चलेंगे। इनमें सबसे प्रसिद्ध संख्या का संबंध एक गोले की

परिधि से है । वर्ग और घन को दूना करने की प्राचीन समस्याओं की भाँति एक वृत्त के क्षेत्रफल के बराबर का वर्ग बनाने की समस्या भी पुरानी है। ऐसा वर्ग बनाने के लिए वृत्त की परिधि और उसके व्यास का अनुपात जानना आवश्यक है। यदि एक वृत्त में अर्ध-व्यास की लम्बाई र है और परिधि की लम्बाई प तो उनका अनुपात $\frac{प}{र}$ होगा। इस
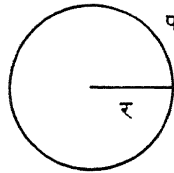
अनुपात का यह एक विशेष गुण है । चाहे वृत्त छोटा हो या बड़ा, इस अनुपात का मान वही रहेगा, अर्थात् :

$$\frac{प}{र}$$

एक अचर राशि है । इस अनुपात को π द्वारा व्यक्त किया जाता है जो यूनानी भाषा का अक्षर 'पाई' है। यह π एक अपरिमेय संख्या है। यह हमारी अन्य परिचित अपरिमेय संख्याओं से इस बात में भिन्न है कि यह संख्या किसी भी बीजगणितीय समीकरण का हल नहीं हो सकती है। इसीलिए π न केवल अपरिमेय है वरन् 'बीजातीत' या 'अबीजीय' भी है।

π का शुद्ध मान निकालने के लिए हज़ारों वर्ष से प्रयत्न होते रहे हैं। इसके विषय में सबसे पहला अप्रत्यक्ष रूप में संकेत मिस्र के एक प्राचीन ग्रंथ (पापीरस रहींड) में मिलता है । वृत्त के बराबर का वर्ग बनाने के लिए एक नियम लिखा है कि 'व्यास का नवाँ भाग कम कर दो और वृत्त के बराबर वर्ग की भुजा प्राप्त हो जाएगी।' इसका हिसाब लगाने पर π का मान ३.१६०४ निकलता है जो π के वास्तविक मूल्य (३.१४१५९...) से थोड़ा-सा बड़ा है।
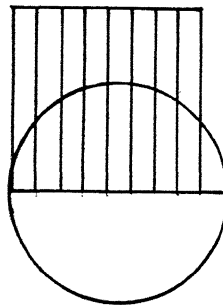
परंतु उस प्राचीन समय के लिए एक दशमलव अंक तक ठीक मान को प्राप्त करना भी एक उत्कृष्ट उपलब्धि मानना होगा।

भारत में सर्वप्रथम आर्यभट ने π का मान बताया है। आर्यभटीयं का दसवाँ श्लोक

शतमष्टगुणं द्वाषश्ष्टिस्तथा सहस्रणाम्।
अयुतद्वय विष्कम्भेस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः।। १०।।

इसका भावार्थ है—जिस वृत्त का व्यास २०,००० हो, उसकी परिधि का आसन्न मान ६२,८३२ होगा। इस प्रकार आर्यभट के अनुसार π का आसन्न मान $\frac{६२८३२}{२००००}$ = ३.१४१६ है। यह मान चौथे दशमलव अंक तक ठीक है।

देखने योग्य बात यह है कि आर्यभट ने इस मान को यथार्थ न मानकर आसन्न माना है। अर्थात् उनकी दृष्टि में इससे भी अधिक शुद्ध मान संभव था। उन्होंने तत्कालीन कामकाज के लिए चार दशमलव तक का मान पर्याप्त माना होगा।

ब्रह्मगुप्त ने π का मूल्य लगभग $\sqrt{१०}$ अर्थात् ३.१६२३ बताया। यद्यपि यह मान आर्यभट के मान की तुलना में बहुत अशुद्ध है परंतु एक छोटे रूप में स्पष्टतया लिखने की दृष्टि से श्रेयस्कर है।

यदि हम पश्चिमी जगत् की ओर ध्यान दें तो पाते हैं कि तेरहवीं शताब्दी में पीसा के लिओनार्दो ने π का मान निकाला जो आर्यभट के मान से कहीं अधिक अशुद्ध था। उन्होंने इसे ३.१४१८ लिखा। परंतु उसके बाद से कई लोग उसके शुद्धतर मान निकालते रहे और इसका शुद्ध मान निकालना एक व्यसन-सा हो गया। फ़्रांस निवासी फ़्रांस्वा वियेता (१५४०–१६०३) ने नौ दशमलव अंकों तक इसका मान निकाला। लूडोल्फ वान क्यूलेन (१५३६–१६१०) ने इसे ३५ अंकों तक निकाला और अपनी क़ब्र के पत्थर पर इस मान को खुदवाने की इच्छा प्रकट की। बैरन वान वेगा (१७५६–१८०२) ने इसका १४० दशमलव अंकों तक मान निकाला और गुणक मशीनों की सहायता से एक अंग्रेज़ विलियम शैंक्स ने सन् १८४४ में इसे ७०७ दशमलव अंकों तक लिखा। इसका उन्नीस अंकों तक मान इस प्रकार है :

३.१४१५९२६५३५९७९३२३८४६. . .

सन् १९४९ में अंकगणकों की सहायता से π का २०३५ दशमलव अंकों तक मान निकाला गया है ।

हमने उपर देखा कि π के अपरिमेय होने का ज्ञान दो हज़ार वर्ष से अधिक पुराना है। परंतु π की वास्तविक प्रकृति का परिचय सन् १८८२ में प्रोफ़ेसर फ़र्डिनेंड लिंडमन ने दिया। उन्होंने सिद्ध किया कि π का शुद्ध मान न परिमेय संख्या के रूप में और न ही बीजीय अपरिमेय संख्या अथवा किसी अन्य रूप में लिखा जा सकता है। साधारण गणित के द्वारा उसको सिद्ध करना संभव नहीं है और न ही शब्दों में उसे कहा जा सकता है। उनके द्वारा दिए गए प्रमाण में अन्त में एक ऐसा समीकरण प्राप्त होता है जिसके अनुसार १ से कम एक अन्य पूर्णांक भी होना चाहिए जो स्पष्ट रूप से असंभव है। इसलिए π अबीजीय संख्या है और इसे बीजातीत संख्या की संज्ञा दी गई।

π को अन्य अनेक रूपों में भी प्रस्तुत किया गया है। इसका मान व्यक्त करने के लिए कई अनन्त श्रेणियाँ उपयोग की गई हैं। क्रानेकर ने सबसे पहले π को वृत्त की परिधि

और व्याम के अनुपात रूप मे मुक्त कर उसे केवल पूर्णांकों के रूप में प्रस्तुत किया था।

$$\frac{\pi}{४} = १ - \frac{१}{३} - \frac{१}{५} - \frac{१}{७} - \frac{१}{९} \ldots$$

क्रानेकर का कहना था कि समस्त गणित अंततोगत्वा अंकग पर आधृत है, अंकगणित संख्याओं पर अवलम्बित है और संख्याओं का मूल स्तंभ प्राकृतिक संख्याएँ हैं। इसीलिए वह कहता था कि π का उपानयन वृत्त के द्वारा नही, वरन् अंकों के द्वारा होना चाहिए। उसका अंकों की श्रेष्ठता पर इतना विश्वास था कि प्लेटो के इस कथन के स्थान पर कि ईश्वर एक ज्यामितिज्ञ है, उसने कहना प्रारंभ किया कि 'ईश्वर एक अंकगणितज्ञ है'। बाद को तो क्रानेकर अंकों की सर्वश्रेष्ठता से इतना प्रभावित हुआ था कि वह कहने लगा कि अपरिमेय संख्याओं का अस्तित्व ही नहीं है। उसने लिंडमन को एक पत्र में लिखा था कि 'संख्या π पर तुम्हारे सुंदर कार्य करने का क्या उपयोग है? जब तुम जानते हो कि अपरिमेय संख्याएँ होती ही नहीं, तब ऐसी संख्याओं पर क्यों माथा-पच्ची करते हो ?'

ऊपर दी हुई अनन्त श्रेणी से हम जितने दशमलव अंकों तक चाहें π का मान निकाल सकते हैं। परंतु यह श्रेणी बहुत धीरे-धीरे बढ़ती है और इसलिए मान निकालने में बहुत समय लगता है। दो दशमलव अंकों तक शुद्ध उत्तर के लिए इसके ३०० पदों का जोड़ करना होगा। सर इज़ाक न्यूटन ने सिद्ध किया था कि π के बीस दशमलव अंकों तक शुद्ध मान के लिए इस श्रेणी के ५,००,००,००,००० पदों को जोड़ना पड़ेगा। तब फिर इससे क्या लाभ ?

डॉ० हेली ने एक अनन्त श्रेणी इस प्रकार की दी है:

$$\frac{\pi}{६} = \frac{\sqrt{३}}{३}\left(१ - \frac{१}{३.३} + \frac{१}{३^{२}.५} - \frac{१}{३^{३}.७} \qquad \right)$$

हम देख सकते हैं कि यह अनन्त श्रेणी अति-शीघ्र अभिसारी है और कुछ ही पदों के बाद पदों का मान बहुत छोटा हो जाता है।

कई भाषाओं में π के मान को व्यक्त करने के लिए मनोरंजक अथवा तत्संबंधी अर्थपूर्ण वाक्य बनाए जाते रहे हैं। देवनागरी में निम्न वाक्य π के मान को १७ दशमलव अंकों तक व्यक्त करता है:

गणित में परिमेय व अपरिमेय संख्यापरिकल्पना अब सुप्रसिद्ध अतिगहन
३ १ ४ १ ५ ९ २ ६ ५

पहेली ज्यामितीय वृत्तान्तर्गत परिधिव्यासानुपात सुस्पष्टतया दशमिकाभिव्यक्ति
३ ५ ८ ९ ७ ९

सुलभ कर सकेगी।
३ २ ३

इस वाक्य में शब्दों के अंक मान के लिए उसमें प्रयुक्त सभी व्यंजन तथा स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त स्वरों को गिना गया है। इसमें मात्राओं का कोई मान नहीं लगाया है तथा संयुक्ताक्षर का मान दो व्यंजनों से मिलकर बने होने के कारण दो माना गया है।

यह कोई आवश्यक नहीं कि इसी नियम से वाक्य रचना की जाए। आप चाहें तो मात्राओं के हिसाब से कोई और मनोरंजक और सरल वाक्य भी बना सकते हैं। क्या आप कुछ समय इस मनोविनोद में लगाएँगे ?

एक लोलुप वणिक

एक अन्य अपरिमेय संख्या से परिचय कराकर हम इनसे अवकाश ग्रहण करेंगे। सबसे पहले हम चक्रवृद्धि ब्याज के एक प्रश्न को दुहराएँगे जो स्कूल गणित में सिखाया जाता है। मान लीजिए १०० रुपए उधार लिए गए और उसका ब्याज ५ रुपये सैकड़ा है। अब यदि ब्याज का हिसाब साल के बाद होता है तो एक साल का ब्याज केवल ५ रुपए ही होगा। परंतु कई बैंक हमें हर ६ महीने ब्याज भी देते है। यदि ६ महीने में ब्याज देने की शर्त है तो साल का ब्याज ५ रुपए से कुछ अधिक होगा।
देखिए क्या होगा ?

मूलधन	१००.०० रुपए
पहले छः महीने का ब्याज	२.५० रुपए
छः महीने के अन्त में मिश्रधन	१०२.५० रुपए
दूसरे छः महीने का १०२.५० रु० पर ब्याज	२.५६ रुपए
वर्ष के अंत में मिश्रधन	१०५.०६ रुपए
वर्ष का ब्याज	५.०६ रुपए

इस प्रकार ब्याज पहले से कुछ अधिक हो गया। यदि यही ब्याज प्रति चौथे महीने जोड़ दिया जाए तो कुछ और भी बढ़ जाएगा। तथा यदि जैसा कुछ गाँवों में हिसाब है प्रति महीने ब्याज लगाने का तो वास्तविक प्रतिवर्ष ब्याज दर और भी अधिक हो जाएगी।

परंतु अब हम यह मान लें कि साल में 'न' बार यह ब्याज जोड़ा जाता है। इस अवस्था में वार्षिक ब्याज जानने के लिए एक सरल गणितीय सूत्र है :

$$\text{वर्ष के अंत में मिश्रधन} = \text{मूलधन} \times \left(१ + \frac{\text{ब्याज दर प्रति रुपया}}{\text{न}}\right)^{\text{न}}$$

अब हम एक ऐसा उदाहरण लेते हैं जिसमें साहूकार बहुत अधिक ब्याज लेता है। ब्याज की दर सौ प्रतिशत है। यदि साल में एक बार ब्याज लगाता तो एक रुपये पर एक रुपया ही ब्याज पड़ता। परंतु यदि वह वर्ष में 'न' बार ब्याज का हिसाब करता है तो वार्षिक दर क्या होगी ? ऊपर के सूत्र के अनुसार :

$$\text{वर्ष के अंत में मिश्रधन} = १ \times \left(१ + \frac{१}{\text{न}}\right)^{\text{न}}$$

$$= \left(१ + \frac{१}{\text{न}}\right)^{\text{न}}$$

अब यदि अच्छा साहूकार होगा तो वह साल के बाद ही ब्याज लगाएगा परंतु यदि कोई बहुत ही लालची साहूकार है तो क्या होगा ? हो सकता है वह कहे कि 'मैं तो प्रतिदिन का

ब्याज मूल में जोड़ूँगा।' इस अवस्था में ब्याज होगा $(१+\frac{१}{३६५})^{३६५}$ । यदि वह कहे कि मैं प्रति घंटे ब्याज को जोड़ दूँगा तो ब्याज और भी बढ़ जाएगा। एक साहूकार कहता है कि हम तो प्रतिक्षण इस ब्याज को मूलधन में जोड़ते जाएँगे। इस स्थिति में ब्याज की क्या स्थिति होगी ? अनुमान लगाना तो कठिन है। इस अवस्था में 'न' का मान बढ़ता जाता है। जैसे-जैसे समय की अवधि कम होती जाती है, 'न' अनन्त होता जाता है।

इस प्रकार $(१+\frac{१}{न})^{न}$ में जहाँ एक ओर उसका घात अनन्त होता जा रहा है, कोष्ठक के अंदर का दूसरा पद $\frac{१}{न}$ अति लघु होता जा रहा है। इस अवस्था में हमारे अनुमान अलग-अलग हो सकते हैं। यदि हम घात के बढ़ने को महत्त्व दें तो ब्याज के बहुत बढ़ने का डर प्रतीत होता है। पर हम यदि $\frac{१}{न}$ के शून्यप्राय होने की ओर ध्यान दें तो लगेगा कि ब्याज में विशेष वृद्धि नहीं होगी। संभवतः साल के अंत में ब्याज केवल १ ही रुपया हो। परंतु यह सिद्ध किया जा चुका है कि $(१+\frac{१}{न})^{न}$ का मान 'न' के बहुत अधिक बढ़ने पर एक निश्चित अपरिमेय संख्या की ओर अभिसरण करता है। इसे अंग्रेज़ी वर्णमाला के शब्द 'ई' (e) के द्वारा निरूपित करते हैं।

$e=(१+\frac{१}{न})^{न}$ जिसमें न अनंत की ओर बढ़ता हो। पाँच दशमलव अंकों तक e का मान है २.७१८२८। हमने सोचा था कि यह कृपण बनिया तो प्रतिक्षण ब्याज जोड़ कर शायद हमें समाप्त कर दे, पर उसे लाभ केवल कुछ पैसों का ही हुआ। साल में ब्याज लेने पर उसे ब्याज १ रुपया मिलता, अब लगभग ७२ पैसे और मिल जाएँगे। बेचारा वणिक!

यह संख्या भी π की भाँति एक अबीजीय अथवा बीजातीत संख्या है। इसका भी शुद्ध मान हम किसी प्रकार से नहीं लिख सकते हैं। यह गणितीय सूत्रों में एक अत्यंत उपयोगी संख्या है। इसके विषय में गणितज्ञों ने बहुत कुछ अन्वेषण किया है। सन् १९४९ में e का २५१० दशमलव अंकों तक शुद्ध मान निकाला गया।

π के लिए हम देख चुके हैं कि अनन्त श्रेणी द्वारा मान व्यक्त करने में प्रारंभ में बहुत कुछ कठिनाई उपस्थित हुई थी। बहुत समय बाद ही ऐसी अनन्त श्रेणियाँ बनाई जा सकीं जो कुछ पदों में ही पर्याप्त शुद्ध मान दे सकें। इसके विपरीत e के लिए निम्न अनन्त श्रेणी बहुत उपयोगी सिद्ध हुई जिससे उसका शुद्धतर मान आसानी से निकाला जा सकता है :

$$e=१+\frac{१}{१!}+\frac{१}{२!}+\frac{१}{३!}+\frac{१}{४!}+\frac{१}{५!}+\ldots\ldots$$

इसमें '५ !' का अर्थ है १×२×३×४×५ और '१० !' का अर्थ होगा पहली १० प्राकृतिक संख्याओं का गुणन १×२×३×४×५×६×७×८×९×१० । '५ !' को शब्दों में 'क्रमगुणित पाँच' कहते हैं। इस अनन्त श्रेणी के केवल १५ पदों का उपयोग कर e का पच्चीस दशमलव अंकों तक शुद्ध मान मिल जाता है :

२.७१८२८१८२८४५९०४५२३५३६०२८७४...

इसका आगणन कुछ इस प्रकार होगा :

प्रथम पद	१	= १.०००००००००
द्वितीय पद	$+\frac{१}{१!}$	= १.०००००००००
तृतीय पद	$+\frac{१}{२!}$	= ०.५०००००००००
चतुर्थ पद	$+\frac{१}{३!}$	= ०.१६६६६६६६७
पंचम पद	$+\frac{१}{४!}$	= ०.०४१६६६६६७
षष्ठ पद	$+\frac{१}{५!}$	= ०.००८३३३३३३
सप्तम पद	$+\frac{१}{६!}$	= ०.००१३८८८८८
अष्टम् पद	$+\frac{१}{७!}$	= ०.०००१९८४१३
नवम् पद	$+\frac{१}{८!}$	= ०.००००२४८०२
दशम् पद	$+\frac{१}{९!}$	= ०.०००००२७५६
एकादश पद	$+\frac{१}{१०!}$	= ०.००००००२७५
द्वादश पद	$+\frac{१}{११!}$	= ०.०००००००२५
तृयोदश पद	$+\frac{१}{१२!}$	= ०.००००००००२
योग		= २.७१८२८१८२८

जो नौ दशमलव अंकों तक शुद्ध है। इसके आगे तो पद और भी शीघ्र छोटे होते जाते हैं। इसलिए और अधिक शुद्ध मान निकालना सुगम है। यह क्रिया इसलिए भी अत्यंत सरल है कि आगामी पद का मान निकालने के लिए उसके पहले वाले पद में केवल अंतिम अंक का भाग देना होता है। हम देख सकते हैं कि ऊपर तृतीय पद का मान द्वितीय पद के मान में २ का भाग देकर निकाला गया है, चतुर्थ पद तृतीय में ३ का भाग देकर; पंचम चतुर्थ में ४ का भाग देकर . . . इत्यादि।

ये थीं दो सबसे अधिक जानी-पहचानी बीजातीत अपरिमेय संख्याएँ π तथा e। और क्रानेकर का कथन भी स्पष्ट हो गया कि सभी अपरिमेय संख्याएँ अंततोगत्वा पूर्णांकों पर आधारित हैं।

प्रोफ़ेसर लिंडमन द्वारा एक बार e के वास्तविक स्वरूप का परिचय होने पर गणितज्ञ अन्य बीजातीत संख्याओं को अनंत श्रेणियों के रूप में खोजने लगे। शीघ्र ही इस नये अपरिमेय संख्या परिवार की संख्या भी अगणित हो गई है। वास्तव में इस बीजातीत परिवार की विभिन्न संख्याओं में आपस में यही समानता है कि वे परिमेय नहीं हैं, वे बीजीय अपरिमेय भी नहीं हैं और उन सबको अनंत श्रेणियों के रूप में व्यक्त किया जा सकता है और इनमें अन्य कोई साम्य नहीं है। उनमें से किसी एक को दूसरे के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

सरल रेखा पर इन संख्याओं के निरूपण के विषय में भी अब दो शब्द कहना उपयुक्त होगा। बीजातीत और बीजीय दोनों परिवारों की अपरिमेय संख्याएँ अभिसारी अनंत श्रेणियों के रूप में व्यक्त की जा सकती हैं। हमने एक अनंत श्रेणी के आंशिक योगों को एक सरल रेखा पर निरूपित किया था और देखा था कि वे क्रमशः एक बिन्दु की ओर

अभिसरण करते हैं। इस प्रकार अनंत श्रेणी का यथार्थ योग एक निश्चित बिन्दु को परिभाषित करता है। ठीक उसी प्रकार प्रत्येक अभिसारी अनंत श्रेणी एक निश्चित बिन्दु की ओर अभिसरण करती हुई उसे परिभाषित करती है।

क्या सरल रेखा के छिद्र भर गए ?

अब तक हम अपनी संख्या-संकल्पना के विस्तार के दौरान इतनी बार ऐसा अनुभव कर चुके हैं कि मानो किनारे पर पहुँच गए हों। पर फिर एकाएक कोई छोटा-सा प्रश्न सामने आ जाता है और मालूम होता है कि अभी तो बहुत कुछ रह गया। अब उसी स्थिति में हम पुनः आ गए हैं। प्रश्न है कि क्या अपरिमेय संख्या समुदाय की स्थापना के साथ हमारी सरल रेखा के सभी बिन्दुओं का ब्यौरा पूरा हो गया अथवा इतना सब ताना-बाना बुनने के बाद भी हमारी सरल रेखा में कुछ छिद्र रह ही गए ? परिमेय संख्याओं की घनी बस्ती में घूमने के बाद जो धोखा हुआ था, उससे संभवतः हम सोच सकते हैं कि कहीं इस प्रश्न में भी कोई फरेब तो नहीं है। भाग्यवश अब हम उस स्थिति पर पहुँच चुके हैं जहाँ हमारी संख्या-संकल्पना सरल रेखा के सभी बिन्दुओं को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त है। इन संपूर्ण संख्या समुदायों को हम 'वास्तविक' संख्या समुदाय की संज्ञा देते हैं।

वास्तविक संख्या समुदाय से विदा लेने के पहले एक बार हम इनके परिवारों का पुनरावलोकन करें तो विचारों के स्पष्टीकरण में सुविधा होगी।
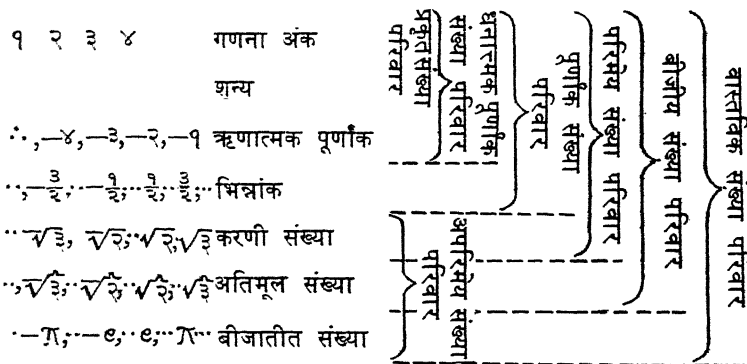
प्रथम छह परिवारों के क्रमशः अध्ययन में एक बात हमने देखी थी कि वे सब गणितीय क्रियाओं के लिए अपर्याप्त होने पर संकल्पना-विस्तार के लिए आवश्यक हुए। प्रत्येक परिवार क्रमशः अपने से पूर्व के सभी संख्या-परिवारों को समाहित किए हुए है। सातवाँ अबीजीय अथवा बीजातीत संख्याओं का परिवार किसी प्रत्यक्ष गणितीय क्रिया की देन नहीं है। उनका प्रारंभ तो कुछ ज्यामितीय समस्याओं को लेकर हुआ। फिर उन्हें अनंत श्रेणियों के योग के रूप में व्यक्त कर ज्यामितीय आधार को छोड़ दिया गया। अब वे केवल पूर्णांकों की परिकल्पना के आधार पर स्थापित हो चुके हैं। एक बार यह संभव

होने पर उनका द्रुत विस्तार प्रारंभ हुआ और बीजातीत संख्या परिवार की सदस्यता भी अनंत हो गई।

एक बात और। पूर्णांकों को हम भिन्न संख्याओं के रूप में लिख सकते हैं जैसे १, २, ३, . . . के लिए $\frac{१}{१}, \frac{२}{१}, \frac{३}{१}$, . . . इत्यादि। उसी प्रकार हम भिन्न संख्याओं को भी करणी संख्या के रूप में लिख सकते हैं, जैसे $\frac{३}{२}, \frac{२}{१}$, . . . के लिए $\sqrt{\frac{९}{४}}, \sqrt{\frac{४}{१}}$, . . . इत्यादि। परंतु करणी संख्या को या यों कहिए कि बीजीय संख्याओं को हम अबीजीय अथवा बीजातीत संख्या के रूप में नहीं लिख सकते हैं। अथवा हम यह कह सकते हैं कि बीजीय संख्याओं तक वही संख्या परिवार विस्तृत होता जाता है। इस प्रक्रिया में छोटा संख्या समुदाय बड़े समुदाय का एक विशिष्ट भाग होता है, उसके बाहर नहीं। परंतु बीजातीत और बीजीय संख्याओं में इस प्रकार का संबंध नहीं है। बीजीय संख्या बीजातीत संख्या समुदाय का उपभाग नहीं है।

अब प्रश्न है कि हम दो प्रकार की मिश्र संख्याओं को क्या कहेंगे? $\sqrt{२}+३$ में एक भाग अपरिमेय है और दूसरा पूर्णांक। वास्तव में यह एक अपरिमेय संख्या है जो इसे दशमलव रूप में लिखने पर स्पष्ट हो जाएगा। $\sqrt{२}+३=१.४१४...+३=$ ४.४१४ . . .। दशमलव के बाद का भाग अपरिमेय है, इसलिए पूरी संख्या ही अपरिमेय हो गई है। इसी प्रकार बीजीय और बीजातीत संख्याओं को मिलाने से बनी संख्या बीजातीत संख्या होगी

$$\pi+\sqrt{२}, \pi^{२}, \pi^{\sqrt{३}}, ३^{\pi}, e^{२},$$

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि यदि केवल दो अबीजीय संख्याओं का स्वतंत्र अस्तित्व हो, जैसे π और e, तब भी अबीजीय संख्याओं के साथ गणितीय प्रक्रियाएँ करने पर (जैसे जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग इत्यादि) जो संख्याएँ प्राप्त होंगी, वे भी अबीजीय होंगी। इस प्रकार दो अबीजीय संख्याओं से असंख्य अबीजीय संख्याओं का सृजन हो सकता है। इसलिए अबीजीय संख्याएँ अगणित हो गईं। पर ऊपर हम कह चुके हैं कि अबीजीय संख्याएँ स्वयं ही असंख्य हैं। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त है कि अबीजीय संख्याओं और असंख्य बीजीय संख्याओं के मेल से बनी संख्याएँ असंख्यातीत हो सकती हैं। इसका विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में करेंगे।

क्या कुछ संख्याएँ वास्तविक तथा कुछ काल्पनिक हैं?

परिमेय के बाद अपरिमेय और बीजीय के बाद अबीजीय के विवेचन से ऐसा लगता है कि मानो हम अपनी यात्रा के अंत पर पहुँच रहे हों। परिमेय और अपरिमेय अथवा बीजीय और अबीजीय वर्गीकरण यही आभास देते हैं कि मानो संख्या समुदाय के यही दो विभाजन हैं। वास्तव में बात ही कुछ ऐसी थी। संख्याओं का जैसा क्रमिक विकास हमने अपनी सैर में देखा है, वह विकास सहस्रों वर्षों में संभव हुआ है और प्रत्येक युग तत्कालीन कल्पना को ही परिपूर्ण मानता रहा है। संख्या-समुदाय का द्विवर्गीय विभाजन

अतिप्राचीन है। यह तो अभी उन्नीसवीं शताब्दी में प्रस्थापित हुआ कि जिसे हम पूर्ण संख्या समुदाय समझे बैठे थे, वह संख्या समुदाय का एक भाग मात्र है। उन्नीसवीं सदी में एक ऐसे समुदाय की परिकल्पना हुई जिसे किसी ने वास्तविक संख्या होने का विश्वास ही नहीं किया और उसे काल्पनिक संख्या की संज्ञा प्रदान की गई। और इसीलिए जिस समुदाय को तब तक संख्या का पूर्ण रूप ही माना जाता रहा उसे वास्तविक संख्या कहना पड़ा। वस्तुतः कोई संख्या वास्तविक है और कोई काल्पनिक, इसका निराकरण हम नीचे करेंगे।

काल्पनिक संख्या समुदाय

अभी तक के संख्या समुदाय के परिचय में दो स्थल ऐसे आ चुके हैं जहाँ हमारी जिज्ञासा में कुछ सहज प्रश्न उठे परंतु उन स्थलों पर उनका समाधान जानबूझ कर नहीं किया गया। एक तो सरल रेखा पर संख्याओं को निरूपित करने में हमने एक सिद्धहस्त नट का-सा कमाल कर दिखाया जो एक पतली-सी डोर पर बिना किसी सहारे पहाड़ी की एक चोटी से दूसरी चोटी तक चला जाता है। उस डोर पर से किंचित् भी इधर-उधर हुआ कि उसका जीवन ही संकट में है।

वही कला हमारी सीधी सरल रेखा पर अंकों के निरूपण में हमने प्रदर्शित की। हमारी रेखा भी डोर की भाँति ही बहुत पतली है—वस्तुतः उससे भी कहीं अधिक, हमारी रेखा की तो कोई चौड़ाई ही नहीं होती और इसी चौड़ाई-विहीन रेखा पर पूरा संख्या समुदाय अवस्थित है। यदि हम रेखा के थोड़ा ऊपर-नीचे हो जाएँ तो क्या हो ? होगा वही जो नट का हुआ—हमारा वास्तविक संख्या जगत समाप्त हो जाएगा और हम किसी अन्य लोक में पहुँच जाएँगे। वह कौन-सा जगत है, यही हमें अब देखना है।

दूसरा स्थल था बीजीय संख्याओं की स्थापना। करणी संख्याओं की आवश्यकता एक ओर तो समकोण त्रिभुज के कर्ण की लंबाई लिखने के लिए पड़ी, पर दूसरी ओर $य^२ - २ = ०$, $य^२ - ३ = ०$, $य^३ = २$ इत्यादि द्विघातीय, त्रिघातीय समीकरणों के हल के लिए भी पड़ी जिसके लिए हमारी भिन्न संख्याएँ पर्याप्त नहीं थीं। वहाँ पर हमने कहा था कि 'करणी संख्याएँ इन द्वि-घात, त्रि-घात इत्यादि में से कुछ समीकरणों के हल प्राप्त करने में सहायक होंगी।' अर्थात कुछ समीकरण अभी भी बचे रहे जिनका करणी संख्या समुदाय के अंतर्गत अथवा बीजीय संख्या समुदाय में भी हल प्राप्त नहीं हो सकता है। अबीजीय संख्याएँ तो अपनी प्रकृति के कारण उसमें किसी प्रकार सहायक होती ही नहीं! कौन-से हैं वे समीकरण ?

कुछ असंभव प्रश्न

आइए, अब इन दोनों प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयत्न करें—क्या हम निम्न समीकरण का कुछ अर्थ निकाल सकते हैं :

$$य^2 + १ = ०$$

इसका अर्थ यह हुआ कि

$$य^2 = -१$$

अर्थात् हम एक ऐसी संख्या चाहते हैं जिसका वर्ग -१ हो। हमने देखा कि हमारे परिचय के जितने संख्या परिवार हैं, उनमें किसी भी संख्या का वर्ग एक ऋणात्मक संख्या नहीं हो सकती है। $(-१)\times(-१) = +१$, $(+१)\times(+१) = +१$। तो वह कौन-सी संख्या हो सकती है? इसका उत्तर गणितज्ञ बहुत दिन ढूँढ़ते रहे और उन्होंने कह दिया कि $य^2 + १ = ०$ का हल असंभव है।

पर पुराने अनुभव के आधार पर हम सोच सकते हैं कि विचारों के जगत में विचरण करने वाला गणितज्ञ यों हार मानने वाला नहीं। जब २ का वर्गमूल नहीं निकला तो उसे लिख दिया $\sqrt{२}$ अर्थात् 'वह संख्या जिसका वर्ग २ हो'। सोचा, क्यों न इसी प्रकार एक नई संख्या लिख दी जाय $\sqrt{-१}$ जिसका वास्तविक अर्थ क्या हैं, यह समझने की आवश्यकता नहीं और जो वस्तुत: 'वह संख्या जिसका वर्ग -१ है' को छोटे रूप में लिखने का संकेत मात्र हो। यह युक्ति काम कर गई और यह संख्या जिसके बारे में हमें कुछ नहीं मालूम प्रयोग में आने लगी। हम कह सकते हैं कि प्रारंभ में इसका प्रयोग केवल गणित के खेल को कुछ नियमों के अनुसार खेलने मात्र के लिए हुआ। क्योंकि किसी को ऐसी कोई संख्या मालूम नहीं थी कि जिसका वर्ग -१ हो, इसीलिए यह भी कह दिया कि यह संख्या काल्पनिक (अंग्रेजी में इमैजिनरी) है और इस प्रकार काल्पनिक संख्याओं का प्रादुर्भाव हो गया। $\sqrt{-१}$ के लिए धीरे-धीरे अंग्रेजी शब्द इमैजिनरी का पहला अक्षर i प्रयोग होने लगा और उसे संख्या का पद भी प्राप्त हो गया—काल्पनिक ही क्यों न सही। इस नई संख्या को निम्न समीकरण द्वारा परिभाषित किया गया :

$$i^2 = -१$$

और i को काल्पनिक संख्या की संज्ञा दी गई। साथ ही हमारे चिरपरिचित संख्या समुदाय वास्तविक संख्या समुदाय कहलाने लगे।

अब सोचने की बात यह है कि यह तो केवल एक ही नई संख्या है, वह भी इतनी छोटी, इसके लिए इतनी बड़ी खलबली क्यों? परंतु तथ्य यह है कि इस एक नई संख्या के आधार पर हमारी वास्तविक संख्या परिवार के बराबर के एक नए परिवार का सृजन हो गया। एक अन्य समीकरण $य^2 + २ = ०$ का हल निकालने के लिए $\sqrt{-२}$ रूप में किसी नई संख्या को जन्म नहीं देना पड़ा, उसमें भी i से ही काम चलाया गया। देखिए

$$य^2 = -२ = -१ \times २ = i^2 \times २ = i^2 \times \sqrt{२} \times \sqrt{२}$$

$$य = i\sqrt{२}$$

इसी प्रकार प्रत्येक वास्तविक संख्या के समकक्ष एक काल्पनिक संख्या आ गई। यदि क कोई भी एक वास्तविक संख्या है तो i क उसके समकक्ष की एक काल्पनिक संख्या हो गई। इस प्रकार $-२i, -\pi i, -ei, ei, \pi i, २i$ का समूचा समुदाय ही काल्पनिक संख्या परिवार हो गया।

हमारी कहानी यहीं समाप्त नहीं होती है। वास्तविक संख्या परिवार और काल्पनिक संख्या परिवार के सदस्यों के योग से एक संमिश्र संख्या परिवार का जन्म हुआ। यह नया परिवार भी अगणित है। यदि क और ख कोई दो वास्तविक संख्याएँ हैं तो i ख एक काल्पनिक संख्या होगी। क और i ख के योग से एक संमिश्र संख्या बनती है :

$$क + i ख$$

एक बात यहाँ देखने की है। वास्तविक संख्या परिवार में जोड़, बाकी, गुणा, भाग इत्यादि क्रियाएँ करने पर फल एक वास्तविक संख्या ही होता है। वस्तुतः, इन्हीं क्रियाओं को सार्थक करने के लिए ही हमने अपनी कल्पना को इतना विस्तृत किया। काल्पनिक संख्याओं के लिए यह सत्य नहीं है। दो काल्पनिक संख्याओं को जोड़ने और घटाने पर तो फल एक काल्पनिक संख्या होगा जैसे $२i + ३i = ५i$, परंतु दो काल्पनिक संख्याओं के गुणा करने और भाग देने पर एक वास्तविक संख्या का उदय होता है, जैसे :

$$२i \times ३i = २ \times ३ \times i \times i = ६ \times i^2 = ६ \times (-१) = -६$$

और

$$२i \div ३i = \frac{२i}{३i} = \frac{२ \times i}{३ \times i} = \frac{२}{३}$$

इस प्रकार जहाँ चारों मूलभूत गणितीय क्रियाओं के लिए वास्तविक संख्या क्षेत्र अपने आप में परिपूर्ण हैं, काल्पनिक संख्या क्षेत्र केवल जोड़ और बाकी के लिए परिपूर्ण है, गुणा और भाग के लिए नहीं। गुणा और भाग करते ही वास्तविक संख्याओं का आश्रय लेना होता है।

संमिश्र संख्या क्षेत्र की ऐसी शोचनीय स्थिति नहीं है। हमें संमिश्र संख्याओं पर चारों मूलभूत गणितीय प्रक्रिया करने पर एक अन्य संमिश्र संख्या ही उपलब्ध होगी, इसलिए इन क्रियाओं के लिए वह क्षेत्र भी अपने में परिपूर्ण है। परंतु यह ध्यान रहे कि वास्तविक संख्या परिवार और काल्पनिक संख्या परिवार दोनों ही संमिश्र संख्या परिवार के विशेष अंग मात्र हैं।

$$क = क + i \times ०$$
$$i ख = ० + i \times ख$$

कोई भी वास्तविक संख्या क वास्तव में एक संमिश्र संख्या है जिसका काल्पनिक भाग शून्य है तथा इसी प्रकार कोई भी काल्पनिक संख्या भी संमिश्र संख्या ही है जिसका वास्तविक भाग शून्य है।

संमिश्र संख्याओं को संख्या-संकल्पना में समाहित करने के बाद हम कह सकते हैं कि किसी भी घात के समीकरण का हल संमिश्र संख्या समुदाय में संभव है। इस प्रकार

$$क य^{न} + ख य^{न-१} + ग य^{न-२} + \ldots + घ = ०$$

जिसमें न एक पूर्णांक है, का हल सर्वदा संभव है। इसके साधारण उदाहरण तो $य^2 + १ = ०$, $य^2 + २ = ०$ में हम देख ही चुके हैं, पर सर्वव्यापक समीकरण में इस कथन की

उपपत्ति देना इस पुस्तक में संभव नहीं है।

इस विवेचन से हम पूर्ण रूप से आश्वस्त हो सकते हैं कि i एक काल्पनिक संख्या है और वास्तविकता से उसका कोई संबंध नहीं है। जैसे बचपन में छदामी लाल या भिखारी नाम रख देने के बाद चाहे आदमी करोड़पति भी हो जाए तो नाम सुनकर इसके विषय में मानसिक चित्र छदामी या भिखारी का ही बनेगा; बाद में करोड़पति का तथ्य ज्ञात होने पर ही उसकी कल्पना अच्छे कपड़े पहने हुए समृद्ध व्यक्ति के रूप में संभव होगी। नामकरण भावना को मूर्त्त रूप देने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यही हाल है काल्पनिक संख्या समुदाय का। यदि विचार करें तो √२ की अपेक्षा √—१ किस प्रकार कम वास्तविक है, यह स्पष्ट नहीं है। हाँ, √२ के साथ एक ही अधिक विशेषता है कि हम उसे सरल रेखा पर परिमेय संख्या परिवार के साथ-साथ निरूपित कर सकते हैं जो अभी तक √—१ के लिए संभव नहीं है। सरल रेखा पर अपरिमेय परिवार के निरूपण के बाद पूरा स्थान ठसाठस भर जाने से इसके लिए कोई गुंजाइश भी नहीं प्रतीत होती है। इसलिए यही कहना होगा कि काल्पनिक काल्पनिक ही है।

इस स्थल पर एक और विचारणीय तथ्य है। सरल रेखा तो हम सदा एक समतल पर ही खींच सकते हैं। और सरल रेखा की कोई चौड़ाई भी नहीं होती है। तो जरा देखें कि उस रेखा से कहीं डिग गए तो हम कहाँ पहुँचते हैं? हम चौरस समतल भूमि पर आ जाते हैं और हमें वहाँ भी अगणित बिन्दु मिलते हैं। यदि हम अपने ज्यामितीय ज्ञान को थोड़ा-सा दुहराएँ तो ध्यान आएगा कि '० क' हमारी सरल रेखा है, जिस पर वास्तविक
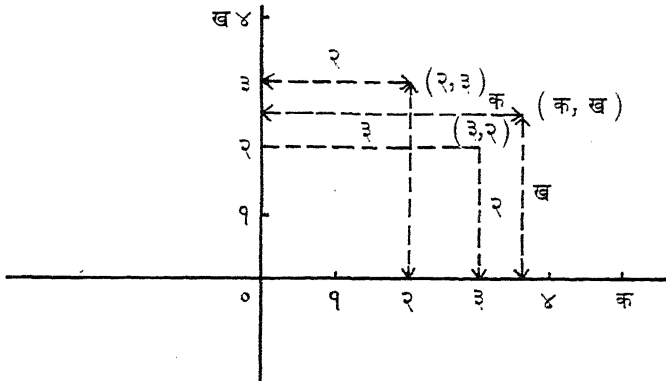
संख्याओं को निरूपित किया है। यह हमारा क-अक्ष है। ० से '० क' पर समकोण बनाता ख-अक्ष खींचा जा सकता है, वह भी क-अक्ष की भाँति एक सरल रेखा ही है। केवल इन दोनों रेखाओं की दिशा में ही अंतर है। ज्यामिति में हम '० ख' को भी '० क' की तरह बराबर भागों में विभाजित कर देते हैं। इस समतल में किसी बिन्दु का स्थान निर्धारित करने के लिए हम इन दो सरल रेखाओं से ही उसकी दूरी नापते हैं। परंपरा के अनुसार इन दूरियों को संख्या-युग्मों के रूप में लिखा जाता है जिसमें पहला अंक ख-अक्ष से और दूसरा अंक क-अक्ष से दूरी निर्देश करता है। इस प्रकार यदि इस समतल पर य कोई एक बिन्दु है

और उसे हम (३, २) लिख कर निर्धारित करते हैं तो इसमें पहिली संख्या ३ का अर्थ है क-अक्ष पर दूरी और २ का अर्थ है ख-अक्ष पर दूरी। (३, २) और (२, ३) दो भिन्न विन्दु होंगे। यदि क और ख कोई दो वास्तविक संख्याएँ हैं तो युग्म (क, ख) इस समतल में एक और केवल एक ही विन्दु को निश्चित करता है।

इस प्रकार हमने क-अक्ष और ख-अक्ष दोनों पर ही वास्तविक संख्याओं का निरूपण मान लिया है और दो वास्तविक संख्याओं को एक क्रम में लिख कर समतल के बिन्दुओं को परिभाषित किया है। इन संख्याओं के क्रम को बड़े संभाल कर रखना होता है क्योंकि क्रम के बदलने से विन्दु का स्थान ही परिवर्त्तित हो जाता है। वास्तव में दो विभिन्न रेखाओं पर एक ही संख्या को निरूपित कर यह अत्यावश्यक हो जाता है कि अपने लिखने में या बोलने में हम सदा यह स्पष्ट कर दें कि हम कौन-सी रेखा की संख्या को बता रहे हैं अन्यथा स्थिति भ्रमोत्पादक हो सकती है।
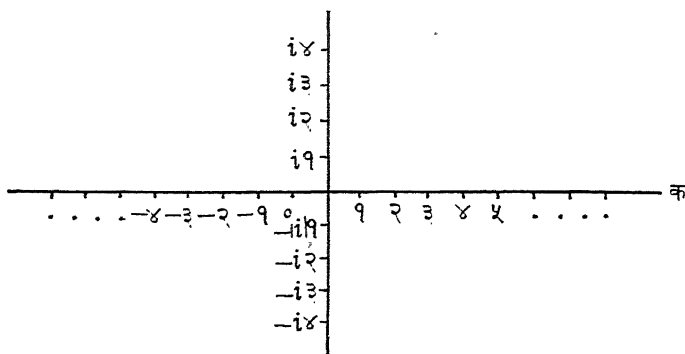
इसी कठिनाई को दूर करने के लिए अब मान लीजिए कि हम क-अक्ष पर वास्तविक संख्या को निरूपित मानें और ख-अक्ष पर काल्पनिक संख्या को। इस स्थिति में क-अक्ष पर लिखी संख्या तो १, २, ३, ... इत्यादि वही रहेगी, पर ख-अक्ष पर १, २, ३, . . . के स्थान पर i१, i२, i३, ... इत्यादि लिखना होगा। य बिन्दु के स्थान-निर्धारण के लिए (२, ३) के वजाय (२, i३) लिखा जाएगा। अब चाहे हम (२, i३) या (३i, २) लिख दें, तो कोई अंतर नहीं पड़ेगा, क्योंकि वास्तविक संख्या कहीं भी लिखी हो, वह क-अक्ष पर दूरी व्यक्त करेगी और काल्पनिक संख्या सदा ख-अक्ष पर। सहूलियत के लिए (२, i३) को हम २+i३ लिख देते हैं। हमारे समतल का कोई भी बिन्दु जिसे हम (क, ख) से परिभाषित करते हैं, उसे इस नई प्रणाली में क+iख लिख सकते हैं। इस प्रकार लिखने में अब क्रम को ध्यान में रखने की कोई आवश्यकता नहीं रही, क्योंकि

$$\text{क} + i\,\text{ख} = i\,\text{ख} + \text{क}$$

उपर्युक्त निरूपण विधि से

(१) क-अक्ष के विन्दु वास्तविक संख्या निरूपित करते हैं।
(२) ख-अक्ष के विन्दु काल्पनिक संख्या निरूपित करते हैं।
(३) क-ख समतल के विन्दु संमिश्र संख्या निरूपित करते हैं।

वामावर्त्तन अथवा गुणा ?

संमिश्र संख्याओं के जोड़, बाकी, गुणा, भाग का समतल ज्यामिति में **क्या अर्थ** है, इसका विश्लेषण हम नहीं करेंगे। यहाँ इतना कथन मात्र समुचित होगा कि इन सब क्रियाओं की ज्यामितीय व्याख्या संभव है। हम गुणन क्रिया का दृष्टांत के रूप में अध्ययन करेंगे। यदि पूर्णांक १ में i का क्रमशः गुणा करते जाएँ तो क्या प्राप्त होगा ?

$$१ \times i = i$$

$$i \times i = -१$$

$$-१ \times i = -i$$

$$-i \times i = १$$

इस प्रकार चार बार i से गुणा करने पर हम पुनः मूल संख्या पर आ जाते हैं। इसी को यदि ज्यामितीय समतल पर निरूपित करें तो क्या होगा ?

पूर्णांक १ वास्तव में क-अक्ष पर अवस्थित बिन्दु य (१, ०) को निरूपित करता है और ख-अक्ष पर अवस्थित बिन्दु र (०, १) को। $१ \times i$ अर्थात् १ को i से गुणा करने पर बिन्दु य (१, ०) के स्थान पर हमें बिन्दु र (०, १) प्राप्त हुआ। इस प्रकार यद्यपि नया बिन्दु र मूल बिन्दु ० से उतनी ही दूरी पर है, पर उससे उसकी दिशा भिन्न हो गई है। पहले य पूर्व में था, i से गुणा होने पर उसका स्थान परिवर्त्तन उत्तर की ओर हो गया। इसी को हम गणितीय भाषा में कह सकते हैं कि बिन्दु य केन्द्र बिन्दु के चारों ओर वामावर्त्त दिशा में एक समकोण तक घूर्णित हो गया।

इस नई संख्या i अथवा (०, १) को, जिसे हम बिन्दु र से निरूपित करते हैं, यदि पुनः i से गुणा किया जाय तो क्या यह बिन्दु पुनः वामावर्त्त दिशा में एक समकोण से घूर्णित हो जाएगा ? $i \times i = -१$ जो क-अक्ष पर बिन्दु ल (−१, ०) को निरूपित करता है। इस प्रकार पुनः i से गुणा करने पर बिन्दु का विस्थापन उसी प्रकार हुआ—मूल बिन्दु से दूरी अपरिवर्त्तित रही, पर वामावर्त्त दिशा में एक समकोण से घूर्णित हो गया।
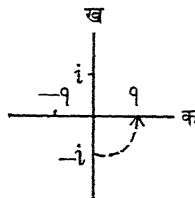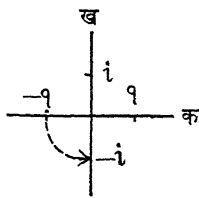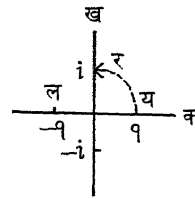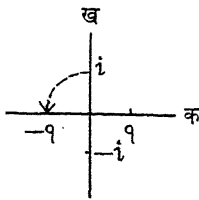
साथ के चित्र से स्पष्ट है कि पुनः i से गुणा करने पर वही फल होता है और चार बार गुणा करने पर समतल में हमारा बिन्दु प्रथम स्थान पर आ पहुँचता है। दूसरी ओर अंकों की गुणन क्रिया में भी गुणनफल मूल अंक १ हो जाता है। इस प्रकार गणितीय क्रिया और ज्यामितीय क्रिया में कोई असंगति नहीं पैदा होती है। और i से गुणन का ज्यामितीय अर्थ किसी बिन्दु का मूल-बिन्दु से दूरी अपरिवर्त्तित रखते हुए वामावर्त्त दिशा में एक समकोण से घूर्णन होता है।

इससे अधिक विस्तार में इस विषय पर चर्चा करने के लिए यहाँ स्थान नहीं है। हाँ, सीधी सरल रेखा पर से पैर फिसलने पर हम संमिश्र संख्या समुदाय की बस्ती में पहुँच गए, जहाँ के नियम कुछ विचित्र अवश्य हैं जैसे i से गुणा का अर्थ है वामावर्त्त। संमिश्र संख्याओं का गणित अपने आप में एक अतिमनोरम वाटिका है। न जाने कितने गणित के विद्यार्थियों ने उसी की खोज में और उसकी सौन्दर्य-उपासना में अपना जीवन सार्थक माना। हम तो एक किनारे से ही उसकी सौन्दर्य कल्पना कर गणित जगत के अन्य उपवनों में विचरण करेंगे।

अध्याय ६

बृहत् संख्या

बीरबल और आकाश के तारे

कहते हैं कि शाहंशाह अकबर ने एक बार अपनी सभा में प्रश्न किया कि 'आकाश में कितने तारे हैं ?' कोई सभासद् इसका उत्तर न दे सका। बीरबल ने उत्तर देने के लिए एक दिन का अवकाश चाहा। संध्या को वह घर गए और उन्होंने काग़ज़ का एक साफ ताव उठाया। एक सूई से उस पर जितने छेद हो सकते थे किए।

दूसरे दिन जब सभा भरी तो बीरबल अनुपस्थित थे। सभी उनके आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। उनके आगमन के विलम्ब के लिए कई अनुमान लगाए जा रहे थे। कुछ लोग सोच रहे थे कि शायद तारों की गणना में बिना नींद गुज़ारी रात के कारण सवेरे आँख लग गई हो। अथवा असफलता के कारण मुँह छुपा रहे हों। पर कुछ समय में ही बीरबल अंग रक्षकों के साथ सज-धज कर दरबार में उपस्थित हुए। पाँच अनुपम सुंदरियाँ कीमती मखमल के कपड़े से ढके हुए एक सोने के थाल को सामने लिए थीं। वह थाल बादशाह के सामने रख दिया गया। पूरी सभा में सन्नाटा था। सभी विस्मय तथा अपेक्षा की स्थिति में थे। बीरबल ने यह क्या जाल रचा है ? किसी की कुछ समझ नहीं आ रहा था। इस गम्भीर और शांत वातावरण को भेदते हुए बादशाह ने तीक्ष्ण और दृढ़ स्वर में पूछा, "बीरबल, मैं उपहार नहीं चाहता हूँ; मेरे प्रश्न का उत्तर दो।"

बीरबल ने कहा, "जहाँपनाह, उत्तर आपके सामने पेश है।"

अकबर ने इशारा समझ लिया। उसने अपनी तलवार की नोक से थाल के आवरण को एक ओर हटा दिया। थाल में एक काग़ज़ था। उसे अकबर ने उठा लिया; पर उस पर तो कुछ भी नहीं लिखा था। एक लमहे को सभा में फिर सन्नाटा छा गया। कहीं बीरबल जहाँपनाह के निरक्षर होने की खिल्ली तो नहीं उड़ा रहे थे। सभासद् एक दूसरे की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। बादशाह ने पूछा, "बीरबल यह क्या है ?" बीरबल ने कहा, "जहाँपनाह, आपके प्रश्न का उत्तर इसी काग़ज़ में है। आसमान में उतने ही तारे हैं जितने इस काग़ज़ में सूराख़।"

बादशाह ने उस काग़ज़ पर बने छेदों को गिनाने की कोशिश की अथवा नहीं, इसका कुछ पता नहीं। परंतु यह कहानी बाल-श्रोताओं में एक आश्चर्य, उत्सुकता और

बीरबल की सहज बुद्धि के लिए प्रशंसा की भावना पैदा कर देती है। इसके पीछे एक गणितीय तत्त्व भी छुपा हुआ है। आकाश के तारों को 'नहीं गिना जा सकता' और काग़ज़ के ताव पर बने छेदों को भी 'नहीं गिना जा सकता', इसलिए यह मान लिया गया कि दोनों की संख्या बराबर होगी। यदि हम विश्वास नहीं करते तो 'गिन कर देख लीजिए'। परंतु यहाँ 'नहीं गिना जा सकता' का शाब्दिक अर्थ नहीं लगाया जा सकता है। 'नहीं गिना जा सकने' का अर्थ केवल इतना ही है कि हम जितना श्रम और प्रयास गिनने की क्रिया पर लगाना चाहते हैं या लगा सकते हैं उसके द्वारा यह क्रिया संभव नहीं है। इसीलिए हम बोलचाल की भाषा में कह देते हैं कि 'नहीं गिना जा सकता'।

बादशाह और बीरबल दोनों ही इसी बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर रहे थे। नहीं तो कोई कारण नहीं था कि बादशाह उस काग़ज़ पर बने सूराखों की संख्या गिना कर बीरबल से अपना कथन सिद्ध करने के लिए न कहता। आकाश में भी साधारणतः किसी समय लगभग ३००० तारे ही आँखों से देखे जा सकते हैं।

बृहत् और असंख्य

हम देख चुके हैं कि बड़ी संख्याओं का एक अपना ही आकर्षण होता है। जनजातियों में तीन से अधिक की संख्या को 'बहुत' कह देते हैं। बाल-मन्दिर के नन्हे-मुन्नों से अगर पानी बरसते में पूछें कि बताओ कि दिल्ली शहर पर कुल कितनी बूँदें गिरेंगी तो यदि बहुत सोच विचार कर गंभीरतापूर्वक कोई बालक उठकर यह बताए कि 'सौ' तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। उसकी कल्पना में 'सौ' का अर्थ है कि एक ऐसी संख्या जो बहुत, बहुत बड़ी है परंतु इतनी बड़ी जिसका वे अंदाज़ा लगा सकते है। यदि हम वही प्रश्न थोड़ा-सा घुमा कर पूछें कि 'अच्छा यह बताओ कि तुम्हारे स्कूल के अहाते में कितनी बूँदें गिरेंगी और पूरे दिल्ली शहर में कितनी गिरेंगी ?' इस प्रश्न से उन्हें सौ से भी किसी बड़ी संख्या के होने का आभास होने लगेगा क्योंकि उनकी दृष्टि में स्कूल के अहाते में भी 'सौ' बूँदें गिरेंगी। परंतु दिल्ली तो बहुत बड़ा है इसलिए अवश्य ही अधिक बूँदें गिरनी चाहिए। परंतु इस भावना को व्यक्त करने के लिए उनके पास शब्द नहीं होंगे। हाँ, एक बात अवश्य होगी। कदाचित् वे यह नहीं कहेंगे कि ये बूँदें अगणित हैं। और इस मामले में वे उन बहुत से वैज्ञानिकों से अच्छे होंगे जो एक अरब, खरब या इसी प्रकार की बड़ी संख्याओं को 'असंख्य' कह देते हैं।

गणना करना एक निश्चयात्मक कार्य है। या तो हमारी गणना ठीक है या ग़लत। 'लगभग ठीक है' का कोई अर्थ नहीं है, वह यदि ग़लत है तो ग़लत है, चाहे थोड़ी हो या अधिक। ठीक और ग़लत के बीच की कोई स्थिति नहीं होती। यह उसी प्रकार है जैसे हम स्टेशन पर रेल पर चढ़ने के लिए जाएँ। यदि समय से पहुँचे तो गाड़ी मिल गई। समय पर न पहुँचने पर यदि कोई कहे कि 'ज़रा-सी देर हो गई' तो ऐसी स्थिति में हम कह सकते हैं कि 'आप भोजन और विश्राम करने के बाद भी आते तो भी वही स्थिति होती।'

एक बृहत् संख्या बृहत् है परंतु असंख्य नहीं। यह भेद हमें निश्चित् रूप से समझ

लेना चाहिए। वृहत् संख्या कितनी भी बड़ी हो सकती है, पर वह एक निश्चित संख्या होती है। दुर्भाग्यवश गणित और विज्ञान में इतनी उन्नति होने के बावजूद बोलचाल की भाषा में शब्दों का शिथिल प्रयोग ही प्रचलित है। कवियों की बात चाहे तो हम छोड़ सकते हैं—उनके लिए तो लगभग ३००० की संख्या के बाद ही असंख्य प्रारंभ हो जाता है। बहुत-सी कविताओं में चाँदनी रात के साथ 'असंख्य' तारों का भी वर्णन आ ही जाता है। परंतु साधारण लोग, यहाँ तक कि वैज्ञानिक भी असंख्य का खुला प्रयोग करते हैं, संख्या चाहे अपेक्षाकृत छोटी ही क्यों न हो।

प्राचीन भारत की कुछ बड़ी संख्याएँ

जिस प्रकार संख्यांक पद्धति में भारत विश्व का गुरु रहा है, उसी प्रकार भारत में प्राचीन काल से ही बड़ी संख्याओं के प्रति असीम रुचि रही है। संप्रति बालक को इकाई, दहाई, सैकड़ा, हज़ार, दस हज़ार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़, अर्बुद, दस अर्बुद, खरब, दस खरब, नील, दस नील, पद्म, दस पद्म, शंख, दस शंख, महाशंख सिखाए जाते हैं। इस प्रकार महाशंख हुआ :

$$१,००,००,००,००,००,००,००,००,००० = १०^{१९}$$

पश्चिम में आज भी बड़ी संख्या बिलियन ($१,०००,०००,००० = १०^{९}$) और ट्रिलियन ($१,०००,०००,०००,००० = १०^{१२}$) तक ही समाप्त हो जाती है। प्रतीत ऐसा होता है कि हमारा दर्शन जिसमें अनादि और अनंत की कल्पना है, जिसमें मनुष्यों के अनेक जन्मों की कल्पना है तथा जिसमें संपूर्ण भूत जगत के प्राणियों में एक ही आत्मा के दर्शन किए हैं, उसने ऋषियों की कल्पना को पंख दे दिए, जिससे वे अबाध हो कर कल्पना जगत में बहुत ऊँचे उड़ सके ।

सुप्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ 'ललित विस्तार' में हमें सबसे पहले एक बहुत बड़ी संख्या का ज़िक्र मिलता है । यह ग्रंथ प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व लिखा गया था। इसमें गणितज्ञ अर्जुन और बोधिसत्त्व का सम्वाद कुछ इस प्रकार है :

गणितज्ञ अर्जुन ने बोधिसत्त्व से पूछा—नवयुवक ! क्या तुम कोटि के आगे शतोत्तर गणना जानते हो ?

बोधिसत्व—हाँ, जानता हूँ ।

अर्जुन—तो बताओ कोटि के आगे की गणना किस प्रकार है ?

बोधिसत्व—सौ कोटि अयुत कहलाता है; सौ अयुत, नियुत; . . . . . सौ विभुतंगभा, तल्लक्षणा ।

इस प्रकार उस ग्रंथ में तल्लक्षणा सबसे बड़ी संख्या है जो लिखने में एक के बाद तिरपन शून्य लगाकर व्यक्त की जा सकती है :

$$१,००० = १०^{५३}$$

काच्चायन पाली व्याकरण में इससे भी अधिक बड़ी संख्याएँ आई हैं। उसमें

कोटि को गुणक माना गया है। कोटि × कोटि = पकोटि, पकोटि × पकोटि = कोटिप्पकोटि इत्यादि। इस प्रकार कोटि, पकोटि, कोटिप्पकोटि, नहुत, निन्नहुत, अक्षोमिनि, बिन्दु, अब्बुद, निरब्बुद, अहह, अबब, अतत, सोगंधिक, उप्पल, कुमुद, पुंडरीक, पथुम, कथान, महाकथान और असंख्येय। ध्यान देने योग्य यह है कि अंतिम संख्या असंख्येय है, असंख्य नहीं। असंख्येय का मान $१०^{१४०}$ होता है अर्थात् १ के बाद १४० बार शून्य लिखने होंगे। वास्तव में यह कल्पना बहुत ही बड़ी है।

जैन ग्रंथों में एक अन्य बहुत बड़ी संख्या काल को सूचित करने वाली है जिसका मान $(=८,००,०००)^{२८}$ अथवा $१०^{१९३}$ के बराबर का है। यह 'शीर्ष प्रहेलिका' काल को सूचित करती है।

जीवों की संख्या के विषय में भी कुछ बड़ी संख्याओं का उल्लेख है। अनुयोग सूत्र में लिखा है: '(लोक में जीवों की संख्या) कोटि-कोटि आदि संज्ञाओं की सहायता से (अंकों में) व्यक्त करने पर २९ स्थान लेती है. . . यह वह संख्या है जो २ से ९६ बार विभाजित की जा सकती है।'

इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि स्थान मान का ज्ञान होने से इन लोगों ने निर्बाध रूप से शून्य लगाने प्रारंभ कर दिए और मनमानी संख्याएँ लिखने लगे। वे लोग इन संख्याओं के अन्य रूप और वास्तविक आकारों से भलीभाँति परिचित थे। दो हज़ार वर्ष पूर्व का यह कथन कि $२^{९६}$ को लिखने पर २९ स्थान लगेंगे एक बहुत बड़ी गणितीय उपलब्धि है। हमारा यह कथन आगे विवरण से और भी स्पष्ट होगा।

ऊपर लिखी बृहत् संख्याएँ जैसे $२^{९६}$, $१०^{५३}$ अथवा $१०^{१९३}$ कितनी बड़ी हैं, इसका सहज अनुभव नहीं हो सकता। इस विषय में हम उसी स्थिति में हैं जैसे कि एक गाँव वाला जिसने कभी सौ रुपए नहीं देखे। अगर हम उससे पूछें कि वह करोड़ रुपये मिलने पर क्या करेगा, तो वह क्या उत्तर देगा? संभव है कि हज़ार रुपये तक तो वह अपनी कल्पना शक्ति को दौड़ाए, परंतु लाख का सोचना संभव नहीं होगा और करोड़ का असंभव ही। हमें भी संभवतः करोड़ और अरब में कोई विशेष अंतर नहीं प्रतीत होगा। मैंने एक मित्र से यही प्रश्न किया तो उसने कहा, 'भाई मुझे करोड़ ही काफ़ी है, अरब की क्या आवश्यकता है?' अस्तु, गणित में तो हम ऐसा कह कर पार नहीं पा सकते। आइए, देखें कि हमने अंकों के साथ जो खिलवाड़ किया है, उसका वास्तविक अर्थ क्या है।

विश्व में कितने रेत के कण समा सकते हैं?

इसके लिए हम पुनः अपनी दृष्टि अतीत की ओर डालेंगे। इस बार साइरेक्यूज़ के महान दार्शनिक आर्कमेडीज़ की बात को फिर ध्यान से सुनेंगे। उन्होंने अनंत और विश्व के विषय में बात करते हुए वहाँ के सम्राट् से कहा, "हे सम्राट् गेलान, कुछ लोग कहते हैं कि रेत के कणों की संख्या अनंत है। रेत से मेरा मतलब साइरेक्यूज़ नगर के चारों ओर मिलने वाली या सिसली की रेत से ही नहीं है। दुनिया के सभी प्रदेशों, चाहे वहाँ मनुष्य रहता हो अथवा नहीं, की रेत इसमें शामिल है। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो इसे अनंत

तो नहीं मानते, पर यह कहते हैं कि अभी तक ऐसी संख्या नहीं मालूम है जो इन रेत के कणों की संख्या के बराबर हो या बड़ी हो।" उसने आगे कहा कि, "मैं एक ऐसी संख्या लिखूँगा जो उन रेत के कणों की संख्या से भी बढ़कर हो, जो पृथ्वी को केन्द्र मान कर और तारों तक की दूरी के अर्ध-व्यास मान कर बनाए गए गोले में समा सकते हों।"

आर्कमेडीज़ ने उस समय के ज्ञान के आधार पर गणना के लिए रेत और बड़े गोले के आकार संबंधी कल्पना कुछ इस प्रकार की। उसने रेत के कण को इतना छोटा माना कि एक पोस्ते के दाने में १०,००० कण समा जाएँ। ४० पोस्ते के दानों के व्यास को एक अंगुल माना। इन दोनों संख्याओं के विषय में हमें भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती है। इसके बाद पृथ्वी के केन्द्र से तारों तक की दूरी उसने पृथ्वी के अर्ध-व्यास का १०,००,००,००० गुना माना। पृथ्वी के व्यास का अनुमान उस समय १०,००,००० स्टेडिया अथवा लगभग १,२५,००० मील था। यह अनुमान पृथ्वी के वास्तविक व्यास ७,९१७.७८ मील से कहीं अधिक है। इसलिए यह अनुमान रेत के कणों की संख्या को बढ़ा ही सकते हैं, घटा नहीं सकते। हिसाब लगाने पर रेत के कणों की संख्या $१०^{६३}$ से कुछ कम बैठी।

देखने में $१०^{६३}$ कितना छोटा-सा अंक दिखाई देता है, पर १,२५,००,००,००,००,००० मील व्यास वाले गोले में समाने वाले रेत के कणों की संख्या इससे अधिक नहीं होगी।

और इस गोले का घनफल हमारी पृथ्वी के घनफल से कितना अधिक है? केवल ४,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००० गुना अर्थात् ४×१०^{२७} गुना।

अब शायद हमें छोटी-सी दिखाई देने वाली बड़ी संख्याओं के आकार का कुछ अहसास हो रहा होगा। आइए, अब आधुनिक समय की कुछ समस्याओं को देखें। शायद उनमें और भी बड़े अंकों की आवश्यकता हो।

कहते हैं कि इस विश्व का मूलभूत आधार परमाणु है। परमाणु कई प्रकार के होते हैं। उनमें हाइड्रोजन परमाणु सबसे छोटा होता है। इस हाइड्रोजन परमाणु का आकार $१०^{-८}$ सेंटीमीटर का होता है अथवा एक सेंटीमीटर में $१०^{८}$ (अर्थात् १०,००,००,००० दस करोड़) हाइड्रोजन परमाणु पास-पास सटाकर रखे जा सकते हैं। प्रोफ़ेसर एडिंगटन ने अपनी खोजों के आधार पर एक प्रवचन में बताया कि:

'मेरे विचार में सम्पूर्ण विश्व में १५,७४७,७२४,१३६,२७५,००२,५७७,६०५,६५३,९६१,१८१,५५५,४६८,०४४,७१७,९१४,५२७, ११६, ७०९, ३६६, २३१, ४२५, ०७६,१८५,६३१,०३१,२९५ प्रोटॉन हैं और इतने ही इलेक्ट्रॉन हैं।' अर्थात् इस संख्या को यदि दूना कर दें तो विश्व में पूरे परमाणुओं की संख्या ज्ञात हो जाएगी। देखें यह क्या संख्या है? छोटे में लिखने पर आती है $२ \times १३६ \times २^{२५६}$ अथवा यह ३२×१०^{७८} से थोड़ी कम होगी। हमारी दृष्टि में शायद यह छोटी-सी संख्या प्रतीत होती है, पर विश्व के संपूर्ण परमाणुओं की संख्या से बड़ी है।

हमें यह मालूम है कि एक परमाणु और दूसरे परमाणु में बहुत अधिक फ़ासला

होता है। वास्तव में यह विश्व कितना खोखला है इसका हम विश्वास भी नहीं कर सकते हैं। यदि एक हाथी के शरीर के सभी परमाणुओं को इकट्ठा कर दिया जाए तो उसका आकार सूई की नोक के बराबर भी नहीं होगा। यह तो हुआ हमारे पृथ्वी पर के परमाणुओं का हाल। बाहर तारों के बीच जो स्थान दिखाई देता है, उसमें तो इनका घनत्व एक परमाणु प्रति घनफुट भी नहीं मिलता है। अब हम कहें कि जैसे आर्कमेडीज़ ने रेत के कणों का हिसाब लगाया, उसी प्रकार यदि हम अपने ज्ञात विश्व में परमाणु ठसाठस भर दें तो कितने परमाणु आएँगे। कोई खास बड़ी संख्या नहीं—यही लगभग $१०^{११०}$ । इस संख्या की शीर्ष प्रहेलिका ($१०^{१९३}$) से तुलना करना ही व्यर्थ है, वह असंख्येय ($१०^{१४०}$) के सामने भी नगण्य-सी ही है।

ये सभी उदाहरण देने का एक उद्देश्य है यह बताना कि चाहे कितनी अधिक चीज़ें क्यों न हो, जब तक कि वे परिमित हैं, हम उन्हें एक निश्चित संख्या द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। हमने देखा कि न केवल कवि के 'असंख्य' तारे गिने जा सकते हैं वरन् और भी अनेक तत्त्व जो हैं और जो नहीं हैं, वे भी गिने जा सकते हैं या उनका अनुमान लगाया जा सकता है। कहते हैं कि एक जाने माने वैज्ञानिक ने एक बार कहा था कि उनका विश्वास है कि संसार के सभी वृक्षों की सभी पत्तियों के छिद्र (जिनसे वे साँस लेते हैं) निश्चित ही असंख्य होंगे। ऊपर के वर्णन को पढ़ने के बाद यदि हम ऐसी सभा में अपने को पाएँ तो हँसी न रोक सकेंगे। यह वैज्ञानिक अपने विषय में अद्वितीय रहा हो, पर गणित में कुछ कमज़ोर अवश्य होगा।

गूगलप्लेक्स

हमारी हिन्दू गणना के 'शीर्ष प्रहेलिका' और 'असंख्येय' तो प्राचीन पुस्तक में ही दबे पड़े हैं, इनका पश्चिमी जगत को बहुत कम ज्ञान है। इसीलिए जब उनके यहाँ एक बड़ी संख्या को नाम देने की बात आई तो एक वैज्ञानिक ने एक बालक से एक बहुत बड़ी संख्या के लिए नाम सोचने के लिए कहा। उसने इस संख्या को १ के बाद सौ शून्य लगा कर बनाने का अनुमान किया। बालक अपनी सहज बुद्धि में आश्वस्त था कि यह संख्या अवश्य ही निश्चित और गणनीय होगी। उसने उसे नाम दिया 'गूगल' पर साथ ही एक और बड़ी संख्या भी उसने बताई जिसका नाम रखा 'गूगलप्लेक्स'। उसने कहा कि गूगलप्लेक्स गूगल से बहुत ही बड़ी है पर है निश्चित और गणनीय। पहले तो उसने कहा कि 'गूगलप्लेक्स' वह संख्या होनी चाहिए जो १ के बाद इतने शून्य रखने से बनती हो जितने शून्य लिखने में मनुष्य थक जाए। परंतु प्रश्न यह आया कि प्रत्येक व्यक्ति की शून्य लिखने की क्षमता भिन्न होगी। भारत केसरी चंदगीराम पहलवान में दम अधिक है इसीलिए वह बहुत देर में थकेंगे लेकिन इसी से हम उन्हें रामानुजन से बड़ा गणितज्ञ नहीं मान लेंगे। 'गूगलप्लेक्स' को इसलिए एक ऐसी संख्या माना गया जो १ के सामने गूगल शून्य रख कर बने।

वास्तव में यह बहुत बड़ी संख्या है। गूगल को गूगल से गुणा करने पर जो संख्या

बनेगी उससे भी वह बहुत बड़ी है। गूगल × गूगल में तो १ के बाद केवल २०० शून्य ही रखे जाएँगे जबकि गूगलप्लेक्स में तो गूगल शून्य हैं। इस संख्या के बड़े होने का अंदाज़ हम उसे लिखने का प्रयास करके लगा सकते हैं। यदि हम १ के बाद शून्य लगा कर इस संख्या को काग़ज़ पर लिखना चाहें तो हमारे पास काफ़ी स्थान नहीं होगा। हिसाब लगाया गया तो मालूम हुआ कि यदि एक-एक इंच पर एक शून्य लगाया जाए और यदि हम यहाँ से लेकर सुदूर नीहारिकाओं में होते हुए पूरे विश्व में शून्य लगाते हुए भ्रमण करें तब भी इस संख्या को लिखने के लिए स्थान पर्याप्त न होगा।

हम यह कह सकते हैं कि जब यह संख्या लिखी ही नहीं जा सकती तब ऐसी संख्या से लाभ? बात ऐसी नहीं है—१ के बाद शून्य लगाकार लिखना शुरू करें तो इसका लिखना असंभव है पर अन्य लिखने की विधियाँ तो उपलब्ध हैं। हम पहले भी देख चुके हैं कि बेचारे यूनानी और रोमी लोग तो अपनी संख्या पद्धति में और भी छोटी संख्याएँ नहीं लिख सकते थे। लिखने की कठिनाई से संख्या की उपयोगिता तो समाप्त नहीं होती। और इसलिए संख्या को लिखने के लिए सुगम विधियाँ भी अपनानी पड़ती हैं। देखें क्या है यह संख्या गूगलप्लेक्स?

गूगल = १०,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,
००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,
००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,
००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,०००

$$= १०^{१००}$$

$$= १०^{१०^{२}}$$

और गूगलप्लेक्स?

एक के बाद गूगलशून्य अर्थात्

$$१० \text{ का गूगलघात} = १०^{\text{गूगल}} = (१०)^{१०^{१००}} = १०^{१०^{१०^{२}}}$$

है न गणित का कमाल! जिसके लिए हमें नीहारिकाओं में भी स्थान नहीं मिला, उसे केवल तीन बार १ और चार बार ० लिख कर लिखना संभव हो गया।

पुस्तक के उड़ने की संभावना

यहाँ तक तो ठीक है, पर कोई यह कहता है कि इससे लाभ? ऐसा प्रश्न निश्चित ही गणित न जानने वाला ही कर सकता है। प्रोफ़ेसर न्यूमन ने एक वैज्ञानिक समस्या, जिसमें इस संख्या का उपयोग हो सकता है, कुछ इस प्रकार प्रस्तुत की :

यह पुस्तक जो हमारे हाथ में है, कार्बन, नाइट्रोजन तथा अन्य तत्त्वों से बनी हुई है। यदि हमसे कोई यह पूछे कि 'इस पुस्तक में कितने अणु होंगे?' तो हम कहेंगे कि अवश्य

ही एक निश्चित संख्या होगी और हम यह भी कहेंगे कि गूगल के मुकाबले वह संख्या अति लघु होगी। अब हम कल्पना करें कि यह पुस्तक एक डोरी से बँधी हुई है और डोरी का एक सिरा हम हाथ से पकड़े हुए हैं और किताब लटक रही है। अब बताइए कितने समय में यह पुस्तक अपने आप ही कूद कर हमारे हाथ में आ जाएगी ? क्या ऐसा होना संभव भी है ? एक उत्तर हो सकता है 'नहीं, ऐसा तब तक असंभव है जब तक किसी बाहरी शक्ति का प्रयोग न हो।' परंतु यह उत्तर ठीक नहीं है। इसका सही उत्तर है कि 'ऐसा होना लगभग अवश्यंभावी है; संभवतः गूगलप्लेक्स वर्षों के पूर्व ही कभी अवश्य ही यह पुस्तक उड़ कर हमारे हाथ में अपने आप ही आ जाएगी, ऐसा शायद कल ही हो जाए।'

प्रोफ़ेसर न्यूमन के इस उत्तर को पूर्ण रूप से समझाना तो यहाँ संभव न होगा क्योंकि उसके लिए भौतिक रसायन, सांख्यिकीय यांत्रिकी, और संभाव्यता सिद्धांत सभी का ज्ञान आवश्यक है। थोड़े में इस कथन का निम्न स्पष्टीकरण है। अणु सदा ही गतिशील है जिसे भौतिक शास्त्र में ब्राउनियन संचलन कहते हैं। अणुओं के स्थिर हो जाने का अर्थ है तापमान का परम शून्य हो जाना। परंतु परम शून्य तापमान न केवल कहीं भी नहीं है, परंतु उसे प्राप्त करना भी संभव नहीं है। इस पुस्तक के चारों ओर वायु-मण्डल में जो अणु हैं, वे सभी गतिशील हैं और सतत् रूप से इस पुस्तक से टकराते रहते हैं। इस समय जब हम इस पुस्तक को पकड़े हुए हैं, उनका यह टकराना ऊपर और नीचे दोनों ओर से लगभग बराबर मात्रा में है। इसीलिए इस टकराहट का उस पर कोई प्रभाव नहीं है। पृथ्वी की गुरुत्त्वाकर्षण शक्ति अपनी प्रकृति के अनुसार इस पुस्तक को नीचे की ओर खींच ही रही है। इसीलिए पुस्तक के हाथ की ओर अपने आप उठने की क्रिया के लिए हमें शांतिपूर्वक उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करनी होगी। वह अवसर तब होगा जब इन अणुओं में से अधिकांश इस पुस्तक के नीचे से टकराएँ और ऊपर से टकराने वाले अणु लगभग नगण्य हो जाएँ। उस समय इनकी नीचे से टकराने की शक्ति गुरुत्त्वाकर्षण से अधिक हो जाएगी। इस प्रकार जब इस शक्ति की गुरुत्त्वाकर्षण पर विजय हो जाएगी, पुस्तक स्वयं ही हमारे हाथ में आ जाएगी।

यह तो ठीक है कि यह घटना संभवतः गूगलप्लेक्स वर्षों में हो जाएगी, पर हम पूछ सकते हैं कि इस घटना के किसी एक निश्चित समय जैसे आज इसी समय घटित होने की क्या संभावना है ? यह संभावना $\frac{१}{\text{गूगल}}$ और $\frac{१}{\text{गूगलप्लेक्स}}$ के बीच होगी। पुस्तक के निश्चय ही अपने आप हाथ में आ जाने के लिए हमें गूगल से गूगलप्लेक्स वर्षों तक इंतज़ार करना पड़ेगा।

इस अलौकिक-सी घटना के लिए गूगलप्लेक्स वर्ष लगेंगे। इस अवधि में हमारा तो कहना ही क्या हमारी पृथ्वी भी चंद्रमा की भाँति मृत हो गई होगी, हो सकता है उल्काओं और धूमकेतुओं की भाँति टूट-टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो गई हो। पूरे ब्रह्मांड का भी उस समय क्या रूप होगा, कुछ नहीं कहा जा सकता।

परंतु वस्तुतः वास्तविक आश्चर्य पुस्तक के अपने आप उठने में नहीं है, वरन् इस बात में है कि हम गणित की सहायता से भविष्य में पहुँच कर यह निश्चयपूर्वक

कह सकते हैं कि यह घटना संभवत: कब होगी, अर्थात् आज और गूगलप्लेक्स वर्षों के बीच कभी भी ।

कुछ जानी-पहचानी राशियाँ

अब तक संभवत: गूगल और गूगलप्लेक्स की बात सुनते-सुनते थक जाना स्वाभाविक है, विशेषकर जबकि हमें मालूम है कि साधारण जीवन की बातों से इनका कोई विशेष संबंध नहीं। यह तो बुद्धि-विलास है और वह भी अत्यंत अमूर्त्त कोटि का। आइए, अब घर के नज़दीक और थोड़ी जानी-पहचानी समस्याओं को देखें। हमारा निकटतम तारा प्रॉक्सिमा सेंटॉरी २५×१०^{१२} मील दूर है । आकाशगंगा, जिसके बीच हमारा सूर्य स्थित है, लगभग ६×१०^{१७} मील लंबी है और उसमें लगभग $१०^{११}$ तारे हैं। हमारी आकाशगंगा के पड़ोस में सबसे नज़दीक नीहारिका १.१८×१०^{१८} मील अथवा ग्यारह शंख अस्सी नील मील की दूरी पर है। आकाशगंगा का जन्म लगभग २×१०^{१०} अथवा बीस अरब वर्ष पूर्व हुआ और हमारी पृथ्वी के जन्म को ४.५×१०^{९} अथवा चार अरब पचास करोड़ वर्ष हुए होंगे। पृथ्वी पर जीवन का प्रादुर्भाव लगभग २×१०^{९} अथवा दो अरब वर्ष पहले हुआ ।

बाबा विश्वनाथ की वाणी

पृथ्वी के जीवन की बात करते समय एक अत्यंत रोचक किंवदंती ध्यान आती है। कहते हैं कि बनारस में बाबा विश्वनाथ के मंदिर के नीचे एक तल घर है। उसमें काँसे का एक पटा रखा हुआ है जिसमें तीन हीरे की बनी लंबी कीलें लगी हुई हैं। इनमें से एक कील पर सोने के चौसठ गोलाकार छल्ले पिरोए हुए हैं। ये सभी छल्ले असमान हैं। सबसे बड़ा छल्ला सबसे नीचे है, उसके ऊपर उससे छोटा और उसके ऊपर उससे छोटा और इसी प्रकार क्रम से सभी पिरोए हुए हैं।

इस मंदिर में एक भविष्यवाणी भी लिखी हुई है कि 'यदि कोई व्यक्ति इन छल्लों को एक कील से निकाल कर दूसरी कील में पिरो देगा तो प्रलय हो जाएगी।'

इसका अर्थ यह नहीं कि वहाँ शारीरिक शक्ति संबंधी कोई मुकाबला हो। परंतु उन छल्लों को निकालने और पिरोने के लिए दो साधारण से नियम भी दिए गए हैं जिनका पालन करना आवश्यक है। वे हैं:—(१) एक समय में केवल एक ही छल्ला निकाला या पिरोया जा सकता है, और (२) कभी भी कोई बड़ा छल्ला छोटे छल्ले के ऊपर नहीं रखा जाना चाहिए। हमारा क्या अनुमान हो सकता है? क्या यह भविष्यवाणी सच होगी? हम चाहें तो आज़मा सकते हैं।

गणित के विद्यार्थी के लिए बनारस तक की यात्रा करना आवश्यक नहीं है। यहीं काग़ज़ और पेंसिल से थोड़ा-सा काम चलाया जा सकता है। देखिए कैसे यह कार्य किया जाएगा? मान लीजिए कि तीन कीलों को हम क ख ग नाम दे देते हैं और सभी छल्लों

को क्रम से $प_1$, $प_2$ . . . $प_{64}$ । $प_1$ सबसे छोटा छल्ला है और $प_{64}$ सबसे बड़ा। इन छल्लों को एक कील से दूसरी पर स्थानांतरित करने के लिए प्रक्रिया कुछ निम्न प्रकार करना होगा :

(१) $प_1$ सबसे छोटा छल्ला है और इसीलिए वह कील क पर सभी छल्लों के ऊपर रखा हुआ है। सबसे पहले हम उसी को क में से निकाल कर ख में पिरो देंगे। इस प्रकार एक छल्ला एक बार में क से ख में स्थानांतरित हो गया।

(२) अब दूसरे छल्ले को स्थानांतरित करना है, इसलिए $प_2$ को निकालिए। हम उसे ख में नहीं पिरो सकते क्योंकि उसका अर्थ होगा कि यह $प_2$ जो $प_1$ से बड़ा छल्ला है, उसके ऊपर आ जाएगा जो हमारे दूसरे नियम के विरुद्ध है। इसलिए उसे हम ग में पिरोएँगे। फिर ख में से $प_1$ को निकाल कर ग में पिरो दिया। परंतु इस बार छल्लों को निकालने की दो प्रक्रियाएँ हो गईं और इस प्रकार प्रारंभ से अब तक दो छल्लों को क से ग में स्थानांतरित करने के लिए हमें १+२=३ बार काम करना पड़ा।

(३) अब $प_3$ की बारी है। पहले $प_3$ को ख में रखिए क्योंकि ग में उससे छोटे छल्ले मौजूद हैं। फिर $प_1$ को क में रखिए। फिर $प_2$ को ख में रखिए। फिर $प_1$ को ख में रखिए। इस प्रकार इस बार हमें ४ क्रियाएँ करनी पड़ीं। प्रारंभ से अब तक तीन छल्लों को क से ख में स्थानांतरित करने के लिए हमें १+२+४=७ बार काम करना पड़ा।

(४) चौथे छल्ले को स्थानांतरित करने की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए संभवत: संकेत चिह्नों से ही काम लेना पड़ेगा। इस समय छल्लों की स्थिति विभिन्न कीलों में निम्न प्रकार है :

छल्ले		कील
$प_4$ $प_5$ . . . . . $प_{63}$ $प_{64}$	—	क
$प_1$ $प_2$ $प_3$	—	ख
खाली	—	ग

छल्ले निकालने और पिरोने की प्रक्रिया कुछ निम्न प्रकार होगी। छल्ले के सामने कोष्ठक में वह किस छल्ले में है उसका संकेत है तथा बाण → यह बताता है कि कोष्ठक वाले छल्ले में से निकाल कर उसे किस छल्ले में पिरोया गया :

$प_4$ (क) ⟶ ग
$प_1$ (ख) ⟶ ग
$प_2$ (ख) ⟶ क
$प_1$ (ग) ⟶ क
$प_3$ (ख) ⟶ ग
$प_1$ (क) ⟶ ख
$प_2$ (क) ⟶ ग
$प_1$ (ख) ⟶ ग

इसमें कुल चालें आठ हुईं और अंत में स्थिति निम्न हुई:

छल्ले		कील
$प_५ प_६ . . प_{६४}$	—	क
खाली	—	ख
$प_१ प_२ प_३ प_४$	—	ग

प्रारंभ से लेकर अब तक चार छल्लों के क से ग में स्थानांतरण के लिए कुल चालें हुईं:

$$१+२+४+८=१५$$

अब इस स्थल पर आकर साधारण व्यक्ति और गणितज्ञ में अंतर स्पष्ट होगा। इन अंकों को देखकर गणितज्ञ की विचारणा में प्रश्न उठेगा कि १, २, ४, ८ में तो एक क्रम-सा दृष्टिगत होता है; क्या यही क्रम आगे भी क़ायम रहेगा? यहीं गणितीय आगम का प्रारंभ होता है। ये संख्याएँ २ के घातों के रूप में भी व्यक्त की जा सकती हैं:

$$२^० + २^१ + २^२ + २^३ = १५ = १६ - १$$
$$= २^४ - १$$

हम चाहें तो पुनः $प_५$ को स्थानांतरित करने की क्रिया करके देखें। यदि चालें सही हों तो हमें १६ अर्थात् $२^४$ बार चालें चलना होंगी। इस प्रकार प्रारंभ से अब तक की कुल चालें, जिनसे पाँच छल्लों का स्थानांतरण हो सके, निम्न होंगी:

$$२^० + २^१ + २^२ + २^३ + २^४ = २^५ - १$$

यहाँ से रास्ता कुछ खुलता-सा दिखाई पड़ता है। अब आगे हमें यह स्थानांतरण की क्रिया प्रत्यक्ष रूप से करने की आवश्यकता नहीं है। जब चार छल्लों के स्थानांतरण के लिए कुछ आवश्यक चालें $२^४ - १$ तथा पाँच के लिए कुल चालें $२^५ - १$ हैं तो आगम सिद्धांत से यह कहा जा सकता है कि सभी ६४ छल्लों को एक दूसरी कील में पिरोने के लिए हमें सिर्फ $२^{६४} - १$ चालें चलनी होंगी।

हम सोच सकते हैं कि अब तो मैदान साफ़ हो गया—हमने गणित की सहायता से भविष्यवाणी को असिद्ध कर दिया। बस $२^{६४} - १$ चालें चटपट चलने की आवश्यकता है।

परंतु स्थिति इतनी सरल नहीं है; आइए, थोड़ा-सा गणित और करें।

मान लीजिए, हमें एक चाल चलने में एक सेकंड लगता है। शायद प्रारंभ में हमें ऐसा प्रतीत हो, अन्य मित्रों की सहायता की आवश्यकता न पड़ेगी, पर कुछ समय काम करने के बाद हम अवश्य सोचेंगे कि अच्छा ही होता, कुछ और सहायता ले लेते, जिससे इस काम से जल्दी छुट्टी मिल जाती और विश्वनाथ के वरदान या अभिशाप की परीक्षा हो जाती। इसलिए इस कार्य के लिए प्रारंभ से ही हम दो और मित्रों की सहायता ले लेते हैं जिससे ८—८ घंटे की पारी करके चौबीसों घंटे काम चलता रहे।

हाँ, यदि अब हम हिसाब लगाएँ तो हम मित्रों की सहायता से केवल $२^{६४}$ सेकंडों में यह काम पूरा कर लेंगे। कितना समय होता है $२^{६४}$ सेकंड? देखिए, इस संख्या की महिमा। एक वर्ष में कुल ३,१५,५८,००० सेकंड होते हैं। इस हिसाब से इस काम को पूरा करने के लिए कुछ अधिक नहीं केवल ५८×१०^{१२} अर्थात् पाँच नील अस्सी

खरब वर्ष लगेंगे। हमारी आकाशगंगा बीस अरब वर्ष पुरानी है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि हमारा वर्त्तमान विश्व एक-डेढ़ अरब वर्ष और चलेगा। इस हिसाब से जब तक ब्रम्हाणी द्वारा लगभग ४०० बार ब्रह्माण्ड की सृष्टि और शिव द्वारा उसके संहार की आवृत्ति हो चुकी होगी, तब तक भी हमारी अमर आत्मा बाबा विश्वनाथ की वाणी को असिद्ध करने योग्य न हो सकेगी। अंत में यही कहना होगा कि बाबा विश्वनाथ ही जानें इस गोरखधंधे को!

शतरंज की चाल

इस $२^{६४}$ संख्या ने पहली बार हमें ही परेशान नहीं किया। कुछ बादशाह भी इसके भुलावे में आ चुके हैं। कहते हैं कि बादशाह सिरहम के राज्य काल में हमारे शतरंज के खेल को उसके वज़ीर हिस्सा बेन दाहिर ने ईजाद किया था। बादशाह को यह खेल बहुत पसंद आया और उसने वज़ीर से कहा कि मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, जो चाहे सो माँग सकते हो। वज़ीर ने कहा कि हुज़ूर मेरी एक बहुत ही छोटी-सी ख़्वाहिश है। आपने यह खेल पसंद किया है। इसमें ६४ छोटे-छोटे वर्ग हैं। आप मुझे केवल कुछ अनाज इसके प्रत्येक वर्ग के एवज़ में दे दीजिए। पहले वर्ग के लिए एक दाना, दूसरे के लिए दो, तीसरे के लिए चार, चौथे के लिए आठ, पाँचवें के लिए सोलह . . . । बादशाह उसकी इस नाचीज़ माँग को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा ऐसा ही होगा। भाग्य से या दुर्भाग्य से वह हमारी भाँति ही अभी इन बड़ी संख्याओं के करिश्मे से नावाक़िफ़ था।

आगे क्या हुआ, हमें नहीं मालूम। पर हिसाब लगाने पर हम देख सकते हैं कि वज़ीर ने $२^{६४}—१$ अर्थात् १,८४,४६,७४,४०,७३,७०,९५,५१,६१५ अनाज के दाने माँगे थे। यदि एक मन में ६०,००,००० अनाज के दाने चढ़ें तो उसकी माँग को पूरा करने के लिए ३ नील मन अनाज की आवश्यकता होगी। यदि दुनिया के प्रतिवर्ष अनाज की उपज डेढ़ अरब मन मान लें तो इस हिसाब से पूरी दुनिया की दो हज़ार वर्ष की पैदावार उसे समर्पित करनी होगी। किस प्रकार बादशाह ने अपना वचन निभाया होगा?

एक बात स्पष्ट है कि न केवल वज़ीर ने शतरंज का खेल ईजाद किया वरन् पहली चाल में ही अपने बादशाह को मात भी दे दी।

शतरंज की बात करते समय यह जान कर हमें खुशी होगी कि शतरंज के खेल का गणित काफ़ी आगे बढ़ चुका है और उसके आधार पर कई गणितीय प्रमेय विनिश्चयन संबंधी समस्याओं पर प्रस्थापित किए जा चुके हैं। एक शतरंज के खेल में संभावित चालों की संख्या है:

$$१०^{१०}$$

यह गूगलप्लेक्स से तो बहुत छोटी है, पर तब भी है बहुत बड़ी संख्या, और पृथ्वी के अंतिम काल तक यह खेल खेलने पर भी शतरंज के खिलाड़ियों को इसका डर नहीं कि

नई चालें या नये खेल उन्हें उपलब्ध न हों

साहित्यिक सर्जना की संभाव्यता

एक छोटी-सी लेखन-संबंधी समस्या पर और विचार कर लीजिए। हिन्दी में कुल ५२ अक्षर (स्वर और व्यंजन मिलाकर, मात्राएँ स्वरों में ही सम्मिलित हैं) हैं, १० अंक हैं और १३ अन्य संकेत चिह्न। इस प्रकार कुल ७५ संकेत हुए। इन्हीं सबका उपयोग कर हम कोई भी चीज लिखते हैं। मान लीजिए एक टाइप मशीन से हम इन संकेतों के जितने भी संभव 'वाक्य' बन सकते हैं, उन्हें टाइप करना चाहते हैं। इस पूरी लाइन में ७५ संकेतों के सभी संभावित अनुक्रम लिखे जाएँगे। इन अनुक्रमों की संख्या $७५^{६५}$ होगी, क्योंकि प्रत्येक स्थान पर इन ७५ संकेतों में से कोई एक संकेत रखा जा सकता है। अर्थात् कुल $७५^{६५}$ अलग-अलग लाइनें लिखी जा सकती हैं। इनमें से बहुत-सी लाइनों में कोई अर्थ नहीं निकलेगा पर अनेक नये भाव-युक्त वाक्य भी होंगे। नये लेखक और कवि अंततोगत्वा क्या करते हैं ? मैं यह पुस्तक लिख रहा हूँ। वह भी इन्हीं ७५ संकेतों की एक भिन्न प्रकार से व्यवस्था मात्र ही है। यदि ये सभी $७५^{६५}$ लाइनें टाइप होकर एक स्थान पर रख दी जाएँ तो नये लेखकों के लिए कुछ लिखना शेष ही नहीं रहेगा । इन्हीं लाइनों में से वे चाहे तो कुछ छाँट कर सकते हैं और उन्हें एक अनुक्रम में प्रस्तुत कर सकते हैं।

परंतु देखें कि यह काम होगा कैसे ? हिसाब लगाने पर मालूम होगा कि यदि इस विश्व के प्रत्येक परमाणु (३×१०^{७४}) को एक स्वतंत्र छापाखाना मान लिया जाए और उनमें से प्रत्येक के छापने की गति भी आणविक स्पंदन के बराबर हो अर्थात् एक सेकंड में $१०^{१५}$ या १ पद्म लाइनें छाप दें तो सृष्टि के प्रारंभ से अर्थात् अब तक के बीते ३ अरब वर्षों (अर्थात् $१०^{१७}$ सेकंड) में इन छापाखानों ने केवल ३×१०^{१०६} लाइनें ही छाप पाई होतीं। अथवा यों कहें कि पूरे काम का केवल .०००००००००००००००३६४ अर्थात् ३.६४×१०^{-१६} अंश ही पूरा हो पाया होता।

एक बात इससे सिद्ध होती है कि लेखकों को छपी किताबों से चोरी करने की आवश्यकता नहीं है। अभी बहुत कुछ लिखने को शेष पड़ा हुआ है—सृष्टि के अंत तक भी यदि सभी पाठक और लेखक मिल कर लिखना ही लिखना जारी कर दें—पढ़ना बिलकुल बंद—तब भी सब जो लिखा जा सकता है, उसकी तुलना में न कुछ ही लिख पाएँगे।

कुछ और बड़े अंक और उनका गणित

गूगल और गूगलप्लेक्स के विशाल आकार को देख कर एक विचार आ सकता है कि अब तो शायद हम बड़ी संख्याओं के छोर पर आ गए होंगे। परंतु ऐसा नहीं है। जानने की तीव्र इच्छा ने गणित के विद्यार्थियों को उससे आगे भी जाने के लिए बाध्य

किया और जिस प्रदेश से हम अभी गुज़र चुके हैं, यह नया प्रदेश कुछ उससे भी अधिक अद्‌भुत है। आइए देखें।

प्रोफ़ेसर लिटिलवुड ने बड़ी संख्याओं का एक नया विभाजन किया है और संख्याओं के प्रकार निर्धारित किए हैं। उन्होंने १० के घातों के आधार पर उनके प्रकारों को नाम दिए हैं। इस प्रकार :

$$स_१ = १०^{१०}$$

$$स_२ = १०^{स_१} = १०^{१०^{१०}}$$

$$स_३ = १०^{स_२} = १०^{१०^{१०^{१०}}}$$

. . . .

$$स_न = १०^{स_{न-१}}$$

इन संख्याओं को वे क्रमशः प्ररूप १, प्ररूप २, प्ररूप ३, . . . प्ररूप न . . . की संख्या कहते हैं।

अब प्रश्न है कि $१०^{१०^{४}}$ को क्या कहेंगे। यह संख्या $स_१$ से बड़ी परंतु $स_२$ से छोटी है। इसलिए उसे $स_{१.४}$ लिख दिया। यदि १.४ में ४ के स्थान में १० हो जाए तो १.४ भी २ हो जाएगा और संख्या का प्ररूप २। देखें, हमारी कुछ जानी-पहचानी संख्याएँ इसमें क्या रूप लेंगी।

विश्व में परमाणुओं की संख्या $१०^{७९}$ अथवा $१०^{१०^{१.९}}$ है। इसलिए $१०^{७९} = स_{१.१९}$। इस पैमाने पर विश्व के परमाणुओं की संख्या तो प्ररूप १ में ही छोटी संख्या है। गूगल $= १०^{१००} = १०^{१०^{२}}$ अथवा $स_{१.२}$। इस प्रकार $स_{१.२}$ तक भी हम थोड़ा-सा ही आगे बढ़े १.१९ से १.२ तक।

$$गूगलप्लेक्स = १०^{१०} = स_{२.२}$$

आश्चर्य है कि हमारी सबसे बड़ी संख्या इस नये पैमाने में प्ररूप २.२ की ही ठहरी। और यह प्ररूप तो कहीं तक भी आगे बढ़ा सकते हैं:—१० तक, १०० तक, १००० तक या कहें कि उसे गूगल और गूगलप्लेक्स तक भी बढ़ा सकते हैं तो अतिशयोक्ति न होगी। $स_{१०}, स_{१००}, स_{१००००}, स_{गूगल}$, . . .। ये संख्याएँ क्या होंगी हम नहीं जानते। यहाँ बुद्धि चकरा उठती है। इतना अवश्य कह सकते हैं कि ये संख्याएँ भी परिमित हैं, अनंत नहीं।

इन संख्याओं का गणित भी कुछ विचित्र पहले हम अपने परिचित संख्या-समुदाय में ही वर्ग करने की क्रिया को देखेंगे :

मूल संख्या	**उसका वर्ग**	**वर्ग और मूल का अंतर**
१	१	०
१.०१	१.०२०१	.०१०१
१.१	१.२१	.११
२	४	२
१०	१००	९०
१००	१०,०००	९,९००
१,००,०००	१०,००,००,००,०००	९,९९,९९,००,०००
. . . . . .	. . . . . .	. . . . . .

यहाँ देखने योग्य यह है कि १ का वर्ग करने से उसमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता। उसके बाद बहुत थोड़ा परिवर्त्तन होता है, परंतु नगण्य-सा। धीरे-धीरे यह बढ़ता जाता है और १ लाख तक तो वर्ग के सामने मूल संख्या नगण्य हो जाती है। १ लाख का वर्ग है १० अरब और वर्ग और मूल में अंतर है नौ अरब निन्यानबे करोड़, निन्यानबे लाख, जिसका उपसन्न मान लगभग १० अरब ही है।

इस विवेचन से उम्मीद यही होती है कि हम और आगे बढ़ें तो वर्ग के सामने मूल संख्या और भी नगण्य होती जाएगी, पर देखिए क्या होता है ?

$स_{२} = १०^{१०^{१०}}$ $(स_{२})^{२} = १०^{१०^{१०\cdot३}}$

$स_{३} = १०^{१०^{१०^{१०}}}$ $(स_{३})^{२} = १०^{१०^{१०^{१०^{१\cdot००००००००७९}}}}$

$स_{२}$ का वर्ग करने पर .३ का अंतर आया और $स_{३}$ का वर्ग करने पर अंतर केवल .००००००००७९ का। इस प्रकार प्ररूप २ की संख्या वर्ग करने पर 'लगभग अपरिवर्त्तित' रहती है और प्ररूप ३ या उससे बड़ी संख्या में तो बिलकुल ही परिवर्त्तन नहीं होता है। ऐसा मालूम होता है कि मानो फिर से हम १ के पास वाली छोटी संख्याओं का वर्ग कर रहे हों।

और भी देखिए। किसी घात का आधार बदल दें तो संख्या के मान में क्या अंतर होगा ?

आधार १००	आधार १०	आधार २	आधार १० और आधार २ का अंतर
$१००^{०} = १$	$१०^{०} = १$	$२^{०} = १$	
$१००^{१} = १००$	$१०^{१} = १०$	$२^{१} = २$	८
$१००^{२} = १०,०००$	$१०^{२} = १००$	$२^{२} = ४$	९६
$१००^{३} = १०,००,०००$	$१०^{३} = १,०००$	$२^{३} = ८$	९९२

$१००^{४}$ = १०,००, ००,०००	$१०^{४}$ = १०,०००	$२^{४}$ = १६	६,६८४
....	....	....	....
$१००^{१०}$ = १०,००,००, ००,००,००, ००,००,००,	$१०^{१०}$ = १०,००, ००,००, ०००	$२^{१०}$ = १,०२४	६,६६,६६,६८, ६७६

यहाँ हम देख सकते हैं कि आधार १० के स्थान पर २ कर देने पर मान में कितना अंतर आ जाता है। इसी प्रकार यदि आधार १० के स्थान पर १०० कर दिया जाए तो उनका मान बहुत बढ़ जाता है और यह अंतर भी, जैसे-जैसे घात बढ़ता जाता है, बढ़ता जाता है। घात १० होने पर ही $१००^{१०}$ के सामने $१०^{१०}$ नगण्य है और $१०^{१०}$ के सामने $२^{१०}$ नगण्य है। आशा है यही स्थिति हमारी बड़ी संख्याओं के साथ होगी । परंतु परिणाम कुछ और ही है।

यदि $स_२$ $(१०^{१०^{१०}})$ में १० आधार के स्थान पर $(१०^{७९})$ कर दें तो उन दो संख्याओं में मुश्किल से ही परिवर्त्तन देखा जा सकता है और यदि १० के स्थान पर आधार २ कर दें तो संख्या बिलकुल ही 'अपरिवर्त्तित' रह जाएगी।

$$(२)^{१०^{१०}} \quad (१०)^{१०^{१०}} \quad (१०^{७९})^{१०^{१०}}$$

$$\downarrow \qquad \downarrow \qquad \downarrow$$

$$१०^{१०^{१०^{९·४७८}}} \quad १०^{१०^{१०^{१०}}} \quad १०^{१०^{१०^{१·२७८८}}}$$

वास्तव में प्ररूप ३ या उससे बड़ी संख्याओं में आधार यदि हम १० के स्थान पर २ कर दें या १० के स्थान पर $स_३$ ही कर दें तो कोई विशेष अंतर नहीं होगा । इस प्रकार

$$(स_न)^{स_न} \text{ और } (२)^{स_न}$$

लगभग बराबर ही कहे जाएँगे ।

कहाँ हमारी छोटी संख्याओं में २ और १०० में जमीन-आसमान का अंतर हो जाता है परंतु यहाँ २ और १०० की तो बात कौन कहे, २ के स्थान पर $१०^{१०^{१०}}$ भी रख दें तो कोई अंतर नहीं पड़ता। इस पूरे विवेचन को लिटिलवुड के शब्दों में 'अपरिष्करण का सिद्धांत' कहा जा सकता है। यदि हम $क^{ख^{ग^{\cdot^{\cdot}}}}$ के रूप की संख्या के बारे में विचार कर रहे हैं तो उसके घातों के विषय में हमें दत्तचित्त रहना पड़ेगा, पर उसके आधार क को हम चाहे जितना भी छोटा-बड़ा कर सकते हैं।

है न यह एक विचित्र देश !

यहाँ से आगे बढ़ने के पूर्व एक बात पर हमें पुनः ध्यान देना होगा कि जिन संख्याओं का हम ज़िक्र कर चुके हैं, वे बृहत् भले ही हैं, उनके कुछ विचित्र गुण भी हैं, पर वे हैं सभी परमित और निश्चित। जैसे यदि हम $स_{१०}$ लिख दें तो यह बहुत ही अधिक बड़ी संख्या है। परंतु यदि गणना में इसके आगे की संख्या लिखना चाहें तो वह संख्या इसमें १ जोड़ कर प्राप्त हो सकेगी। $स_{१०}$ के आगे की संख्या $स_{१०}+१$ ही होगी, अन्य कोई नहीं। हाँ, यह अवश्य है $स_{१०}+१$ और $स_{१०}$ में जो १ का अंतर है, वह नगण्य-सा ही होगा, पर अंतर अवश्य होगा।

इस तथ्य का हमें एहसास एक उदाहरण से स्पष्ट रूप से हो जाएगा। मान लीजिए एक बहुत अमीर आदमी के घर में $स_{१०}$ कमरे हैं। उनके यहाँ मेहमानों की भी आमदरफ़्त काफ़ी है और एक दिन ऐसा मौक़ा हुआ कि उसके यहाँ $स_{१०}$ मेहमान मौजूद थे। उसी समय एक और मेहमान आ गया। उसके इतने बड़े आदमी होने के बावजूद, $स_{१०}$ कमरे का मकान होने के बावजूद और $स_{१०}$ से $स_{१०}+१$ का अंतर नगण्य-सा होने के बावजूद वह एक नये मेहमान का इंतज़ाम नहीं कर सकता, क्योंकि सभी $स_{१०}$ कमरे भरे हुए हैं।

परिमित संख्याओं का यही सबसे बड़ा गुण है कि वे परिमित हैं, निश्चित हैं। और चाहे वे कितनी ही बड़ी संख्याएँ क्यों न हों, हम उनसे भी बड़ी एक अन्य संख्या का अनुमान लगा सकते हैं, लिख सकते हैं।

अनंत की ओर

आइए, अब अनंत की ओर दृष्टि डालें। इनका किंचित् परिचय तो हमें इसके पहले ही मिल चुका है। हमारे अंकों की संख्या अनंत है, हमारे भिन्नांकों की संख्या अनंत है, हमारी परिमेय संख्याओं की संख्या अनंत है, हमारी बीजीय संख्याओं की संख्या अनंत है और बीजातीत संख्याओं की संख्या भी अनंत है। परंतु आइए, इनको थोड़ा और निकट से देखें।

भिन्नांकों को $\frac{क}{ख}$ रूप में लिखते समय हमने एक प्रतिबंध लगा दिया था कि इसका हर ख शून्य नहीं हो। ख यदि शून्य हो तो क्या होगा? $\frac{१}{०}$ का अर्थ है १ में ० का भाग। अथवा घटाने के रूप में १ में से '०' को जितनी बार निकालना संभव होगा। यदि एक कृपण के पास एक किलो घी है और वह प्रतिदिन खाते समय उसे देख ही लेता है और इस प्रकार 'शून्य' ग्राम घी उपयोग करता है तो उसके लिए यह राशि अक्षुण्ण है। एक में से शून्य जितनी बार चाहें घटाएँ, घटाते जा सकते हैं। इसलिए $\frac{१}{०}$ को अनंत कहते हैं। परंतु वही हाल $\frac{५}{०}$ का भी है और $\frac{१०००}{०}$ का भी। ये सभी अनंत हैं और हमारी परिभाषा के अनुसार बराबर ही होंगे। $\frac{क}{०}$ जिसमें क स्वयं शून्य न हो, अनंत होगा।

$\frac{१}{०}$ और $\frac{५}{०}$ के विषय में विचार करते समय छोटे-बड़े का ध्यान आता है। हो सकता

है कि $\frac{१}{८}$ से $\frac{५}{८}$ बड़ा हो, पर वस्तुतः ऐसा नहीं है। जहाँ हम 'अनंत' की बात करते हैं सबसे पहले हमें सामान्य संख्याओं के संबंधित विचार एक ओर रख देने पड़ेंगे। ५ और ६ में से कौन बड़ा है तथा $स_{१०}$ और $स_{१०}+१$ में कौन बड़ा है, यह प्रश्न हल करने में कोई कठिनाई नहीं क्योंकि ये सभी संख्याएँ परिमित हैं।

परंतु अब यदि कोई यह पूछे कि 'सभी गणना अंकों की संख्या (अर्थात् १, २, ३, ४, . . . की संख्या) और सम अंकों की संख्या (अर्थात् २, ४, ६, ८, . . . की संख्या) में कौन बड़ी है?' तो एक कठिन प्रश्न होगा। संभवतः हम इस प्रश्न का उत्तर तत्काल देना चाहेंगे—'साफ़ तो है कि सम अंक सभी गणना अंकों से न केवल कम ही हैं, वरन् निश्चित रूप से उनके आधे हैं क्योंकि हमने विषम संख्याओं को छोड़ ही दिया है।'

साधारण रूप से यह उत्तर बिलकुल सत्य होता और मान्य भी। पर शर्त एक है कि जिन संख्याओं की हम गणना करें, वे परिमित हों। हम १, २, ३, . . ., १०० और २, ४, ६, . . . , १०० को गिन कर देख सकते हैं कि पहली श्रेणी में १०० संख्याएँ हैं दूसरी में केवल ५०। इसी प्रकार हम एक लाख, एक करोड़, एक गूगल या उससे भी आगे गिनते जाएँ तब भी यही उत्तर सत्य उतरेगा कि सम संख्या समुदाय गणना अंक समुदाय का आधा है। पर अगर हम उन सभी संख्याओं का अर्थात् अनंत संख्याओं का हिसाब लगाने लगें तो कुछ कठिनाई हो सकती है।

हम यहाँ कह सकते हैं कि गणित में व्यापकीकरण की क्रिया का क्या हुआ ? जब हमने १०० या १०००, अथवा १०,००० तक यह देख लिया कि हमारा कथन (सम संख्याएँ पूर्णांकों की आधी हैं) सत्य है तो क्यों नहीं हम इस कथन का व्यापकीकरण कर सकते हैं। व्यापकीकरण हम अवश्य कर सकते हैं, परंतु वहीं तक जब तक कि हम निश्चित और परिमित संख्याओं तक की बात करते हैं चाहे वे कितनी ही बड़ी क्यों न हों। जहाँ अनंत का प्रश्न आया, वहाँ हमारी साधारण गणितीय प्रक्रियाएँ अनुपयुक्त हो जाती हैं। हम चाहे जब तक गिनते जाएँ, पर कभी अंत ही नहीं आएगा। तो फिर इस समस्या का हल क्या होगा ?

ऐसा लगता है कि यहाँ पर हमारी गणना-बुद्धि कुंठित-सी हो गई। क्या करें ? चलिए देखें हमारे पूर्वज जब गणना जानते ही नहीं थे, तब क्या करते थे। शायद इससे कोई हल निकले।

मान लीजिए एक गड़रिया कुछ भेड़ें चरा रहा है और दूसरा कुछ बकरियाँ। दोनों में उनके पशुधन को लेकर कुछ विवाद हो गया। एक ने कहा कि मेरे पास भेड़ें अधिक हैं, दूसरे ने कहा मेरे पास बकरियाँ अधिक। गिनना कोई नहीं जानता। फिर क्या किया जाए ?

ऐसे में एक उपाय है। दोनों अपने-अपने झुण्ड में से एक-एक बकरी और एक-एक भेड़ निकालें। उनके जोड़े बनाकर वे एक ओर करते जाएँ। अंत में जिस के झुण्ड के जानवर शेष बच रहें, उसी के जानवरों की संख्या अधिक हुई।

इसी प्रक्रिया को हम गणित की भाषा में कहने का प्रयास करेंगे।

प्रतिचित्रण

दो समूहों अथवा कुलकों की तुलना करने में मानचित्रण की क्रिया आधारभूत है जिसे कुछ विस्तार में स्पष्ट करना उचित होगा। इस क्रिया में हम एक कुलक के सदस्यों को दूसरे कुलक के सदस्यों के समतुल्य रखने का प्रयास करते हैं। इसी प्रक्रिया को चित्रण या प्रतिचित्रण कहते हैं।

मूलभूत क्रियाओं को स्पष्ट करने के लिए सरलतम घटनाक्रम ही सर्वाधिक उपयुक्त होते हैं। चैत्र के महीने में यदि हमें यह जानना है कि भाद्रपद के लिए कितने महीने शेष हैं तो सबसे पहले तो बालक की-सी ही प्रवृत्ति होती है—अँगुलियों पर गिनने की। हम एक-एक महीने को एक-एक अँगुली से निर्देश करते हैं—एक महीने का नाम लेते हैं और साथ ही एक अंगुली खड़ी कर देते हैं। इस प्रकार :

वैशाख → छिगुनी
ज्येष्ठ → अनामिका
आषाढ़ → मध्यमा
श्रावण → तर्जनी

हमने चैत्र और भाद्रपद के बीच के सभी महीनों को अपने हाथ की अँगुलियों पर चित्रित कर लिया। हम अँगुलियों संबंधी संख्या के सहज ज्ञान के आधार पर कह सकते हैं कि चैत्र और भाद्रपद के बीच में चार महीने हैं। वास्तविकता तो यह है कि संख्या-कुलक से हमारी अँगुलियों की तुलना अत्यंत घनिष्ठ और गहरी है। इसीलिए उठी हुई अँगुलियों को देखकर ही चार संख्या का संकेत कर देने के आधार में इस प्रकार का चित्रण भी हो सकता है इसका ध्यान ही नहीं आता। ऊपर की प्रक्रिया के आधार पर चैत्र और आषाढ़ के बीच चार महीनों का होना निश्चित करना निम्न चित्रण पर आश्रित है :

छिगुनी → १
अनामिका → २
मध्यमा → ३
तर्जनी → ४

संख्या-कुलक के साथ महीनों की तुलना सीधे भी की जा सकती है। परंतु जैसा पहले कहा जा चुका है, प्रारंभिक अवस्था की अनेक उपयोगी बातें आवश्यकता न होने पर भी सरलता और स्वभाव के कारण चलती रहती हैं।

महीनों और अँगुलियों के चित्रण में एक तथ्य स्पष्ट करना आवश्यक होगा। इस प्रक्रिया में प्रत्येक महीने के लिए आवश्यकतानुसार हम एक-एक अँगुली निर्धारित करते गए हैं। परंतु यह प्रक्रिया उसकी विपरीत प्रक्रिया प्रत्येक अँगुली के लिए एक महीने का निर्देश करने से बिलकुल भिन्न है। प्रतिचित्रण में प्रयुक्त बाण का चिह्न अपनी दिशा से → इसी तथ्य का निर्देश करता है। इस प्रकार हम मास-कुलक का चित्रण अंगुलि-कुलक पर करते हैं और इसे गणित में मास-कुलक का अंगुलि-कुलक में प्रतिबिंबित होना भी कहते हैं।

इस प्रकार का प्रतिचित्रण किन्हीं भी दो कुलकों के सदस्यों के बीच किया जा सकता है। मान लीजिए कि हमें कुछ व्यक्तियों का चित्रण उनकी आयु के वर्षों से करना है। कुल पाँच व्यक्ति हैं—भरत १६ वर्ष, चरत १७ वर्ष, रहीम १६ वर्ष, राम २० वर्ष और श्याम १६ वर्ष। इन व्यक्तियों का १६ से २० तक के संख्या-कुलक के साथ चित्रण निम्न प्रकार होगा :

राम ⟶ २०
भरत ⟶ १६
रहीम ↗ १८
चरत ⟶ १७
श्याम ⟶ १६

इस चित्रण और मास-अंगुलि चित्रण में एक अंतर है। पहले में एक अंगुलि के समकक्ष एक ही महीना था परंतु यहाँ एक संख्या के समकक्ष दो व्यक्ति भी हैं, कहीं एक व्यक्ति और कहीं एक भी नहीं। इस प्रकार के प्रतिचित्रण को हम अनेक-एक प्रतिचित्रण कहते हैं, क्योंकि यहाँ पर पहले कुलक के एक या एक से अधिक सदस्यों का दूसरे कुलक के एक सदस्य से संबंध स्थापित होता है। इस प्रकार के अन्य अनेक प्रतिचित्रणों के भी उदाहरण दिए जा सकते हैं जैसे कक्षा के विद्यार्थियों का उनके अध्ययन के विषयों के साथ प्रतिचित्रण करना अथवा लड़कियों का उनके वस्त्रों के रंग-कुलक के साथ प्रतिचित्रण करना इत्यादि।

इसी प्रकार दो कुलकों में एक-अनेक संबंध भी हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति के दो आँखें हैं। व्यक्ति-कुलक और नेत्र-कुलक में एक-अनेक संबंध है। यदि हमें किसी समूह में उपस्थित व्यक्तियों की संख्या मालूम है तो हम उनके नेत्रों की संख्या बिना उनके नेत्रों को गिने हुए ही मालूम कर सकते हैं।

अब यदि हम अपने मास-अंगुलि चित्रण पर पुनः विचार करें और देखें कि क्या हम अपने हाथ ही की अँगुलियों का चित्रण उन महीनों पर कर सकते हैं तो पाएँगे कि ऐसा करने के प्रयास में अंगुष्ठ बच रहता है। इस प्रकार इस प्रक्रिया का उलटना संभव नहीं है और इसीलिए हम उसे अंगुलि-मास चित्रण नहीं कह सकते। प्रतिचित्रण में यह आवश्यक है कि हम जिस कुलक का प्रतिचित्रण दूसरे कुलक में करना चाहते हैं उसके सभी सदस्यों का प्रतिबिंब दूसरे कुलक में होना चाहिए। इसलिए यदि हम अपनी अँगुलियों की कोटि से अंगुष्ठ को निकाल दें तो देखेंगे कि अंगुलि-मास प्रतिचित्रण संभव है। उस प्रतिचित्रण में प्रत्येक अंगुलि का प्रतिबिंब एक मास के रूप में है और प्रत्येक मास का प्रतिबिंब एक अंगुलि के रूप में है। इस प्रकार का प्रतिचित्रण दो कुलकों के सदस्यों में एक-एक (अथवा एकैक) संबंध स्थापित करता है और दो कुलकों के इस गुण को उनमें एकैक संगति का होना कहते हैं। यह संगति निम्न प्रतिचित्रण से स्पष्ट है :

वैशाख ↔ छगुनी
ज्येष्ठ ↔ कनिष्ठा
आषाढ़ ↔ माध्यिका
श्रावण ↔ तर्जनी

यदि दो कुलकों में एकैक संगति है तो हम कह सकते हैं कि उनके सदस्यों की संख्या बराबर होगी। यदि दो कुलकों में एकैक संगति नहीं है तो एकैक संगति के रूप में सदस्यों के युग्म करने के पश्चात् जिस कुलक में कोई सदस्य शेष बचता है, वही बड़ा है। यदि हम यह जानना चाहें कि हमारे एक हाथ में अँगुलियों की संख्या अधिक है अथवा हमारी आँखों की संख्या तो आसानी से प्रतिचित्रण के द्वारा इसका निर्णय किया जा सकता है।

आँख कुलक		अंगुलि कुलक
बाईं आँख	⟶	छगुनी
दाहिनी आँख	⟶	कनिष्ठा
		माध्यिका
		तर्जनी

इस प्रतिचित्रण में अंगुलि-कुलक के कुछ सदस्य शेष बच गए, इसलिए यह सिद्ध हुआ कि अँगुलियों की संख्या आँखों की संख्या से अधिक है।

सिद्धांत रूप में हमारे दो अनपढ़ गड़रिये भी अपनी श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए यही प्रक्रिया अपना रहे थे। हाँ, उन्हें एकैक संगति क्या है, इसका कोई ज्ञान नहीं था।

गणनीय अनंत

खोदा पहाड़ निकली चुहिया? एक बड़े सिद्धांत की स्थापना की और सिद्ध किया कि अँगुलियों की संख्या आँखों की संख्या से अधिक है। बस, यही तो गणित का सौंदर्य है, वही उपकरण सरल से सरल और कठिन से कठिन समस्याओं के सुलझाने में काम आता है। सरल समस्याएँ ही गूढ़ सिद्धांतों की प्रकृति को स्पष्ट करती हैं।

आइए, अब देखें अपने प्राकृतिक संख्याओं एवं सम संख्याओं के दो अनंत समूहों को। उनमें से कौन बड़ा है? हमारे दोनों समूह निम्न प्रकार लिखे जा सकते हैं:

१	२	३	४	५	६	...
↕	↕	↕	↕	↕	↕	
२	४	६	८	१०	१२	...

दोनों ओर नोक वाले बाण ↔ का अर्थ है एकैक संगति का होना। पहले समूह के किसी भी सदस्य को हम लें, उसके अनुरूप दूसरे समूह में भी एक सदस्य उपलब्ध है। उसी प्रकार हम दूसरे समूह के किसी भी सदस्य को लें, उसके अनुरूप भी पहले समूह में एक सदस्य उपलब्ध है। उदाहरण के लिए हम कोई भी पूर्णांक सोचें, जैसे १०१ तो उसके लिए दूसरे समूह में २०२ संख्या होगी और यदि दूसरे समूह में ५०६ सोचें तो उसके अनुरूप २५३ पहले समूह में होगी। इस एकैक संगति का हमें कोई अपवाद नहीं मिल सकता है। अर्थात् पहले समूह और दूसरे समूह में पूर्ण रूप से एकैक संगति है।

इसका क्या अर्थ हुआ ? यहाँ हमें अपने सहज ज्ञान से थोड़ा अलग हट कर गणितीय तर्क को स्वीकारना होगा। गणना-अंक (अर्थात् १, २, ३, ४, . . .) और सम-अंक (अर्थात् २, ४, ६, . . .) दोनों ही अनंत हैं और दोनों की 'संख्या' बराबर है।

थोड़ा और विचार करने पर ज्ञात होगा कि अकेले सम-संख्याएँ ही ऐसी नहीं हैं जिनकी संख्या गणना अंकों के बराबर हो। ३, ६, ९, १२, . . . या ११, २२, ३३, ४४, ५५, ६६, . . . या इसी प्रकार के बहुत-से अन्य संख्या-समूह हम लिख सकते हैं जिनके अंकों की संख्या गणना अंकों की संख्या के बराबर है। ऊपर के उदाहरण की भाँति हम इन सभी समूहों की भी १, २, ३,. . .के साथ एकैक-संगति होना सरलता से दिखा सकते हैं।

ऐसे सभी समूहों का, जिनके सदस्यों की संख्या गणना-अंकों की संख्या के 'बराबर' हो, गणित में एक विशेष स्थान है। उन समूहों को हम 'गणनीय अनंत कुलक' कहते हैं। प्रसिद्ध गणितज्ञ केंटर ने, जिसने इसका सर्वप्रथम विश्लेषण किया, इस समूह के सदस्यों की संख्या को $\aleph_0$ (एलेफ-शून्य) की संज्ञा दी। इसमें शून्य शब्दांश क्यों लगाया इसका विवरण आगे विवेचन में मिलेगा।

ऊपर हम देख चुके हैं कि क्रम से आए हुए कितने भी छितरे अंक क्यों न हों, वे गणनीय अनंत हैं। कुछ उदाहरण और देखिए : २, ४, ८, १६, ३२, ६४, १२८, २५६, ५१२, १०२४, २०४८, . . . यह ऐसी अनंत श्रेणी है जिसका कोई भी पद पूर्व पद का दूना है। थोड़े आगे चलकर इस कुलक में अंक बहुत ही अधिक छितरे हैं, हज़ारों, लाखों, करोड़ों अंक छूटते जाएँगे, पर फिर भी उनकी संख्या गणनीय अनंत है क्योंकि १, २, ३, . . . के साथ हम इन्हें एकैक संगति में सजा सकते हैं, देखिए :

२,	४,	८,	३२,	६४,	१२८,	. . .
$२^{१}$,	$२^{२}$,	$२^{३}$,	$२^{४}$,	$२^{५}$,	$२^{६}$,	. . .
↕	↕	↕	↕	↕	↕	
१	२	३	४	५	६	

अब तो कोई संदेह की गुंजाइश नहीं है। यहाँ तक कि यदि हम और भी अधिक छितरे संख्या-समूह $स_{१}$, $स_{२}$, $स_{३}$ इत्यादि को भी चाहें तो इसी प्रकार गिन सकते हैं। और ये संख्याएँ भी, जिनमें हमारा $स_{२}$ से ही थोड़ा-सा परिचय है, गणनीय अनंत हैं।

इन उदाहरणों को देखकर अंत में यही कहना होता है कि अनंत की गति हम नहीं जानते।

आइए, अब एक दूसरी ओर देखें। हमने देखा था कि भिन्न संख्याएँ भी अनंत हैं। परंतु वहाँ किन्हीं भी दो पूर्णांकों के बीच अनंत भिन्न संख्याएँ मिलती हैं। यही नहीं, किन्हीं दो भिन्न संख्याओं के बीच भी अनंत भिन्न संख्याएँ हैं। इन भिन्न संख्याओं की बस्ती तो बहुत ही अधिक घनी है। अनुमान है कि इन भिन्न संख्याओं की संख्या अवश्य ही पूर्णांकों की संख्या से अधिक होगी। सहज बुद्धि तो यही कहती है। आइए, देखें हमारे गणित का सिद्धांत क्या उत्तर देता है।

भिन्न संख्या क्या है ? वह एक ऐसी संख्या है जिसका रूप $\frac{क}{ख}$ होता है जिसमें क और ख (शून्य को छोड़कर) कोई भी दो पूर्णांक हो सकते हैं। इस प्रकार एक भिन्न संख्या दो पूर्णांकों का एक युग्म है। $\frac{क}{ख}$ को हम चाहें तो (क, ख) की तरह भी लिख सकते हैं जिसमें पहला अंक अंश माना जाय और दूसरा अंक हर। इस प्रकार सभी भिन्न संख्याएँ दो पूर्णांकों की युग्म (क, ख) मात्र हैं।

परंतु अब समस्या है सभी भिन्न संख्याओं को लिखने की। पूर्णांक तो हमने १ से प्रारंभ कर १, २, ३, ४, ५, . . . लिख दिए और इस क्रम में, बिना किसी पूर्णांक को छोड़े हुए, सभी पूर्णांक लिखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए १, २, ३, ४, ५, लिखने के बाद ५ से छोटा कोई पूर्णांक शेष नहीं बचा है। पर भिन्न संख्याओं के लिए यह एक समस्या है। ० के बाद के भिन्न संख्या लिखना हो तो कौन-सी पहले लिखी जाए। यदि हम $\frac{१}{१०००}$ से प्रारंभ करें तब भी स्पष्ट है कि ० और $\frac{१}{१०००}$ के बीच अनंत भिन्न संख्याएँ छूट गई हैं। वस्तुत: हमें यदि सभी भिन्न संख्याएँ लिखनी हैं तो ऐसी कोई विधि होनी चाहिए जिसमें कोई भी भिन्न संख्या छूटे नहीं। जिस भिन्न संख्या का भी नाम लिया जाए, वह एक निश्चित स्थान पर मिल जाए।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें युग्म रूप में निम्न नियम से लिखा जा सकता है। पहली पंक्ति में वे सभी संख्याएँ, जिन का अंश १ हो, दूसरी में वे सभी संख्याएँ, जिनका अंश २, तीसरी में ३ अंश वाली संख्याएँ, इत्यादि :

(१, १)　(१, २)　(१, ३)　(१, ४)　(१, ५) . . .
(२, १)　(२, २)　(२, ३)　(२, ४)　(२, ५) . . .
(३, १)　(३, २)　(३, ३)　(३, ४)　(३, ५) . . .
(४, १)　(४, २)　(४, ३)　(४, ४)　(४, ५) . . .
(५, १)　(५, २)　(५, ३)　(५, ४)　(५, ५) . . .
. . . .　. . . . .　. . . . .　. . . . .
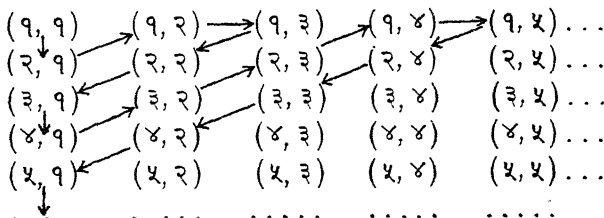
हम देख सकते हैं कि इस रीति से लिखने पर सभी भिन्न संख्याएँ आ जाएँगी। हम चाहे जिस भिन्न संख्या को भी सोचें, उसका एक निश्चित स्थान बताया जा सकता है। $\frac{८}{११}$ अथवा (८,११) हमें आठवीं पंक्ति और ग्यारहवें स्तंभ में मिलेगी, $\frac{१०१}{३४७}$ हमें १०१वीं पंक्ति के ३४७वें स्तंभ में मिलेगी। व्यापक रूप से $\frac{क}{ख}$ अथवा (क, क) हमें क-वीं पंक्ति में ख-वें स्तंभ में मिलेगी।

इस निरूपण में एक विशेषता और है। न केवल कोई भी भिन्न संख्या छूटेगी नहीं वरन् कुछ संख्याएँ एक से अधिक बार आ जाएँगी। संख्या १ इसमें अनंत बार आवर्त्त होती है। विकर्ण में लिखे युग्म (१, १), (२, २), (३, ३) . . . वास्तव में १ के ही भिन्न रूप हैं। इसी प्रकार अन्य भिन्न संख्याओं के भी अनंत रूपों का आवर्त्तन होगा जैसे $\frac{१}{२}$ के लिए

(१, २), (२, ४), (३, ६) . . . युग्मों की श्रेणी।

इस तथ्य का हमारी गणना पर क्या प्रभाव होगा ? स्पष्ट है कि इस निरूपण में संख्या युग्मों को गिन कर जो गिनती आएगी वह भिन्न संख्याओं की वास्तविक गिनती से अधिक होगी। किसी भी अवस्था में उससे कम तो हो नहीं सकती है। आइए, इन युग्मों को गिनने का प्रयास किया जाए।

इन सभी युग्मों को हम एक दूसरे क्रम में भी लिख सकते हैं। पहले हम उन युग्मों को लिखें जिनके दोनों पूर्णांकों का जोड़ २ हो—ऐसा एक ही युग्म है (१, १)। इसके बाद हम उन्हें लिखें जिनका जोड़ ३ हो—ऐसे दो युग्म हैं (२, १), (१, २)। इसके बाद क्रमशः ४, ५, ६, ७, . . . जोड़ वाले युग्मों को लिखते जाएँ। ऊपर चित्र में यदि हम तीर के सहारे चलें तो ऊपर के दाहिने कोने और नीचे के बाएँ कोने को जोड़ने वाले विकर्णों पर बराबर जोड़ वाले युग्म मिलेंगे। इन सब युग्मों को निम्न प्रकार से एक क्रम में लिख सकते हैं :

१	२	३	४	५	६	७	८
↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓
(१, १)	(२, १)	(१, २)	(१, ३)	(२, २)	(३, १)	(४, १)	(३, २)
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	
↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓	
(२, ३)	(१, ४)	(१, ५)	(२, ४)	(३, ३)	(४, २)	(५, १) . . .	

इस क्रम में यह उल्लेखनीय है कि सभी भिन्न संख्याएँ सम्मिलित होंगी क्योंकि अंततोगत्वा ये वर्गाकार में निरूपित भिन्न संख्याओं का केवल एक अन्य क्रम मात्र हैं। और आश्चर्य की तो यह बात है कि उन्हें क्रमबद्ध करते ही इन सब युग्मों से पूर्णांकों के साथ एकैक संगति स्थापित की जा सकती है। प्रत्येक युग्म हमारी इस गणना में सम्मिलित है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि भिन्न संख्याओं की संख्या पूर्णांकों की संख्या के बराबर है। हमारे सहज ज्ञान में यही प्रतीत होता है कि भिन्न संख्याएँ पूर्णांकों की अपेक्षा अनंत गुना अधिक हैं। गणितीय निष्कर्ष सहज ज्ञान के विपरीत है।

यही नहीं, कैंटर ने यह भी सिद्ध किया कि सभी बीजीय संख्याएँ भी गणनीय अनंत हैं। अर्थात् उनकी संख्या भी पूर्णांकों की संख्या के बराबर ही है। जब बीजीय संख्या से हमारा प्रथम परिचय हुआ था, तब यही प्रतीत होता था कि बीजीय संख्या भिन्न संख्याओं से भी कहीं अधिक होगी।

इस स्थल पर आकर हमें ऐसा भान होता है कि मानो हम ठग लिए गए हों। धीरे-धीरे जब हमने संख्याओं का इतना विशाल भवन बनाया तब लगता था कि बहुत बड़ा होगा, पर जब गिनने बैठे तब वहीं के वहीं। पूर्णांकों से प्रारंभ किया था, पर उनकी संख्या के आगे ही नहीं बढ़ पाते हैं। या तो हम केवल शब्दों के जाल में फँस गए हैं अथवा किसी मृग-मरीचिका के पीछे पड़े हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि गणनीय अनंत के आगे कुछ होता ही नहीं। यदि ऐसा है तो अनंत-अनंत सभी बराबर हैं और हम एक स्वयंसिद्ध बात को सिद्ध करने का प्रयास मात्र कर रहे हैं।

बात ऐसी नहीं है। अभी तक जो कुछ किया वह आवश्यक ही था और ये तथ्य गणितज्ञों के हाथ बहुत प्रयास के बाद लगे। न जाने कितनें प्रकार की धारणाएँ थीं इन विषयों पर। अब नये विश्लेषण ने उसे आच्छादित करने वाले तिमिर और अव्यवस्था को समाप्त कर हमारे सामने एक सुस्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया है। गणनीय अनंत संख्या बीजीय संख्या-समुदाय पर आकर समाप्त हो जाती है। अबीजीय संख्याओं को गिनना संभव नही है। इसके प्रमाण का भी श्रेय कैंटर को ही प्राप्त है।

अबीजीय संख्याएँ गणनीय अनंत नहीं हैं, यह कहने का अर्थ हुआ कि हमारा वास्तविक संख्या परिवार गणनीय अनंत नहीं है। यह सिद्ध करने के लिए यह पर्याप्त होगा कि हम सिद्ध कर दें कि ० और १ के बीच अवस्थित वास्तविक संख्या परिवार गणनीय अनंत नही है।

गणनीय अनंत होने का क्या अर्थ है, इस पर एक बार पुन: विचार कीजिए। गणनीय का अर्थ है कि उस संख्या परिवार के सभी सदस्यों को हम एक ऐसे क्रम में रख सकते हैं कि पूर्णांकों से उनकी एकैक संगति स्थापित की जा सके। यदि हम यह सिद्ध कर दें कि किसी परिवार के सदस्यों को हम चाहे किसी प्रकार भी व्यवस्थित रूप से रखें, कम से कम उसका एक सदस्य छूट जाएगा तो इसका अर्थ होगा कि वह गणनीय अनंत नहीं हैं। गणित में 'कम से कम एक' के अर्थ से तो हम भली भाँति परिचित हैं ही।

मान लीजिए कि ० और १ के बीच का वास्तविक संख्या परिवार गणनीय अनंत के रूप में दिया हुआ है अर्थात उसका प्रत्येक सदस्य पूर्णांकों के साथ एकैक संगति के रूप में लिखा जा सकता है। वास्तविक संख्या परिवार के इन सभी सदस्यों को हम सतत् दशमलव के रूप में एक क्रम से लिखेंगे। सर्वप्रथम पहली संख्या गणना-अंक १ के समकक्ष लिख देंगे। उसके बाद गणना-अंक २ के समकक्ष वास्तविक संख्या परिवार के दूसरे सदस्य को लिख देंगे। इसी प्रकार ३, ४, ५, ६, ... इत्यादि के समकक्ष इस परिवार की वास्तविक संख्याएँ एक दूसरे के नीचे क्रमश: लिखते जाएँगे। इस एकैक संगति का प्रतिचित्रण निम्न प्रकार होगा:

१ ⟷ ०.३७२५६...
२ ⟷ ०.१५५७१...
३ ⟷ ०.०१५४६...
४ ⟷ ०.५०३७२...
... .

जहाँ हमने सब संख्याओं को इस प्रकार व्यवस्थित करके लिख लिया, प्रश्न आता है कि क्या हम सभी अपरिमेय संख्याओं को लिख चुके अथवा कोई ऐसी संख्या भी है जो हमारे प्रतिचित्रण से बच रही हो? यही गणनीयता की कसौटी है।

यह सिद्ध किया जा सकता है कि इस प्रकार सब संख्याओं को पूर्णांकों से एकैक संगति के रूप में चित्रित करने पर भी हम ० और १ के बीच की ऐसी वास्तविक संख्या

लिख सकते हैं जो इन सभी लिखी गई संख्याओं से भिन्न होगी । इस नई संख्या की रचना हम दशमलव रूप में ही करेंगे ।

इस इच्छित संख्या की रचना के लिए दशमलव के बाद प्रत्येक अंक किस प्रकार लिखा जाए इस पर विचार करना होगा। दशमलव के बाद के प्रथम अंक के लिए हम पहली पंक्ति की संख्या को देखेंगे। उस संख्या के पहले दशमलव अंक के अलावा हम कोई अन्य अंक चुन सकते हैं। पहली पंक्ति में १ से संगत संख्या का पहला अंक ३ है। इसलिए इच्छित संख्या के लिए इससे भिन्न कोई भी अंक चुन सकते हैं, जैसे ४। इसी प्रकार दशमलव के बाद दूसरे अंक को लिखने के लिए हम दूसरी पंक्ति में लिखे २ के संवादी अंक के दूसरे अंक की ओर दृष्टि डालते हैं। इच्छित संख्या का दूसरा अंक इस संख्या के दूसरे अंक से भिन्न लेंगे। इस संख्या का दूसरा अंक है ४ और इच्छित संख्या के दूसरे स्थान के लिए इससे भिन्न अंक चुनते है, जैसे ३ । इच्छित संख्या के तीसरे अंक के लिए तीसरी पंक्ति की संख्या के तीसरे अंक से भिन्न अंक लेंगे, जैसे ६ । और इसी प्रकार हम चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ इत्यादि अंक लिखते जाएँगे । यह संख्या कुछ इस प्रकार होगी :

०.४३६०

यह स्पष्ट है कि इस विशेष रचना-विधि के कारण ही यह नई संख्या पंक्तियों में लिखी हुई सभी वास्तविक संख्याओं से भिन्न होगी । परंतु इन संख्याओं को तो हमने गणनीय अनंत मानकर एक व्यवस्थित रूप से लिखा था। हमने जो नई संख्या बनाई, वह स्वयं एक वास्तविक संख्या है और लिखी संख्याओं से भिन्न है। अर्थात् हमें एक वास्तविक संख्या प्राप्त हो गई जो इस गणना से छूट गई थी।

यदि एक ऐसी संख्या हमें मिल गई जो गणना से छूट गई थी तो ऐसी एक और संख्या भी मिल सकती है, और एक और भी, अर्थात् हमें इस प्रकार ऐसी अनंत संख्याएँ मिल सकती हैं जो इस गणना से छूट गई हों।

वस्तुत: वास्तविक संख्या परिवार के लिए कोई भी ऐसा क्रम नहीं निर्धारित किया जा सकता है जिसमें सभी अपरिमेय संख्याओं का सम्मिलित होना सिद्ध किया जा सके। अतएव वास्तविक संख्या समुदाय का गणनीय अनंत होना असंभव है। इसलिए वास्तविक संख्या समुदाय एक अगणनीय अनंत है।

हम पहले देख चुके है कि एक सरल रेखा के बिंदु और वास्तविक संख्याएँ एकैक संगति में प्रतिचित्रित किए जा सकते हैं। इस प्रकार सरल रेखा पर बिंदुओं की संख्या भी अगणनीय अनंत है। इस अगणनीय बिंदुओं और वास्तविक संख्याओं की अनंत संख्या को अनंत संख्या शब्द χ_1 (एलेफ-एक) की संज्ञा दी गई है।

हम अब अनंत के और गहरे विवेचन में नहीं जाएँगे। परंतु कुछ तथ्यों को कथन के रूप में अवश्य प्रस्तुत करेंगे। जैसे हमने देखा कि पूर्णांकों की संख्या भिन्न संख्याओं और यहाँ तक कि बीजीय संख्याओं की संख्या के बराबर है, उसी प्रकार कैंटर ने यह भी सिद्ध किया कि:

(१) रेखा के किसी भी भाग के बिंदुओं की संख्या पूरी रेखा के बिंदुओं की संख्या के बराबर है। अर्थात् सरल रेखा पर अवस्थित बिंदुओं का एक भाग उस

रेखा के संपूर्ण बिंदुओं के बराबर है।

(२) किसी सरल रेखा पर अवस्थित बिंदुओं को एक पूरे समतल से अवस्थित बिंदुओं के साथ एकैक संगति में चित्रित किया जा सकता है। अर्थात् एक सरल रेखा पर बिंदुओं की संख्या एक समतल के बिंदुओं की संख्या के बराबर है। हम यह देख चुके हैं कि समतल के बिंदुओं के रूप में संमिश्रित संख्या-समुदाय निरूपित किया जा सकता है। इसलिए वास्तविक संख्या समुदाय और संमिश्रित-संख्या समुदाय आपस में बराबर हैं।

(३) यही नहीं, एक सरल रेखा के बिंदुओं को त्रिविम, चतुर्विम या अनेकविमों के आकाश के भी बिंदुओं के साथ भी एकैक संगति में चित्रित किया जा सकता है। अर्थात् एक सरल रेखा के एक छोटे से भाग पर उतने ही बिंदु हैं जितने पूरे विश्व में या इसके आगे भी यदि कोई अधिक विमाओं वाला विश्व हो, उसके भी बिंदुओं के भी बराबर।

ये सभी कुलक अगणनीय अनंत χ_1 की श्रेणी में आते हैं। क्या इससे भी अधिक कुछ शेष रह गया है ? अब तो पूरे विश्व के सभी बिंदु इसमें समाहित हो चुके हैं। जी नहीं, अभी हम अंत तक नहीं पहुँचे हैं। आइए, कुछ और विचार करें। एक समतल पर हम अनेक प्रकार की रेखाएँ खींच सकते हैं, जैसे कि इस चित्र में। इनमें कुछ रेखाएँ सम-

आकारों की होंगी, कुछ आड़ी टेढ़ी। इन सब रेखाओं की क्या संख्या होगी ? यह सिद्ध किया गया है कि गणना χ_1 के संख्या-समुदाय से इन रेखाओं की एकैक संगति नहीं स्थापित की जा सकती है। इस प्रकार इनकी संख्या χ_1 से भी बड़ी है और उसे χ_2 कहते हैं।
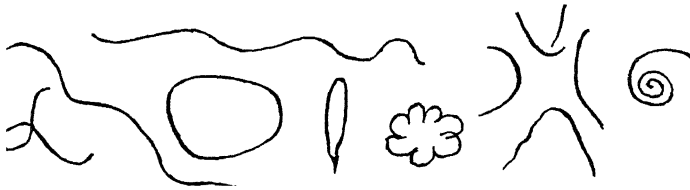
χ_0, χ_1, χ_2 यहाँ पर आकर हम अपनी सहज कल्पना के किनारे पर पहुँच जाते हैं; ठीक उसी प्रकार जैसे हमारे पूर्वज १, २ और ३ पर रुक गए थे।

परंतु गणितीय आगम हमें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। जब χ_2 तक आ गए तो इससे भी बड़ा कुछ होगा चाहे हम मूर्त्त रूप से उसकी कल्पना करने में अक्षम ही क्यों न हों। वस्तुत: कैंटर ने यह भी सिद्ध किया कि χ_0, χ_1, χ_2, के प्रकार के अनंत संख्या अंकों की स्वयं ही एक अनंत श्रेणी है χ_1, χ_2,

यदि $\chi_{क}$ एक अनंत संख्यांक है तो $\chi_{क+१}$ उससे आगे का अनंत संख्यांक होगा। इस प्रकार गणना अंकों की भाँति इन अनंत संख्यांकों के परिवार का भी सृजन किया जा सकता है। इसका वस्तुरूप में सृजन किस प्रकार होगा, यह हम अनंत के गणित के विवेचन में देखेंगे।

प्राचीन भारत में अनंत की कल्पना

सहज ज्ञान और साधारण गणित की परिधि के बाहर हम बहुत-सी बातें कर चुके हैं। आइए, इनका पुनरावलोकन करें। अनंत संख्यांक श्रेणी में पहुँच कर सबसे पहले तो गणित का एक मुख्य स्वयंसिद्ध 'किसी वस्तु का भाग उस वस्तु से छोटा होता है' असिद्ध हो गया। पश्चिम में इस सिद्धांत की प्रस्थापना में बहुत काल लगा, क्योंकि यह सहज ज्ञान के नितांत विपरीत है। इसलिए संभावना की कोटि में ही नहीं था। परंतु भारत के चिन्तक अनादि और अनंत की कल्पना में बहुत आगे थे। वेदांत में ब्रह्म को पूर्ण के रूप में देखा गया है। उस पूर्ण की कल्पना कितनी महत् थी।

ईशोपनिषद् में एक श्लोक आता है :

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदम, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते॥

पूर्ण से पूर्ण निकल जाने पर पूर्ण ही शेष बच रहता है। सृष्टि के आदि में उसी पूर्ण ब्रह्म से पूर्ण जगत् का आगम है और अंत में उसी में विलय। पूर्ण निर्विकार है।

डॉ० ब्रजमोहन लिखते हैं कि कुछ लोग अवतारवाद में विश्वास नहीं करते। वे कहते हैं कि 'कृष्णजी १६ कला के अवतार थे अर्थात् उनमें पूर्ण रूप से ईश्वरत्त्व विद्यमान था।' अब प्रश्न यह है कि जब कृष्णजी इस लोक में मनुष्य रूप में जीवित थे, तब ईश्वर कहाँ था। संपूर्ण ईश्वरत्त्व तो कृष्णजी में ही समाया हुआ था। अतः ईश्वरत्त्व का लोप हो गया था। ऐसे व्यक्ति ईश्वरत्त्व, पूर्णत्त्व और अनंतता का अर्थ नहीं समझते। यदि ईश्वर के सभी गुण ले कर एक नयी सत्ता का निर्माण कर लिया जाए तो भी ईश्वर के समस्त गुण ईश्वर में अक्षुण्ण बने रहेंगे। यदि एक दिये से हज़ार दिये जला दिए जाएँ तब भी उस दिये की ज्योति में कोई अंतर नहीं पड़ता।

यह तो परब्रह्म के स्वरूप की बात रही, पर हम तो बड़ साधारण प्रश्नों में ही पूर्ण से पूर्ण के निकलने और उसके मिलने पर विकार न होने का प्रत्यक्ष अवलोकन कर चुके हैं। असंख्य संख्याओं में असंख्य संख्याएँ जोड़ देने पर भी संख्या असंख्य ही रहती है तथा असंख्य संख्याओं में से असंख्य संख्याएँ घटा भी दें, तब भी असंख्य संख्याएँ शेष रह जाती हैं। ब्रह्म की किस एलेफ़ के बराबर कल्पना की जाए, संभवतः $\chi_{\chi_{\chi \ldots}}$

यही नहीं कि भारतीय चिन्तक ब्रह्म की कल्पना तक ही सीमित रहे। उनकी अनंत विषयक गणितीय कल्पना भी अति उदात्त थी। किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर जो लब्धि होती है, उसके रूप में भी अनंत को देखा जा सकता है। ब्रह्मगुप्त ने पाँचवीं शताब्दी में इस परिकर्म को $\frac{\text{य}}{0}$ की भाँति लिखने को कहा है। कृष्ण दैवज्ञ इसके विषय में लिखते हैं, "जैसे-जैसे भाजक घटता जाता है, वैसे-वैसे लब्धि बढ़ती जाती है। यदि भाजक परमाल्प हो जाए, तो लब्धि परमाधिक हो जाएगी। परंतु यदि कहा जाए कि लब्धि इतनी है तो

घुमाकर इस तरह रखने से प्राप्त हो सकते हैं, जिसे हम घूर्णित वर्ग कहते हैं अथवा कुछ वर्ग इसी माया-वर्ग की दर्पण-छवि मात्र होंगे जिन्हें प्रतिबिंब माया-वर्ग कहते हैं। दर्पण-छवि में आकार वही रहता है, पर दाहिना भाग बायाँ और बायाँ भाग दाहिना दिखाई पड़ता है। हम इन्हें भिन्न माया-वर्ग नहीं मानते हैं। इसलिए तीसरी श्रेणी का एक ही माया-वर्ग माना जाता है।

खजुराहो का पिशाच माया-वर्ग

हम चौथी-श्रेणी में माया-वर्गों की टोह में चलते हैं, तो हमें एक विविध और आश्चर्यजनक माया-जगत मिलता है। दुनिया का सबसे पुराना चतुर्थ-श्रेणी का माया-वर्ग खजुराहो के प्रसिद्ध मंदिर में लगभग बारहवीं शताब्दी में बनाया गया था। इसकी प्रत्येक पंक्ति, स्तंभ व विकर्ण के अंकों का योग ३४ है। इस माया-वर्ग में कुछ और विशेषताएँ

७	१२	१	१४
२	१३	८	११
१६	३	१०	५
९	६	१५	४

हैं। इसके खण्डित विकर्णों का योग भी ३४ ही है। इस प्रकार के एक टूटे विकर्ण के अंक हैं १, १३, १६, ४; दूसरे के हैं १२, २, ५, १५; तीसरे के हैं १, ११, १६, ६ इत्यादि। इन सभी अंकों का योग ३४ ही है। इस प्रकार के माया-वर्ग को पिशाच या सर्वविकर्ण माया-वर्ग भी कहते हैं। इन पिशाच माया-वर्गों की यह विशेषता है कि यदि हम सबसे ऊपर की पंक्ति के अंकों को स्थानापन्न कर सबसे नीचे एक नई पंक्ति बनाकर रख दें, तो भी जो नया वर्ग बनेगा, वह भी एक पिशाच-माया-वर्ग ही होगा। इसी प्रकार सबसे नीचे

७	१२	१	१४
२	१३	८	११
१६	३	१०	५
९	६	१५	४
७	१२	१	१४

पंक्ति स्थानापन्न माया-वर्ग

७	१२	१	१४	७
२	१३	८	११	२
१६	३	१०	५	१६
९	६	१५	४	९

स्तंभ-स्थानापन्न माया-वर्ग

की पंक्ति को सबसे ऊपर स्थानापन्न कर दें या दाहिनी ओर के स्तंभ को सबसे बायीं ओर या सबसे बायीं ओर के स्तंभ को सबसे दाहिनी ओर स्थानापन्न कर दें, तब भी नया वर्ग सदा ही एक माया-वर्ग होगा और एक पिशाच माया-वर्ग ही होगा। हमारे तीसरी श्रेणी के माया-वर्ग में यह गुण नहीं है। वह एक साधारण माया-वर्ग ही है।

इस माया-वर्ग में कुछ और माया भी है। चारों कोनों के अंकों को जोड़ें (७, १४, ४, ९) तो भी जोड़ ३४ होगा। इसी प्रकार पहली पंक्ति के अंतिम दो अंक (१, १४) और अंतिम पंक्ति के अंतिम दो अंक (१५, ४) का भी वही योग है। वर्ग के बीच में चार वर्गों के अंक (१३, ८, १०, ३) का भी वही योग है। यहाँ तक कि यदि हम किन्हीं दो पंक्तियों और किन्हीं दो स्तम्भों के मिलन-स्थल पर वर्गों में अंकित चारों अंकों को जोड़ें तो योग ३४ ही होगा। है न यह वास्तव में एक माया-वर्ग!

सम्मित माया-वर्ग

पश्चिम में सबसे प्राचीन प्रकाशित माया-वर्ग पन्द्रहवीं शताब्दी में एल्ब्रेक्ट डूरेर (१४७१–१५२८ ई०) का है। वह एक प्रसिद्ध कलाकार था और उसने एक चतुर्थ-श्रेणी का माया-वर्ग अपनी सुप्रसिद्ध कलाकृति 'मैलेंकोलिया' पर खोदा था। इस माया-वर्ग में

१६	३	२	१३
५	१०	११	८
९	६	७	१२
४	१५	१४	१

कलाकृति बनाने की तिथि १५१४ ई०, पिछले पृष्ठ पर दिए, दो वर्गों की संख्या द्वारा व्यक्त की गई है। हो सकता है कि पहले उसने यह तिथि खोदी हो और फिर अंकों से खेलते हुए यह माया-वर्ग बनाने की सोची हो।

यह माया-वर्ग भारतीय माया-वर्ग की भाँति सर्वविकर्ण नहीं है। यह हम कुछ संख्याओं को जोड़कर देख सकते हैं। परंतु इसमें एक और विशेषता है। इसमें विपरीत कोनों के अंकों का योग १६+१ अन्य दो विपरीत कोनों के अंकों के योग १३+४ के बराबर है। यही नहीं, अन्य विपरीत दिशाओं में अवस्थित अंकों, यथा ५+१२, ६+८, १५+२, १४+३ सभी का योग १७ ही है। इस वर्ग में किन्हीं भी दो विपरीत कोनों का योग अचर रहता है। और इसी कारण कई अन्य चतुर्वर्ग समूहों के अंकों का योग ३४ ही होता है, यथा १६+१३+१+४, ५+८+१२+९, १६+३+१०+५, १०+११+७+६ इत्यादि। इस प्रकार के माया-वर्ग को सम्मित माया-वर्ग कहते हैं।

जहाँ तृतीय श्रेणी का केवल एक ही माया-वर्ग है, चतुर्थ श्रेणी के कम से कम ८८० माया-वर्ग बनाए जा सकते हैं—इनमें घूर्णन द्वारा और प्रतिबिंबन द्वारा बने माया-वर्ग सम्मिलित नहीं हैं। पंचम श्रेणी और उससे अधिक बड़े माया-वर्गों कें विषय में कितने संभव माया-वर्ग बन सकते हैं इसका गणित के द्वारा निश्चित संख्या निकालना संभव नहीं है। कहते हैं कि पंचम श्रेणी के पाँच लाख से भी अधिक माया-वर्ग बन सकते हैं और षष्ठ-श्रेणी के ५६७,७०५,६००। यह नहीं मालूम कि यह संख्या कैसे निकाली गई और इसमें प्रतिबिंब वर्ग सम्मिलित हैं अथवा नहीं।

पिशाच माया वर्गों के विषय में कुछ आगे भी खोज हुई है। कुछ अपवादों को छोड़ चतुर्थ-श्रेणी और उससे अधिक सभी श्रेणियों के पिशाच माया-वर्ग बनाना संभव है। केवल उन श्रेणियों के पिशाच माया-वर्ग नहीं बन सकते जो सम तो हैं, पर जिनमें ४ से भाग नहीं जाता। जैसे षष्ठ श्रेणी का पिशाच माया-वर्ग नहीं हो सकता, उसी प्रकार १०, १४, १८. . . श्रेणी के भी पिशाच माया-वर्ग नहीं बन सकते हैं। पाँचवीं श्रेणी के २८,८०० पिशाच माया-वर्ग संभव हैं परंतु इस संख्या में घूर्णित और प्रतिबिंब माया-वर्ग भी सम्मिलित हैं।

माया-वर्ग रचना की एक विधि

माया-वर्गों की रचना के लिए कोई निश्चित् गणितीय नियम उपलब्ध नहीं है। इन्हें अनुमान और परीक्षा की विधि से ही बनाया जा सकता है। यहाँ हम एक नियम अलबत्ता प्रस्तुत करते हैं जिससे कुछ माया-वर्ग बनाए जा सकते हैं। इस नियम में सर्व प्रथम दो उपवर्गों की रचना की जाती है जिन्हें जोड़ कर माया-वर्ग बनता है। उदाहरणार्थ पंचम-श्रेणी का माया-वर्ग दो वर्गों की सहायता से निम्न प्रकार बनाया जा सकता है। एक वर्ग में १, २, ३, ४, ५ को इस प्रकार रखो कि सभी स्तंभों, सभी पंक्तियों और दोनों विकर्णों के अंकों का योग बराबर हो। आगे दिए वर्ग में इन सभी में अंकों का योग १५ है।

३	१	४	२	५
५	३	१	४	२
२	५	३	१	४
४	२	५	३	१
१	४	२	५	३

इसी प्रकार ०, ५, १०, १५, २० की सहायता से एक दूसरा वर्ग बनाएँ। निम्न वर्ग में पंक्तियों, स्तंभों व विकर्णों की संख्याओं का योग ५० है।

१५	०	२०	५	१०
०	२०	५	१०	१५
२०	५	१०	१५	०
५	१०	१५	०	२०
१०	१५	०	२०	५

ऊपर के दोनों वर्गों में एक बात ध्यान देने की है। उनमें से प्रत्येक में दिए हुए पाँच अंकों में से प्रत्येक पंक्ति, प्रत्येक स्तंभ तथा एक विकर्ण में एक अंक एक ही बार आता है और इस प्रकार उनका योग बराबर हो जाता है। प्रश्न एक विकर्ण का रह जाता है। पहले वर्ग के एक विकर्ण के सभी स्थानों पर ३, ३ . . . ही अंक आए हैं और दूसरे पर १०, १० . . . । यह भी ध्यान देने योग्य है कि ३ का विकर्ण बाईं से दाहिनी ओर और १० का विकर्ण उसके विपरीत दिशा में है। इस नियम के अनुसार समान अंक वाले दोनों

१८	१	२४	७	१५
५	२३	६	१४	१७
२२	१०	१३	१६	४
९	१२	२०	३	२१
११	१९	२	२५	८

घुमाकर इस तरह रखने से प्राप्त हो सकते हैं, जिसे हम घूर्णित वर्ग कहते हैं अथवा कुछ वर्ग इसी माया-वर्ग की दर्पण-छवि मात्र होंगे जिन्हें प्रतिबिंब माया-वर्ग कहते हैं। दर्पण-छवि में आकार वही रहता है, पर दाहिना भाग बायाँ और बायाँ भाग दाहिना दिखाई पड़ता है। हम इन्हें भिन्न माया-वर्ग नहीं मानते हैं। इसलिए तीसरी श्रेणी का एक ही माया-वर्ग माना जाता है।

खजुराहो का पिशाच माया-वर्ग

हम चौथी-श्रेणी में माया-वर्गों की टोह में चलते हैं, तो हमें एक विविध और आश्चर्यजनक माया-जगत मिलता है। दुनिया का सबसे पुराना चतुर्थ-श्रेणी का माया-वर्ग खजुराहो के प्रसिद्ध मंदिर में लगभग बारहवीं शताब्दी में बनाया गया था। इसकी प्रत्येक पंक्ति, स्तंभ व विकर्ण के अंकों का योग ३४ है। इस माया-वर्ग में कुछ और विशेषताएँ

७	१२	१	१४
२	१३	८	११
१६	३	१०	५
९	६	१५	४

हैं। इसके खण्डित विकर्णों का योग भी ३४ ही है। इस प्रकार के एक टूटे विकर्ण के अंक हैं १, १३, १६, ४; दूसरे के हैं १२, २, ५, १५; तीसरे के हैं १, ११, १६, ६ इत्यादि। इन सभी अंकों का योग ३४ ही है। इस प्रकार के माया-वर्ग को पिशाच या सर्वविकर्ण माया-वर्ग भी कहते हैं। इन पिशाच माया-वर्गों की यह विशेषता है कि यदि हम सबसे ऊपर की पंक्ति के अंकों को स्थानापन्न कर सबसे नीचे एक नई पंक्ति बनाकर रख दें, तो भी जो नया वर्ग बनेगा, वह भी एक पिशाच-माया-वर्ग ही होगा। इसी प्रकार सबसे नीचे

७	१२	१	१४
२	१३	८	११
१६	३	१०	५
९	६	१५	४
७	१२	१	१४

पंक्ति स्थानापन्न माया-वर्ग

७	१२	१	१४	७
२	१३	८	११	२
१६	३	१०	५	१६
९	६	१५	४	९

स्तंभ-स्थानापन्न माया-वर्ग

की पंक्ति को सबसे ऊपर स्थानापन्न कर दें या दाहिनी ओर के स्तंभ को सबसे बायीं ओर या सबसे बायीं ओर के स्तंभ को सबसे दाहिनी ओर स्थानापन्न कर दें, तब भी नया वर्ग सदा ही एक माया-वर्ग होगा और एक पिशाच माया-वर्ग ही होगा। हमारे तीसरी श्रेणी के माया-वर्ग में यह गुण नहीं है। वह एक साधारण माया-वर्ग ही है।

इस माया-वर्ग में कुछ और माया भी है। चारों कोनों के अंकों को जोड़ें (७, १४, ४, ९) तो भी जोड़ ३४ होगा। इसी प्रकार पहली पंक्ति के अंतिम दो अंक (१, १४) और अंतिम पंक्ति के अंतिम दो अंक (१५, ४) का भी वही योग है। वर्ग के बीच में चार वर्गों के अंक (१३, ८, १०, ३) का भी वही योग है। यहाँ तक कि यदि हम किन्हीं दो पंक्तियों और किन्हीं दो स्तम्भों के मिलन-स्थल पर वर्गों में अंकित चारों अंकों को जोड़ें तो योग ३४ ही होगा। है न यह वास्तव में एक माया-वर्ग!

सम्मित माया-वर्ग

पश्चिम में सबसे प्राचीन प्रकाशित माया-वर्ग पन्द्रहवीं शताब्दी में एल्ब्रेक्ट डूरेर (१४७१–१५२८ ई०) का है। वह एक प्रसिद्ध कलाकार था और उसने एक चतुर्थ-श्रेणी का माया-वर्ग अपनी सुप्रसिद्ध कलाकृति 'मैलेंकोलिया' पर खोदा था। इस माया-वर्ग में

१६	३	२	१३
५	१०	११	८
९	६	७	१२
४	१५	१४	१

कलाकृति बनाने की तिथि १५१४ ई०, पिछले पृष्ठ पर दिए, दो वर्गों की संख्या द्वारा व्यक्त की गई है। हो सकता है कि पहले उसने यह तिथि खोदी हो और फिर अंकों से खेलते हुए यह माया-वर्ग बनाने की सोची हो।

यह माया-वर्ग भारतीय माया-वर्ग की भाँति सर्वविकर्ण नहीं है। यह हम कुछ संख्याओं को जोड़कर देख सकते हैं। परंतु इसमें एक और विशेषता है। इसमें विपरीत कोनों के अंकों का योग १६+१ अन्य दो विपरीत कोनों के अंकों के योग १३+४ के बराबर है। यही नहीं, अन्य विपरीत दिशाओं में अवस्थित अंकों, यथा ५+१२, ९+८, १५+२, १४+३ सभी का योग १७ ही है। इस वर्ग में किन्हीं भी दो विपरीत कोनों का योग अचर रहता है। और इसी कारण कई अन्य चतुर्वर्ग समूहों के अंकों का योग ३४ ही होता है, यथा १६+१३+१+४, ५+८+१२+९, १६+३+१०+५, १०+११+७+६ इत्यादि। इस प्रकार के माया-वर्ग को सम्मित माया-वर्ग कहते हैं।

जहाँ तृतीय श्रेणी का केवल एक ही माया-वर्ग है, चतुर्थ श्रेणी के कम से कम ८८० माया-वर्ग बनाए जा सकते हैं—इनमें घूर्णन द्वारा और प्रतिबिंबन द्वारा बने माया-वर्ग सम्मिलित नहीं हैं। पंचम श्रेणी और उससे अधिक बड़े माया-वर्गों के विषय में कितने संभव माया-वर्ग बन सकते हैं इसका गणित के द्वारा निश्चित संख्या निकालना संभव नहीं है। कहते हैं कि पंचम श्रेणी के पाँच लाख से भी अधिक माया-वर्ग बन सकते हैं और षष्ठ-श्रेणी के ५६७,७०५,६००। यह नहीं मालूम कि यह संख्या कैसे निकाली गई और इसमें प्रतिबिंब वर्ग सम्मिलित हैं अथवा नहीं।

पिशाच माया वर्गों के विषय में कुछ आगे भी खोज हुई है। कुछ अपवादों को छोड़ चतुर्थ-श्रेणी और उससे अधिक सभी श्रेणियों के पिशाच माया-वर्ग बनाना संभव है। केवल उन श्रेणियों के पिशाच माया-वर्ग नहीं बन सकते जो सम तो हैं, पर जिनमें ४ से भाग नहीं जाता। जैसे षष्ठ श्रेणी का पिशाच माया-वर्ग नहीं हो सकता, उसी प्रकार १०, १४, १८. . . श्रेणी के भी पिशाच माया-वर्ग नहीं बन सकते हैं। पाँचवीं श्रेणी के २८,८०० पिशाच माया-वर्ग संभव हैं परंतु इस संख्या में घूर्णित और प्रतिबिंब माया-वर्ग भी सम्मिलित हैं।

माया-वर्ग रचना की एक विधि

माया-वर्गों की रचना के लिए कोई निश्चित् गणितीय नियम उपलब्ध नहीं है। इन्हें अनुमान और परीक्षा की विधि से ही बनाया जा सकता है। यहाँ हम एक नियम अलबत्ता प्रस्तुत करते हैं जिससे कुछ माया-वर्ग बनाए जा सकते हैं। इस नियम में सर्व प्रथम दो उपवर्गों की रचना की जाती है जिन्हें जोड़ कर माया-वर्ग बनता है। उदाहरणार्थ पंचम-श्रेणी का माया-वर्ग दो वर्गों की सहायता से निम्न प्रकार बनाया जा सकता है। एक वर्ग में १, २, ३, ४, ५ को इस प्रकार रखो कि सभी स्तंभों, सभी पंक्तियों और दोनों विकर्णों के अंकों का योग बराबर हो। आगे दिए वर्ग में इन सभी में अंकों का योग १५ है।

३	१	४	२	५
५	३	१	४	२
२	५	३	१	४
४	२	५	३	१
१	४	२	५	३

इसी प्रकार ०, ५, १०, १५, २० की सहायता से एक दूसरा वर्ग बनाएँ। निम्न वर्ग में पंक्तियों, स्तंभों व विकर्णों की संख्याओं का योग ५० है।

१५	०	२०	५	१०
०	२०	५	१०	१५
२०	५	१०	१५	०
५	१०	१५	०	२०
१०	१५	०	२०	५

ऊपर के दोनों वर्गों में एक बात ध्यान देने की है। उनमें से प्रत्येक में दिए हुए पाँच अंकों में से प्रत्येक पंक्ति, प्रत्येक स्तंभ तथा एक विकर्ण में एक अंक एक ही बार आता है और इस प्रकार उनका योग बराबर हो जाता है। प्रश्न एक विकर्ण का रह जाता है। पहले वर्ग के एक विकर्ण के सभी स्थानों पर ३, ३ . . . ही अंक आए हैं और दूसरे पर १०, १० . . . । यह भी ध्यान देने योग्य है कि ३ का विकर्ण बाईं से दाहिनी ओर और १० का विकर्ण उसके विपरीत दिशा में है। इस नियम के अनुसार समान अंक वाले दोनों

१८	१	२४	७	१५
५	२३	६	१४	१७
२२	१०	१३	१६	४
९	१२	२०	३	२१
११	१९	२	२५	८

विकर्ण एक ही दिशा के नहीं होने चाहिए। इन दोनों वर्गों के समान स्थान के अंकों को जोड़ कर जो नया वर्ग बनेगा, वह एक माया-वर्ग होगा।

देखने योग्य बात यह है कि १, २, ३, ४, ५ तथा ०, ५, १०, १५, २० इन दोनों संख्या-समूहों को सभी संभव प्रकार से जोड़ कर १ से २५ तक के अंक संख्या प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार षष्ठ-श्रेणी के वर्ग के लिए १, २, ३, ४, ५, ६ तथा ०, ६, १२, १८, २४, ३० इन दोनों संख्या-समूहों की सहायता से दो उप-वर्ग बनाकर और उन्हें जोड़ने से एक माया-वर्ग बन सकता है।

श्रीनिवास रामानुजन ने प्रयुक्त अंकों पर कुछ कम प्रतिबंध लगा कर कुछ रुचिकर वर्गों का निर्माण किया। यदि तृतीय श्रेणी के वर्ग में १ से १५ तक की सभी संख्याओं के प्रयोग का प्रतिबंध हटा दें तो कुछ वर्ग निम्न प्रकार बन सकते हैं:

(१) स्तंभ, पंक्ति और विकर्ण के अंकों का योग २७ हो तथा केवल विषम अंक ही प्रयुक्त हों।

(२) स्तंभ, पंक्ति और विकर्ण के अंकों का योग ३६ हो तथा केवल सम अंक ही प्रयुक्त हों।

१५	१	११
५	९	१३
७	१७	३

१४	४	१८
१६	१२	८
६	२०	१०

इसी प्रकार तीन पंक्तियों और चार स्तंभों के कुछ आयत बनाने के नियम भी रामानुजन ने दिए हैं। उदाहरण के लिए एक ऐसा आयत जिसकी पंक्तियों और स्तंभों के अंकों का औसत मान ८ हो, निम्न होगा:

१	१३	३	१५
११	९	७	५
१२	२	१४	४

दर्शनीय है कि इस आयत में दो तीन भुजा वाले वर्गों के चार विकर्णों के अंकों का भी औसत मान ८ ही है (यथा १+९+१४=२४)।

पश्चिम में अब माया-वर्ग साधारण जनता के मनोरंजन के विषय नहीं रहे और गणितीय दृष्टि से अभी इनका अध्ययन नगण्य-सा ही है। संभव है कि कुछ गणितज्ञ अपनी मेधा की आजमाइश इस क्षेत्र में करें और इनके विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त हो सके।

अंकों का रूप ?

अध्याय ५ में हम देख चुके हैं कि विभिन्न आधारों पर एक ही संख्या विभन्न रूपों में व्यक्त की जाएगी जैसे $१३_{\text{आधार १०}} = ११०१_{\text{आधार २}} = १११_{\text{आधार ३}} = २३_{\text{आधार ५}}$ . . . । परंतु संख्याओं के कुछ गुण ऐसे भी होते हैं जो किस आधार पर वह संख्या व्यक्त की जाय, इस पर निर्भर नहीं करते हैं। मान लीजिए कि हम फिर पाषाण युग में पहुँच गए जहाँ प्रत्येक कंकड़ १ का बोध कराता है और स्थान मान का ज्ञान अभी नहीं हुआ है। विभिन्न संख्याओं को निरूपित करने वाले कंकड़ कई प्रकार के कलापों में मुसज्जित किए जा सकते हैं। ये कलाप संख्या के आधार पर निर्भर नहीं हैं, वरन् उन संख्या-अंकों के, जिन्हें वे कंकड़ निरूपित करते हैं, स्वाभाविक गुण हैं। इन्हीं कलापों के अनुसार कभी-कभी उन संख्याओं का नामकरण भी कर दिया जाता है।

आयताकार संख्या

मान लीजिए हमारे पास १५ कंकड़ हैं। इन कंकड़ों को एक आयताकार में रखा जा सकता है जिसमें तीन पंक्तियाँ होंगी और प्रत्येक पंक्ति में पाँच कंकड़ होंगे। पूर्व अध्याय में हम देख चुके हैं कि इसका अर्थ यह भी है कि १५ = ३ × ५ अर्थात् ३ और ५ संख्या १५ के दो गुणन-खण्ड हैं। जब भी हम कंकड़ों के किसी समूह को इस प्रकार आयताकार में रख सकें तो उसको निरूपित करने वाली अंक-संख्या को हम आयताकार संख्या कहते हैं।

o	o	o	o	o		१५ कंकड़ों का
o	o	o	o	o	३	आयताकार
o	o	o	o	o		में सजाना
		५			×	

वास्तव में ऐसी सभी संख्याओं को, जिनके गुणन-खण्ड हो सकते हैं, सदैव ही कंकड़ों द्वारा आयताकार में प्रतिरूपित किया जा सकता है। इस प्रकार के गुणन-खण्ड करने में १ को गुणन-खण्ड नहीं मानते हैं क्योंकि १ तो सभी संख्याओं का गुणन-खण्ड हो सकता है। क × १ = क। जिन संख्याओं के १ के अलावा दो या अधिक गुणन-खण्ड संभव हों, उन्हें भाज्य संख्या कहते हैं। जिन संख्याओं के १ के अलावा और कोई गुणन-खण्ड नहीं हो सकते, उन्हें रूढ़ संख्या कहा जाता है। यह तो स्पष्ट ही है कि भाज्य संख्या और आयताकार संख्याएँ पर्यायवाची होती हैं। रूढ़ संख्याओं के विषय में हम आगे चर्चा करेंगे।

वर्गाकार संख्या

आयताकार कभी-कभी वर्गाकार भी होता है। जैसे २ × २, ३ × ३, ४ × ४,

... के रूप आयत तो हैं ही, पर वे वर्ग भी हैं। इस प्रकार

$$१^{२}, २^{२}, ३^{२}, ४^{२}, ५^{२}, \ldots$$

इत्यादि संख्याओं (अर्थात् १, ४, ९, १६, २५, ...) को वर्ग-संख्या कहा जाता है।
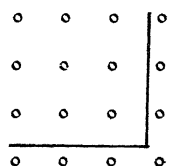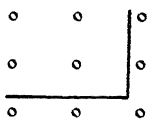
इन वर्गाकार संख्याओं की एक और विशेषता है। ऊपर वर्गों में ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञात होगा कि पहले वर्ग में दाहिनी ओर तथा नीचे कुछ और कंकड़ जोड़ने पर एक दूसरा बड़ा वर्ग बना। दूसरे वर्ग में इसी प्रकार कुछ और कंकड़ जोड़ने से तीसरा वर्ग बना, इत्यादि।

$$१=१^{२}$$
$$१+३=४=२^{२}$$
$$२^{२}+५=९=३^{२}$$
$$३^{२}+७=१६=४^{२}$$
$$४^{२}+९=२५=५^{२}$$

प्रत्येक अवस्था में जुड़ने वाली संख्या का भी एक विशेष क्रम है। १ के बाद ३, ३ के बाद ५, ५ के बाद ७ इत्यादि। इस प्रकार क्रमशः विषम संख्याओं को जोड़ने की आवश्यकता होती है। यदि हम इसी जोड़ को और खुलासा रूप में लिखें तो विषम संख्याओं के योग का नियम भी स्पष्ट होता दिखाई पड़ेगा।

$$१=१^{१}$$
$$१+३=२^{२}$$
$$१+३+५=३^{२}$$
$$१+३+५+७=४^{२}\ldots\ldots$$

पहली दो विषम संख्याओं का योग $२^{२}$, तीन का $३^{२}$, ...। इस प्रकार प्रतीत होता है कि पहली न विषम संख्याओं का योग $न^{२}$ होगा। इस नियम से चाहे कितनी ही विषम संख्याओं का योग निकाला जा सकता है। पहली ५१ विषम संख्याओं का योग $५१^{२}$ होगा अर्थात्

$$१+३+५+७+\ldots\ldots+९७+९९+१०१=५१^{२}=२६०१$$

त्रिकोणीय संख्या

कंकड़ों को त्रिकोण रूप में रखने पर एक अत्यंत मनोरंजक संख्या-समूह प्राप्त होता है। इन समूहों को निरूपित करने वाली संख्याओं को त्रिकोणीय संख्या कहते हैं। निम्न प्रकार से क्रमशः उत्तरोत्तर बड़े-बड़े समूह बनाये जा सकते हैं:

त्र(१)=१ त्र(२)=३ त्र(३)=६ त्र(४)=१०

त्र(१)=१:

o

त्र(२)=३:

o
o o

त्र(३)=६:

o
o o
o o o

त्र(४)=१०:

o
o o
o o o
o o o o

त्र(५)=१५

o
o o
o o o
o o o o
o o o o o
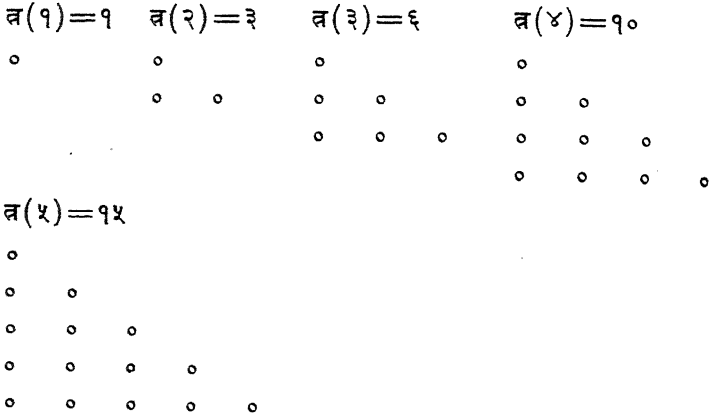
इस प्रकार पहली त्रिकोणीय संख्या १ है। दूसरी संख्या पहले दो अंकों का योग (१+२) ३ है। तीसरी संख्या पहले ३ अंकों का योग (१+२+३) ६ है, इत्यादि। त्रिकोणीय संख्याओं की अनंत श्रेणी इस प्रकार बनाई जा सकती है: १, ३, ६, १०, १५, २१, २८, ३६, ... इत्यादि। इसमें पहली त्रिकोणीय संख्या १ अंकों का योग है। दूसरी पहले दो अंकों का, तीसरी पहले तीन अंकों का ... इस प्रकार क-वीं त्रिकोणीय संख्या पहले क अंकों का योग है, अर्थात् त्र(क)=१+२+३+....+क।

किन्हीं भी दो पास वाली त्रिकोणीय संख्याओं का योग एक वर्ग संख्या होगी। जैसे १+३=४=$२^{२}$, ३+६=९=$३^{२}$, ६+१०=१६=$४^{२}$, इत्यादि। इसे मूर्त रूप में हम दो पास वाली कंकड़ों की ढेरियों को एक विशेष रूप से रख कर देख सकते हैं:
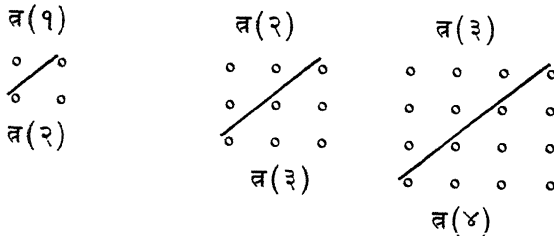
त्र(१)+त्र(२)=$२^{२}$, त्र(२)+त्र(३)=$३^{२}$, त्र(३)+त्र(४)=$४^{२}$, अथवा व्यापक रूप से त्र (क—१)+त्र(क)=$क^{२}$, चाहे क कोई भी गणना अंक क्यों न हो।

घन संख्या

इसी प्रकार यदि कंकड़ों को घन रूप में रखा जाए तो हमें घन अंक प्राप्त होंगे। $१^३, २^३, ३^३, ४^३, \ldots$ इत्यादि अर्थात् (१, ८, २७, ६४, . . .) घन संख्याएँ कहलाती हैं। यदि हम इन घन संख्याओं को क्रमशः जोड़ें तो उनका त्रिकोणीय संख्याओं से संबंध स्पष्ट होता है।

$$१^३ = १ = १^२ = \{त्र(१)\}^२$$
$$१^३ + २^३ = ९ = ३^२ = \{त्र(२)\}^२$$
$$१^३ + २^३ + ३^३ = ३६ = ६^२ = \{त्र(३)\}^२$$

इस प्रकार पहली तीन घन संख्याओं का योग तीसरी त्रिकोणीय संख्या त्र(३) के वर्ग के बराबर है। . . . इसी प्रकार पहली क घन संख्याओं का योग 'क'-वीं त्रिकोणीय संख्या के योग के बराबर है ।

$$१^३ + २^३ + ३^३ + \ldots + क^३ = \{त्र(क)\}^२$$
$$= (१ + २ + ३ + \ldots + क)^२$$

इस प्रकार क संख्याओं के घनों का योग उन संख्याओं के योग के वर्ग के बराबर होता है।

भाज्य और अभाज्य

संख्याएँ दो प्रकारों में विभाजित की जा सकती हैं—रूढ़ (अथवा अभाज्य) और भाज्य। रूढ़ संख्याओं के कोई गुणन-खण्ड नहीं होते हैं, जैसे २, ३, ५, ७, ११, . . . इत्यादि। यदि एक और स्वयं संबंधित संख्या को भी गुणन-खण्ड माना जाए तो इन रूढ़ संख्याओं के दो गुणन-खण्ड होते हैं जैसे $२ \times १ = २$, $३ \times १ = ३$, $५ \times १ = ५$, . . . परंतु ये गुणन-खण्ड केवल औपचारिक रूप से ही गुणन-खण्ड कहलाते हैं। वास्तव में रूढ़ संख्याओं का कोई गुणन-खण्ड नहीं होता । इसीलिए इन संख्याओं को अभाज्य संख्या भी कहा जाता है ।

इसके विपरीत भाज्य संख्याओं के दो से अधिक गुणन-खण्ड होते हैं । $४ = १ \times २ \times २$, $६ = १ \times २ \times ३$, $८ = १ \times २ \times २ \times २$, . . . १ गुणन-खण्ड तो सभी संख्याओं में होता है। अन्य गुणन-खण्ड निकालने के लिए संबंधित संख्या को एक-एक कर छोटी से छोटी रूढ़ संख्याओं से तब तक भाग देते जाते हैं जब तक कि अंत में भजनफल १ न रह जाए। जैसे मान लीजिए २०५१२८ के गुणन-खण्ड निकालना है तो उसके लिए आगे दी गई क्रिया करेंगे :

२,०५,१२८ = १ × २ × २ × २ × ३ × ३ × ७ × ११ × ३७

अतिभाज्य संख्याएँ

श्रीनिवास रामानुजन ने कुछ संख्याओं को अतिभाज्य संख्या की संज्ञा दी है। यदि हम प्रत्येक पूर्णांक के सभी संभावित गुणन-खण्ड लिखें तो निम्न तालिका प्राप्त होगी:

पूर्णांक	गुणन-खण्ड	गुणन-खण्डों की संख्या
१	१	१
२	१,२	२*
३	१,३	२
४	१,२,४	३*
५	१,५	२
६	१,२,३,६	४*
७	१,७	२
८	१,२,४,८	४
९	१,३,९	३
१०	१,२,५,१०	४
११	१,११	२
१२	१,२,३,४,६,१२	६*
..	....	..

इस तालिका में गुणन-खण्डों की संख्या में कोई निश्चित क्रम दृष्टिगत नहीं होता है, रूढ़ अंकों पर वह केवल दो ही रह जाती है, भाज्य अंकों के लिए कभी कम कभी अधिक।

तालिका में तारांकित अंकों में एक विशेषता है। उनके गुणन-खण्डों की संख्या उनके पूर्व के सभी अंकों के गुणन-खण्डों की संख्या से अधिक है। इस प्रकार अंक '२' के दो गुणन-खण्ड हैं, अंक ४ के तीन। ४ से छोटी किसी संख्या के तीन गुणन-खण्ड नहीं हैं। इसी प्रकार अंक १२ के छः गुणन-खण्ड हैं और उसके पूर्वगामी किसी भी अंक के छः गुणन-खण्ड नहीं हैं। इसके पश्चात् भी निरंतर इस प्रकार के अंक मिलते रहेंगे जिनके गुणन-खण्डों की संख्या उनके पूर्ववर्त्ती सभी अंकों के गुणन-खण्डों की संख्या से अधिक होगी। यही अंक अतिभाज्य संख्या कहलाते हैं।

इन संख्याओं को निर्धारित करने के लिए कोई साधारण नियम नहीं प्रस्तुत किया जा सकता है। उन्हें अंकों के गुणन-खण्ड ज्ञात करके ही निकाला जा सकता है। रामानुजन ने १०३ अतिभाज्य अंकों की तालिका प्रस्तुत की थी जिनमें से प्रथम बारह निम्नलिखित हैं। कोष्ठक में उन संख्याओं के संभव गुणनखण्डों की संख्या दी गई है।

२(२), ४(३), ६(४), १२(६), २४(८), ३६(९), ४८(१०), ६०(१२), १२०(१६), १८०(१८), २४०(२०), ३६०(२४), . . .

इस तालिका में सबसे बड़ी संख्या ६७,४६,३२,८३,८८,८०० है जिसके १०,०८० संभावित गुणन-खण्ड हैं।

लघुखण्ड संख्या

कुछ भाज्य संख्याएँ ऐसी होती हैं जिनके गुणन-खण्ड अत्यन्त छोटे-छोटे होते हैं, जैसे १२०० यद्यपि एक बड़ी संख्या है पर उसका कोई भी गुणन-खण्ड ५ से बड़ा नहीं है। वस्तुतः १२००=२×२×२×२×३×५×५। रामानुजन और हार्डी के अनुसार ऐसे पूर्णांक अनंत हैं पर अत्यन्त विरल हैं तथा दुष्प्राप्य हैं। यदि हम अचानक आँखों के सामने आने वाले, जैसे मोटर या रेल के डिब्बों पर लिखे अंकों के गुणन-खण्ड निकालें तो इस तथ्य की पुष्टि हो सकती है। उन्होंने इस अभिधारणा की एक सुंदर और सरल गणितीय उपपत्ति प्रस्तुत की।

वर्गाभाज्य संख्या

कुछ अंक हमें ऐसे प्राप्त होते हैं जो भाज्य तो होते हैं परंतु उनमें किसी वर्ग संख्या का भाग नहीं जाता है। यथा ६, १०, १२ इत्यादि। इन अंकों को वर्गाभाज्य संख्या कहा जाता है। वस्तुतः, इन अंकों को यदि गुणन-खण्डों के रूप में रखा जाए तो प्रत्येक रूढ़ गुणन-खंड का घात एक से अधिक नहीं होता है। ये संख्याएँ भी विरल हैं।

भाज्य जानने के कुछ सरल सूत्र

कोई संख्या भाज्य है अथवा नहीं एवं उसके कौन-कौन तथा कितने गुणन-खण्ड

हो सकते हैं, यह जानने के लिए कोई साधारण नियम नहीं है। इसके लिए 'अनुमान तथा परीक्षण' अथवा 'जाँच और भूलसुधार विधि' का नियम ही काम आता है—किसी भी अंक से भाग देने की कोशिश कीजिए, सफलता मिले तो भाग चला गया अन्यथा नहीं। कोई अंक छोटे अंकों द्वारा भाज्य हैं या नहीं, यह जानने के लिए कुछ नियम अवश्य हैं, पर बड़े अंकों द्वारा भाज्य होना अनुमान और परीक्षण द्वारा ही मालूम किया जा सकता है। छोटी संख्याओं द्वारा भाज्य होना निश्चय करने के लिए नियम उन राशियों के दशाधारी सिद्धांतों से लिखने के गुण के आधार पर बनाए गए हैं।

कुछ अंकों द्वारा पूरी राशि के भाज्य होने के नियम निम्न प्रकार हैं:

२—यदि राशि का अंतिम अंक २ से भाज्य हो।

३—यदि राशि के अंकों का योग ३ से भाज्य हो (उदाहरणार्थ २,०५,१२८ में अंकों का योग २+५+१+२+८=१८ अंक ३ से भाज्य है)।

४—यदि राशि के अंतिम दो अंक (दहाई, इकाई) ४ से भाज्य हों (हमारी राशि में अंतिम दो अंक २८ अंक ४ द्वारा भाज्य हैं)।

५—यदि राशि का अंतिम अंक ० या ५ हो।

६—यदि अंतिम अंक दो से भाज्य हो और अंकों का योग ३ से भाज्य हो।

८—यदि अंतिम तीन अंक (सैकड़ा, दहाई, इकाई) ८ से भाज्य हों (हमारी राशि के अंतिम तीन अंक १२८ अंक ८ से भाज्य हैं, इसलिए पूरी संख्या ८ से भाज्य है)।

९—यदि अंकों का योग ९ से भाज्य हो (हमारी संख्या के अंकों का योग १८ अंक ९ से भाज्य है, इसलिए संख्या ९ से भाज्य है)।

११—यदि विषम स्थानों के अंकों के योग में से सम स्थानों के अंकों का योग घटाने पर शेष राशि ११ से विभाजित हो जाए। (२,०५,१२८ में विषम स्थानों के अंकों का योग ८+१+०=९ और सम स्थानों के अंकों का योग २+५+२=९ है। ९−९=० अर्थात् ११ से भाज्य है अतएव पूरी संख्या ११ से भाज्य है)।

संख्या ७, १३, १७, इत्यादि से भाज्य होने के कोई उपयोगी सूत्र नहीं हैं, इसलिए उनके द्वारा किसी संख्या का भाज्य होना जाँच-पड़ताल से ही जाना जा सकता है।

परिपूर्ण संख्या क्या है?

आप संभवतः सोचते होंगे कि अब हमने संख्याओं के सभी प्रकार जान लिए हैं—सम, विषम, रूढ़ और भाज्य। परंतु गणित के विद्यार्थियों का ध्यान अंकों के अन्य गुणों ने भी आकर्षित किया और संख्या-सिद्धांत पर एक पूरे शास्त्र की ही रचना की जा चुकी है। तथाकथित परिपूर्ण-संख्या ६ के अलौकिक गुणों के संबंध में कल्पनाएँ हम सुन ही चुके हैं। अंक ६ में क्या विशेषता है जिससे उसे परिपूर्ण कहा जाता है और क्या उसके अलावा

कोई अन्य अंक भी परिपूर्ण हैं ?

६ को हम उससे छोटे तीन अन्य अंकों से विभाजित कर सकते हैं १, २, ३ यही तीन उसके संभावित भाजक हैं। परंतु इन भाजकों में एक विशेषता है—इनका योग १+२+३ भी ६ है। इस प्रकार इस संख्या के सभी भाजकों का योग स्वयं इस संख्या के बराबर है। इसके इसी गुण के कारण इसे परिपूर्ण-संख्या के पद पर आसीन किया गया है।

६ के बाद उससे बड़ी परिपूर्ण-संख्या २८ है। २८ के संभावित भाजक हैं १, २, ४, ७, १४ और उनका योग है १+२+४+७+१४=२८।

इसके बाद फिर बहुत दूर तक कोई परिपूर्ण-संख्या नहीं मिलती है। ४९६ अगली परिपूर्ण संख्या है और उसके बाद है ८,१२८।

सिद्धांततः यह सिद्ध किया जा चुका है कि परिपूर्ण-संख्याएँ भी अनंत हैं और कुछ बड़ी परिपूर्ण संख्याओं को बनाने के गणितीय नियम भी हैं। परंतु वे इतनी बड़ी हो जाती हैं कि आधुनिकतम परिकलन-यंत्रों के लिए भी उन संख्याओं का मान निकालना और उनके सभी गुणन-खण्डों का निकालना अतिकठिन होगा।

एक और बात है। ६, २८, ४९६, ८१२८ सभी सम संख्याएँ हैं। वस्तुतः अभी तक हम केवल ऐसी परिपूर्ण संख्याएँ ही जानते हैं जो सम-संख्याएँ हैं। ऐसी किसी परिपूर्ण संख्या का ज्ञान हमें नहीं है जो विषम हो। परंतु साथ ही इतनी प्रगति के बाद भी आज तक यह सिद्ध नहीं किया जा सका है कि कोई विषम संख्या परिपूर्ण नहीं हो सकती है। यह गणित जगत् की समाधानहीन समस्या है। परिकलन-यंत्रों से भी यह प्रश्न सुलझाया नहीं जा सकता है। हो सकता है कि कोई मेधावी गणितज्ञ कभी इस समस्या का एक सरल-सा समाधान प्रस्तुत कर दे।

प्रभूत और हीन संख्याएँ

जब ६, २८, ४९६, ८१२८ इत्यादि परिपूर्ण संख्याएँ हो गईं तो शेष संख्याएँ अपरिपूर्ण हैं। परिपूर्ण संख्याएँ तो अपरिपूर्ण संख्याओं में अपवाद-सी ही प्रतीत होती हैं। और जो वस्तु जितनी कष्टसाध्य हो, उसका मूल्य भी उतना ही अधिक होता है। ६ लघुतम परिपूर्ण संख्या है और इसी गुण से मंत्रमुग्ध हो उसे अनेक अलौकिक गुणों से विभूषित किया जाता रहा है।

अब आइए, अपरिपूर्ण संख्याओं की ओर दृष्टि डालें। इनमें भी दो प्रकार की संख्याएँ होती हैं—एक कहलाती है प्रभूत संख्या और दूसरी है हीन संख्या। एक प्रभूत संख्या २४ है, इस संख्या के सभी संभावित भाजक हैं १२, ८, ६, ४, ३, २ तथा १। इन सभी गुणकों का योग १+२+३+४+६+८+१२=३६। यह योग मूल संख्या २४ से अधिक है। इसी गुण से संपन्न संख्याओं को हम प्रभूत संख्या कहते हैं। प्रभूत संख्या के सभी संभावित गुणन-खण्डों का योग मूल संख्या से अधिक होता है। सबसे छोटी प्रभूत संख्या १२ है। इसके बाद की अन्य प्रभूत संख्याएँ १८, २०, २४, ३०, ३६ हैं। प्रथम १०० अंकों में २१ प्रभूत संख्याएँ हैं।

पहली कुछ प्रभूत संख्याएँ, जिनका उदाहरण ऊपर दिया है, सभी सम संख्याएँ हैं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि केवल सम संख्याएँ ही प्रभूत संख्या हो सकती हैं। इस प्रकार का कोई नियम नहीं है। वस्तुतः ६४५ एक विषम संख्या होते हुए भी प्रभूत संख्या है। परंतु विषम प्रभूत संख्याओं के उदाहरण बहुत कठिनाई से मिलते हैं।

अब तो यह साफ हो गया होगा कि परिपूर्ण और प्रभूत संख्याओं को छोड़कर शेष हीन-संख्याएँ ही हैं। हीन संख्याओं में उनके गुणन-खण्डों का योग मूल संख्या से कम होता है। संख्या ८ के गुणन-खण्ड हैं १, २, और ४। १+२+४=७। इस प्रकार इस संख्या के गुणन-खण्डों का योग मूल संख्या से १ ही कम रह गया। ३२ के गुणनखण्ड हैं १६, ८, ४, २, १ और उनका योग १+२+४+८+१६=३१ जो मूल संख्या ३२ से केवल एक ही कम है। परंतु देखिए ३३ एक अतिहीन संख्या है। ३३ के गुणन-खडों का योग १+३+११=१५ ही है जो मूल संख्या के आधे से भी कम है। सभी रूढ़ संख्याएँ निश्चय ही सर्वाधिक हीन होंगी क्योंकि उनका केवल एक ही अन्य गुणन-खण्ड '१' है। रूढ़ संख्याओं के सभी घात भी हीन संख्या होते हैं।

यह सिद्ध किया जा सकता है कि किसी भी परिपूर्ण-संख्या के सभी भाजक स्वयं हीन संख्या होते हैं जैसे २८ के भाजक हैं ७ और ४, जो दोनों ही हीन संख्या हैं। हीन-संख्याओं के भाजक स्वयं भी हीन संख्या ही होते हैं। जैसे ३२ का एक भाजक है १६ जिसके गुणन-खण्ड हैं १, २, ४, ८ जिनका जोड़ १५ है। इसलिए १६ भी हीन है।

दूसरी ओर प्रभूत-संख्याओं और परिपूर्ण-संख्याओं में किसी संख्या से गुणा करने पर गुणनफल रूप जो संख्या प्राप्त हों, वे स्वयं प्रभूत संख्याएँ होती हैं। उदाहरण के लिए ६ परिपूर्ण संख्या है ६×२=१२ जिनके गुणन-खण्ड हैं १, २, ३, ४, ६। १+२+३+४+६=१६। इसलिए १२ प्रभूत है। इसी प्रकार १८ प्रभूत है। १८ को किसी संख्या से गुणा करें तो जो संख्याएँ प्राप्त होती हैं जैसे ३६, ५४, . . . वे सभी प्रभूत संख्याएँ हैं।

बहुगुण परिपूर्ण संख्या

अभी हम संख्या के सभी प्रकारों का विवेचन समाप्त नहीं कर पाए हैं। ज़रा संख्या १२० के गुणन-खण्डों को देखें। वे हैं ६०, ४०, ३०, २४, २०, १५, १२, १०, ८, ६, ५, ४, ३, २ और १ जिनका योग है २४०। २४० मूल संख्या १२० की दुगनी है। इस प्रकार की संख्या को 'बहुगुण परिपूर्ण संख्या' कह सकते हैं। बहुगुण परिपूर्ण संख्या वह संख्या है जिसके समस्त गुणकों का योग मूल संख्या का कई गुना हो। १२० के बाद दूसरी बहुगुण परिपूर्ण संख्या है ६७२, जिसके गुणकों का योग भी ६७२ का दूना ही है। सत्रहवीं शताब्दी में ही इससे एक बहुत बड़ी संख्या ढूँढ़ निकाली गई थी, जिसके गुणकों का योग संख्या का दूना है। यह संख्या ५,२३,७७६ है। निश्चय ही बहुत प्रयास लगा होगा इसे ढूँढ़ने में। इन सभी संख्याओं को 'बहुगुण परिपूर्ण संख्या श्रेणी दो' कहा जाता है, क्योंकि इनके गुणन-खण्डों का योग मूल संख्या का दूना होता है।

इन संख्याओं की खोज के साथ गणितज्ञों के सामने यह प्रश्न आया कि क्या बहुगुण-

परिपूर्ण संख्याएँ तीसरी या चौथी श्रेणी की भी हो सकती हैं। प्रसिद्ध फ्रांसीसी गणितज्ञ दकार्त्त (१५९६–१६५०) ने इस प्रश्न को उठाया और उसने जितनी भी बहुगुण-परिपूर्ण संख्याएँ हो सकती थीं, उनका संकलन प्रारंभ किया। उसे तीसरी श्रेणी की ६ और चौथी श्रेणी की भी एक संख्या मिल गई। उसके बाद कई गणितज्ञों का ध्यान इस ओर जाता रहा और १९२९ में पालेट ने ३३४ बहुगुण परिपूर्ण संख्याओं का एक संकलन प्रकाशित किया। इसमें एक संख्या सातवीं श्रेणी की भी थी। दकार्त्त के हाथ दूसरी श्रेणी की एक बहुत बड़ी संख्या लगी थी—१,४७,६३,०४,८९६। मानव प्रतिभा और उसके सतत् प्रयास का कोई अंत नहीं है।

मित्र संख्या

एक अन्य प्रकार की संख्या भी सर्वप्रथम अलौकिक गुणों से प्रतिभूत मानी जाती रही है। अरब के प्रसिद्ध विद्वान इब्न ख़ालदून (१३३२–१४०६) ने २२० और २८४ के युग्म को मित्र संख्या या सहिष्णु संख्या का नाम दिया था। इन संख्याओं में २२० एक प्रभूत-संख्या है जिसके गुणन-खण्डों का योग २८४ है। पर खास बात यह है कि २८४ एक हीन संख्या है जिसके गुणन-खण्डों का योग २२० ही है। यही परस्पर संबंध मित्र संख्याओं का गुण है। इसी गुण के आधार पर इन संख्याओं को तावीज़ इत्यादि बनाने में काम लिया जाता था। इस प्रकार की संख्याओं के सृजन का नियम इससे भी पूर्व इब्न कुरो की नवीं शताब्दी की रचनाओं में मिलता है। आधुनिक काल में फ़्रांसीसी गणितज्ञ डी फर्मा (१६०१–१६५५) ने मित्र संख्या बनाने का सूत्र पुनः स्वयं ही बनाया। १६३६ ई० में उसने इस सूत्र से १७,२९६ तथा १८,४१६ का मित्र संख्या युग्म ढूँढ़ा। दो वर्ष बाद दकार्त्त ने एक अन्य मित्र-संख्या युग्म ९३,६३,५८४ तथा ९४,३७,०५६ भी ढूँढ़ निकाला। इस प्रकार उस समय तक केवल तीन मित्र संख्या-युग्म ज्ञात हो सके थे।

इन संख्याओं के सृजन का सूत्र थोड़ा कठिन है और इस पुस्तक में उसे स्थान देना संभव न होगा। पर इतना कहना आवश्यक है कि इस नियम से मित्र संख्याएँ खोज निकाली अवश्य जा सकती हैं पर सभी नहीं। दकार्त्त द्वारा दिया हुआ संख्या-युग्म (९३,६३,५८४; ९४,३७,०५६) इस नियम द्वारा प्राप्त तीसरा संख्या-युग्म है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि इससे चौथी संख्या निकालना कितना कठिन होगा और वह कितनी बड़ी होगी।

हमें यह भी नहीं मालूम कि किसी निश्चित् संख्या से कम संख्याओं में कितनी मित्र-संख्याएँ होंगी। जैसे प्रारंभ में १०,००० से कम संख्याओं में केवल एक संख्या-युग्म (२२०, २८४) ज्ञात था। क्या इनके अलावा भी कोई अन्य मित्र-संख्या युग्म हो सकते थे, इसका कोई निश्चयात्मक उत्तर नहीं था। सन् १८८६ में एक इटली निवासी सोलह वर्षीय किशोर ने बताया कि १,१८४ और १,२१० एक मित्र संख्या-युग्म है। इस खोज के पूर्व यह ज्ञात नहीं था कि ऊपर बताए दकार्त्त नियम से सभी मित्र संख्याएँ नहीं निकाली जा सकतीं। इस किशोर ने किस प्रकार यह संख्याएँ खोज निकालीं, यह नहीं कहा जा

सकता। हो सकता है कि अंकों से खिलवाड़ करते-करते उसे ये संख्याएँ हाथ लग गई हों।

यद्यपि गणित में इस प्रकार की टोह और खिलवाड़ करना वर्ज्य है, क्योंकि इससे कोई खास लाभ नहीं, परंतु संख्या-सिद्धांत के अगाध समुद्र में इस प्रकार भी कभी-कभी अनमोल मोती हाथ लग जाते हैं। हम भी चाहें तो अंकों के साथ खेल कर अपना मनोरंजन कर सकते हैं। संभव है, कोई मोती अनमोल हमें भी मिल जाए !

अध्याय ११

संख्या-सिद्धांत के कुछ सरल प्रमेय

गणित का अंतिम असंस्कृत महाद्वीप

प्रसिद्ध गणितज्ञ गॉस ने अंकगणित को गणित का सम्राट् माना था। देखने में अंकगणित गणित के सभी भागों में सरलतम लगता है परंतु वास्तविकता यह नहीं है। पिछले अध्यायों में हमने प्रसंगवश संख्या-सिद्धांत के अनेक सरल और कठिन प्रमेयों की झलक देखी है। उससे गणित के इस भाग के विषय में थोड़ा-बहुत आभास अवश्य हुआ। अंकगणित के सरल प्रश्न, जैसे जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग, भिन्न सरल करना या ब्याज तथा त्रैराशिक निकालना इत्यादि को छोड़कर उसका क्षेत्र मुख्यतः पूर्णांकों के गुणा के अध्ययन से संबंधित है। यद्यपि इस क्षेत्र में भी अनेक महत्त्वपूर्ण खोजें हुई है, परंतु अभी तक हम उसमें किसी एक ऐसे मूर्धन्य स्थान पर नहीं पहुँच पाए हैं जहाँ से उसके समूचे विस्तार का सुगमता से पर्यवेक्षण किया जा सके। जहाँ गणित के अन्य क्षेत्रों में हमारा ज्ञान यूनानी गणितज्ञों के समय उपलब्ध ज्ञान से कहीं आगे पहुँच गया है और हम कम-से-कम यूनानियों की तद्विषयक सभी समस्याओं का समाधान प्राप्त कर चुके हैं। संख्या-सिद्धांत में हम देख चुके हैं कि संख्या संबंधी छोटी-छोटी पहेलियाँ भी, जो यूनानी छोड़ गए थे, अभी तक हमारे लिए पहेलियाँ ही बनी हुई हैं।

एरिक टेम्पेल बेल लिखते हैं: 'संख्या-सिद्धांत गणित का अंतिम महान परंतु असंस्कृत महाद्वीप है। यह महाद्वीप अनेक देशों में विभाजित है और प्रत्येक देश अत्यंत उपजाऊ है। परंतु उन देशों में एक-दूसरे के कल्याण के प्रति नितांत उदासीनता है और वहाँ किसी प्रकार की केंद्रीय सत्ता का आभास मात्र भी नहीं है। यदि कोई युवा सिकंदर नये विश्व को जीतने की महत्त्वाकांक्षा पूरी करने को लालायित हो, तो यही वह नया विश्व है जहाँ वह अपना बल आज़मा सकता है। न्यूटन की भाँति युग प्रवर्त्तक वैज्ञानिक की कौन कहे, अंकगणित के क्षेत्र में अभी तक कोई दकार्त्त के समान विद्वान भी नहीं पैदा हुआ है।'

आइए, इस विचित्र महाद्वीप का भ्रमण करें—संभव है, हममें से कोई इस महाद्वीप का विजेता होकर सिकंदर से भी अधिक ख्याति पा सके।

यद्यपि संख्या-सिद्धांत को गणित में एक स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने का श्रेय फ़र्मा

(१६०१–१६६५) को है, परंतु इसकी कुछ समस्याओं का उद्गम तो स्वयं इतिहास के प्रारंभ से ही होता है। पिछले अध्याय में हमने भाज्य संख्याओं पर विचार किया था। भाज्य संख्याओं पर ध्यान देने के पूर्व गणितज्ञ अभाज्य अथवा रूढ़ संख्याओं को विशेष उत्सुकता और कौतूहल भरी दृष्टि से देखते रहे हैं। और संख्या-सिद्धांत में अभी अभाज्य संख्याओं का एक ऐसा स्वतंत्र राष्ट्र है जिसके क़बीले अभी भी सुसंस्कृत नहीं हो सके हैं। इसमें अनेक समस्याएँ हल करने के लिए अभी शेष हैं।

अभाज्य संख्या

अभाज्य संख्या से हम पिछले अध्याय में परिचय प्राप्त कर चुके हैं। 'यदि क एक ऐसा पूर्णांक है जिसे '१' और 'क' को छोड़ कर किसी अन्य संख्या से भाग नहीं दिया जा सकता है तो उसे अभाज्य अथवा रूढ़ संख्या कहा जाता है।' १ और क द्वारा संख्या क में भाग जाना—यह कथन एक औपचारिकता ही है क्योंकि यह सभी संख्याओं के लिए—चाहे वे रूढ़ हों या भाज्य—सत्य है।

संख्या १ स्वयं अभाज्य है अथवा भाज्य, इसमें मतभेद है—कुछ गणितज्ञ उसे अभाज्य मानते हैं। परंतु यह प्रश्न भी औपचारिक है और परिभाषा संबंधी ही है। कहीं १ को अभाज्य मानना अधिक युक्तियुक्त होगा और कहीं उसे अभाज्य और भाज्य के वर्गीकरण से अलग रखना। अधिकांश गणितज्ञों की राय १ को अलग रखने की है, इसलिए पहली अभाज्य संख्या '२' ठहरती है। '२' न केवल पहली अभाज्य संख्या है वरन् सम संख्याओं में वही एकमात्र अभाज्य संख्या है।

एरेटास्थेनीज़ की चलनी

सबसे पहला और सबसे पुराना प्रश्न यह ज्ञात करने से संबंधित है कि कोई संख्या विशेष अभाज्य है अथवा नहीं। एरेटास्थेनीज़ का नाम इस विषय में उल्लेखनीय है। वह ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में सिकंदरिया नगर में रहता था। उसने अभाज्य संख्याओं को ज्ञात करने के लिए एक व्यावहारिक विधि ढूँढ़ निकाली थी, जिसे 'एरेटास्थेनीज़ की चलनी' का नाम दिया गया है। जिस प्रकार चलनी में से अवांछनीय पदार्थ निकाल कर इच्छित वस्तुएँ अलग कर ली जाती हैं, उसी प्रकार उसकी युक्ति में संख्यांकों में से भाज्य संख्याएँ एक-एक कर काट दी जाती हैं और केवल अभाज्य संख्याएँ शेष रह जाती हैं। इसकी विधि बिलकुल आसान है। हमें जहाँ तक की संख्याओं में से अभाज्य संख्याएँ अलग निकालनी हैं, उन सभी को क्रम से लिख दिया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हमें प्रथम १२० संख्याओं में से अभाज्य संख्याएँ निकालनी हैं तो हम सर्वप्रथम उन्हें क्रमानुसार एक तालिका में लिख देंगे।

(१)	(२)	(३)	~~४~~	(५)	~~६~~	(७)	~~८~~	~~९~~	~~१०~~	(११)	~~१२~~
(१३)	~~१४~~	~~१५~~	~~१६~~	(१७)	~~१८~~	(१९)	~~२०~~	~~२१~~	~~२२~~	(२३)	~~२४~~
~~२५~~	~~२६~~	~~२७~~	~~२८~~	(२९)	~~३०~~	(३१)	~~३२~~	~~३३~~	~~३४~~	~~३५~~	~~३६~~
(३७)	~~३८~~	~~३९~~	~~४०~~	(४१)	~~४२~~	(४३)	~~४४~~	~~४५~~	~~४६~~	(४७)	~~४८~~
~~४९~~	~~५०~~	~~५१~~	~~५२~~	(५३)	~~५४~~	~~५५~~	~~५६~~	~~५७~~	~~५८~~	(५९)	~~६०~~
(६१)	~~६२~~	~~६३~~	~~६४~~	~~६५~~	~~६६~~	(६७)	~~६८~~	~~६९~~	~~७०~~	(७१)	~~७२~~
(७३)	~~७४~~	~~७५~~	~~७६~~	~~७७~~	~~७८~~	(७९)	~~८०~~	~~८१~~	~~८२~~	(८३)	~~८४~~
~~८५~~	~~८६~~	~~८७~~	~~८८~~	(८९)	~~९०~~	~~९१~~	~~९२~~	~~९३~~	~~९४~~	~~९५~~	~~९६~~
(९७)	~~९८~~	~~९९~~	~~१००~~	(१०१)	~~१०२~~	(१०३)	~~१०४~~	~~१०५~~	~~१०६~~	(१०७)	~~१०८~~
(१०९)	~~११०~~	~~१११~~	~~११२~~	(११३)	~~११४~~	~~११५~~	~~११६~~	~~११७~~	~~११८~~	~~११९~~	~~१२०~~

इस तालिका में सभी संख्याएँ संख्या १ से तो भाज्य हैं ही, पर हम इसे भाज्य की कोटि में नहीं गिनते। इसलिए संख्या १ को छोड़ देते हैं और छोड़ते समय उस पर कोष्ठक ( ) लगा देते हैं। उसके बाद अगली संख्या को लीजिए और उस पर भी कोष्ठक या अन्य कोई चिह्न लगा दीजिए। इस प्रकार २ पर कोष्ठक लग गया। अब दो से उसके आगे की जितनी भी संख्याओं में भाग जा सकता है, उन्हें काट दीजिए। इस प्रकार सभी सम संख्याएँ—२ को छोड़कर—कट गईं या 'एरेस्टास्थेनीज़ की चलनी' द्वारा भाज्य होने से निकाल दी गईं। उसके बाद अगली बिना कटी हुई संख्या लीजिए जो अब ३ है। उस पर भी कोष्ठक का निशान लगा दीजिए और उसके बाद शेष संख्याओं में से उससे भाज्य संख्याओं को काट दीजिए। जो पहले ही कट चुकी हैं, उनकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार इस बार ९, १५, २१, . . . इत्यादि कट जाएँगी।

इसी प्रकार क्रम से एक-एक संख्या को लेते जाइए—अगली संख्या ५ है और उसके बाद ७. . . । यह क्रम जब तक आवश्यकता हो, तब तक चलता जा सकता है। वस्तुतः १२० तक की संख्याओं में से अभाज्य संख्याएँ निकालने के लिए १० तक की सभी अभाज्य संख्याओं अर्थात् २, ३, ५, ७ द्वारा भाग देकर भाज्य संख्याओं को काट देना होगा। अंत में केवल अभाज्य संख्याएँ ही शेष बच रहेंगी। इस प्रकार १ और १२० के बीच ३० अभाज्य संख्याएँ मिल गईं। यह क्रिया किसी सीमा तक की संख्याओं में से अभाज्य संख्याओं को निकालने के लिए काम में लाई जा सकती है।

सिद्धांत रूप से हम इस प्रक्रिया द्वारा सभी संख्याओं की, चाहे वे कितनी ही बड़ी क्यों न हों, प्रकृति को जान सकते हैं। परंतु जैसे-जैसे हम बड़ी संख्याओं की ओर बढ़ते हैं वैसे-वैसे इस क्रिया के लिए आवश्यक समय और प्रयास भी बढ़ता जाता है। एक स्थल पर आकर तो संभव है कि एक-एक संख्या के विषय में जानने के लिए वर्षों लग जाएँ। और हमारी संख्याओं की संख्या अनंत है, उन्हें लिख सकना भी हमारे लिए असंभव है, उनकी प्रकृति के विषय में जानने की बात तो अलग रही। इसीलिए गणितीय तर्क द्वारा गणित में अनेक सूत्र और प्रमेय प्रस्थापित किए जाते हैं जिससे हम किसी भी निश्चत राशि के बारे में उस सूत्र के आधार पर उसके गुणों के विषय में कुछ कह सकें।

उदाहरण के लिए हमारा चिर परिचित सूत्र है 'प्रत्येक दूसरी संख्या सम संख्या होती है।' इसे सिद्ध करने के लिए हमें पूरी संख्याओं को लिखने की आवश्यकता नहीं है—वस्तुतः यह संभव भी नहीं है। उसके लिए हमें केवल यही सिद्ध करना पर्याप्त होगा कि यदि संख्या 'क' सम-संख्या है तो 'क+२' भी सम संख्या होगी।

यदि 'क' एक सम-संख्या है तो इसका अर्थ हुआ कि वह २ से विभाजित की जा सकती है। मान लीजिए २ से भाग देने पर भजनफल ख है। अर्थात् :

$$क = २ख$$

अब दोनों ओर २ जोड़ दीजिए

$$क + २ = २ख + २$$

दाहिनी ओर की राशि २ख+२ स्पष्ट रूप से २ से विभाजित की जा सकती है। $\frac{२ख+२}{२} = ख+१$ अर्थात् २ से भाग देने पर उसका भजनफल ख+१ होता है। इससे सिद्ध हुआ कि यदि 'क' सम संख्या है तो 'क+२' भी सम संख्या है।

हमें मालूम है कि ४ एक सम-संख्या है। ऊपर सिद्ध किए सूत्र के अनुसार ४+२ अर्थात् ६ भी सम संख्या है; जब ६ सम संख्या है तो ६+२=८ भी एक सम संख्या है इत्यादि। इस प्रकार 'प्रत्येक दूसरी संख्या एक सम-संख्या होती है'।

यह सूत्र गणितीय उपपादन की सहायता से सिद्ध हो गया—बिना सभी संख्याओं को काग़ज़ पर लिखे हुए।

अनंत अभाज्य संख्याएँ

अनंत संख्याओं को सम्मुख पाकर संख्या-सिद्धांत का पहला प्रश्न था 'क्या रूढ़ संख्याएँ अनंत हैं ?' इसका उत्तर यूक्लिद ने दो हज़ार वर्ष से पहले हाँ में दिया था। उसने कहा कि मान लीजिए अभाज्य संख्याएँ अनंत नहीं हैं। इसका अर्थ हुआ कि अभाज्य संख्याएँ परिमित हैं और इसलिए उनमें से एक संख्या सबसे बड़ी होगी। मान लीजिए, वह संख्या 'र' है। हमारी प्रथम अभाज्य संख्या २ है। इसलिए हम २ से प्रारंभ कर जो भी अभाज्य संख्याएँ मिलें, उनका गुणन तब तक करते चलें, जब तक कि हम 'र' तक न पहुँच जाएँ। इस क्रिया से हमें एक संख्या २×३×५×७×११× ... ×र प्राप्त होगी।

इस संख्या को संकेत रूप में हम 'ल' लिख देते हैं।

$$ल = २ \times ३ \times ५ \times ७ \times \ldots \times र$$

यह स्पष्ट है कि 'ल' एक भाज्य संख्या है रूढ़ नहीं। साथ ही 'ल' न केवल 'र' से बड़ी है पर वह उससे बहुत अधिक बड़ी है। यदि 'ल' में १ जोड़ दें तो 'ल' से भी बड़ी एक नयी संख्या (ल+१) प्राप्त होगी। 'ल' से बड़ी होने के कारण वह 'र' से भी बहुत बड़ी है। यह संख्या है:

$$ल + १ = २ \times ३ \times ५ \times ७ \times \ldots \times र + १$$

हम जानते हैं कि कोई भी संख्या या तो भाज्य है या अभाज्य। इसलिए (ल+१) भी या तो भाज्य है या अभाज्य। यदि यह अभाज्य है तो 'र' सबसे बड़ी अभाज्य संख्या नहीं है, क्योंकि ल+१ उससे भी बड़ी अभाज्य संख्या है। यदि ल+१ अभाज्य नहीं है तो वह एक भाज्य संख्या है अर्थात् उसके कम से कम दो गुणन-खण्ड हैं। परंतु यदि हम ल+१ में २ का भाग दें तो देखेंगे कि उसका प्रथम भाग 'ल' तो २ से कट जाएगा और शेष १ बच रहेगा। अर्थात् ल+१ में २ का भाग नहीं जाता। इसी प्रकार ३ से भाग देने पर भी वही स्थिति होती है। ३ का भाग 'ल' में पूरा-पूरा चला जाता है और शेष १ बच रहता है। इस प्रकार क्रम से हम देखते जाएँ तो पाएँगे कि २ से लेकर 'र' तक किसी भी अभाज्य संख्या का भाग उसमें नहीं जा सकता क्योंकि यदि किसी एक से हम भाग देने की क्रिया करें तो उसका इस संख्या के प्रथम भाग 'ल' में पूरी बार भाग चला जाएगा और १ शेष बच रहेगा। इसलिए २ से लेकर र तक किसी भी संख्या से ल+१ भाज्य नहीं हो सकती है। परंतु हमने ल+१ को भाज्य माना है। इसलिए उसका कोई गुणन-खण्ड जब 'र' से कम नहीं है तो 'र' से बड़ा होना चाहिए। अर्थात् 'र' से कोई बड़ी अभाज्य संख्या होनी चाहिए। इस प्रकार 'ल+१' का भाज्य 'र' से बड़ी एक अभाज्य संख्या होना सिद्ध हुआ। इसका भी अर्थ यही हुआ कि स्वयं 'र' सबसे बड़ी अभाज्य संख्या नहीं है, 'र' से बड़ी एक अन्य अभाज्य संख्या भी है।

तात्पर्य यह है कि हम चाहे कितनी ही बड़ी एक अभाज्य संख्या लिख दें, उससे बड़ी एक अन्य अभाज्य संख्या का होना अवश्यंभावी है। यही परिभाषा किसी संख्या-समूह के अनंत होने की है। अतः अभाज्य संख्याएँ अनंत हैं।

ऊपर के विवेचन में एक ध्यान देने योग्य बात है। यह तो सिद्ध हो गया कि 'र' से बड़ी एक अन्य अभाज्य संख्या होगी, परंतु (ल+१) का एक अभाज्य संख्या होना आवश्यक नहीं। इस प्रकार 'र' तक की अभाज्य संख्याओं को जान लेने के बाद भी कोई सूत्र ऐसा नहीं मिला, जिससे उससे बड़ी किसी भी अभाज्य संख्या को जाना जा सके। अभाज्य संख्याओं की रचना के लिए सूत्र ढूँढ़ने के अनेक प्रयास होते रहे हैं और उनकी कहानी गणितज्ञों की कर्त्तव्यनिष्ठा, झक्कीपन और स्वांतःसुखाय कार्य करने के माद्दे की एक गौरवपूर्ण गाथा है।

फ़र्मा संख्या

अभाज्य संख्या रचना सूत्रों में सबसे प्रसिद्ध सूत्र फ़र्मा का दिया हुआ है। अंकों के गुणों में उसकी गहन अंतर्दृष्टि में संभवतः बीसवीं सदी के महान् गणितज्ञ रामानुजन ही आगे होंगे। पूर्णांक रामानुजन के ता व्यक्तिगत मित्र ही थे। फ़र्मा का अभाज्य संख्या सर्जना का अनुमानित सूत्र निम्नलिखित है :

$$फ_{न} = २^{२^{न}} + १, न = १, २, ३, \ldots$$

ये संख्याएँ फ़र्मा संख्या कहलाती हैं और उसी के नाम के प्रथम अक्षर 'फ' (अंग्रेजी के एफ़

'F') से लिखी जाती हैं। $फ_न$ को निकालने के लिए 'न' को १, २, ३, ४, . . . इत्यादि मूल्य देकर दाहिनी ओर की राशि का मान निकालने पर फ़र्मा संख्या प्राप्त होती है। इस प्रकार

$$फ_२ = २^{२^२} + १ = २^४ + १ = १६ + १ = १७$$

$$फ_४ = २^{२^४} + १ = २^{१६} + १$$

$$फ_६ = २^{२^६} + १ = २^{६४} + १$$

इस सूत्र से प्राप्त प्रथम चार संख्याएँ हैं :

$$फ_१ = ५,\ फ_२ = १७,\ फ_३ = २५७,\ फ_४ = ६५,५३७$$

ये चारों संख्याएँ अभाज्य हैं। परंतु पाँचवीं संख्या है :

$$फ_५ = ४,२९,४९,६७,२९७$$

यह पाँचवीं फ़र्मा संख्या बहुत दिनों तक पहेली बनी रही जब तक कि ऑयलर ने सन् १७३२ में इसके दो गुणन-खण्ड नहीं कर दिखाए :

$$फ_५ = ६४१ \times ६७,००,४१७$$

इसके आगे की संख्या $फ_६$ की प्रकृति को जानने के लिए १०० से अधिक और वर्ष लग गए। $फ_६$ को यहाँ विस्तार में लिखने के लिए पर्याप्त स्थान नहीं है। सन् १८८० में उसे भी भाज्य-अंक सिद्ध कर दिया गया :

$$फ_६ = २,७४,१७७ \times ६,७२,८०,४२,१३,१०,७२१$$

अब तक $फ_न$ को न के निम्न मानों के लिए भाज्य-संख्या सिद्ध किया जा चुका है :

न = ७, ८, ९, ११, १२, १८, २३, ३६, ३८, ७३

अभी तक इस अनुमानित सूत्र द्वारा केवल पहली ४ संख्याएँ $फ_१$, $फ_२$, $फ_३$, और $फ_४$ ही अभाज्य संख्याएँ प्राप्त हुई हैं और कुछ लोगों का कहना है कि $फ_४$ के बाद इस सूत्र में कोई भी अभाज्य संख्या नहीं है।

उपर के विवरण से स्पष्ट है कि अभी $फ_{७३}$ के पूर्व की भी अनेक फ-राशियों की प्रकृति जानना शेष है। $फ_६$ $(२^{६४}+१)$ के विशाल आकार से हम परिचित ही हैं। उसके आगे की फ-राशियों के आकार का तो केवल अनुमान लगाया जा सकता है। यह तो सिद्ध हो गया कि सभी $फ_न$ अभाज्य नहीं हैं परंतु क्या इस $फ_न$ संख्या-समूह में अभाज्य संख्याएँ अनंत रूप से मिलती जाएँगी, यह अभी तक अनिर्णीत प्रश्न है। हो सकता है कि कभी कोई गणितज्ञ कोई एक अत्यंत सरल-सा सूत्र इसे सिद्ध या असिद्ध करने के लिए प्रस्तुत करे जैसा कि यूक्लिद ने अभाज्य संख्याओं की अनंत श्रेणी २, ३, ५, ७, ११, . . . होने के विषय में लिखा था।

इसी दिशा में एफ़० एम० जी० आइंस्टाइन ने प्रस्ताव किया कि निम्न श्रेणी में अनंत अभाज्य संख्याएँ हैं :

$$२^{२}+१,\ २^{२^{२}}+१,\ २^{२^{२^{२}}}+१,\ \ldots$$

इस श्रेणी की राशियों की संख्या बहुत तेज़ी से बढ़ती है। उसकी तीसरी संख्या $फ_{४}$ है, चौथी संख्या $फ_{६५,५३६}$ होगी; अभी हमें $फ_{७३}$ तक की संख्याओं की प्रकृति भी नहीं ज्ञात है, आइंस्टाइन श्रेणी की चौथी संख्या का कौन और कब अध्ययन कर सकेगा ?

मर्सेन संख्या

फ़र्मा संख्या की भाँति ही मर्सेन संख्या प्रसिद्ध है। मर्सेन संख्या का सूत्र है:

$$म_{र} = २^{र} - १,\ र = २, ३, ५, ७, ११, १३, \ldots, २५७, \ldots$$

अर्थात् जिसमें 'र' एक अभाज्य संख्या है।

सन् १६४४ में मर्सेन ने दावा किया कि 'र' के केवल निम्न मानों के लिए ही $म_{र}$ एक अभाज्य संख्या होगी :

$$र = २, ३, ५, ७, १३, १७, १९, ३१, ६७, १२७, २५७ ।$$

१ और २५७ के बीच ३४ अन्य अभाज्य संख्याएँ हैं। इस प्रकार फ़र्मा के अनुसार २५७ या उससे छोटी ५५ रूढ़ संख्याओं में से ग्यारह अभाज्य संख्याएँ ही इस सूत्र के द्वारा अभाज्य संख्याओं की रचना करती हैं।

इन ग्यारह संख्याओं की प्रकृति जानने के लिए न जाने कितने गणितज्ञों ने अपना समय लगाया लेकिन वे आज भी २५७ से आगे की अभाज्य संख्याओं के लिए मर्सेन-राशि की प्रकृति नहीं जान पाए हैं।

यह नहीं मालूम कि मर्सेन ने किस आधार पर यह अनुमानित दावा प्रस्तुत किया था। कोई आधार अवश्य होना चाहिए। कुछ भी हो, पहले दो सौ वर्ष से अधिक तक उसके इस दावे को कोई चुनौती नहीं दे सका। पहली बार सन् १८८० के आस-पास इस गढ़ में कुछ दरारें पड़ीं। $म_{६१}$ को अभाज्य राशि सिद्ध कर दिया गया जो मर्सेन के अनुसार भाज्य होनी चाहिए थी। परंतु मर्सेन के समर्थकों ने इसे अपने ज्ञान-गुरु की वाणी का खंडन नहीं माना। उन्होंने कहा कि मर्सेन की ग्यारह संख्याओं में ६७ लिखने वालों की गलती से सम्मिलित हो गया होगा, वास्तव में मर्सेन ने ६१ लिखा होगा।

पुन: लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक के लिए सभी चुप हो गए। परंतु सन् १९०३ में कोल ने $म_{६७}$ को भी भाज्य सिद्ध कर दिखाया। $म_{६७}$ को मर्सेन ने अभाज्य घोषित किया था।

इस संख्या के भाज्य होने की घोषणा के विषय में एक मनोरम और अद्भुत प्रसंग श्री बेल ने अपने एक संस्मरण में दिया है। श्री बेल लिखते हैं :

मैंने कोल से पूछा कि आपको यह संख्या तोड़ने में कितने वर्ष लगे। उन्होंने धीरे से कहा—'तीन वर्षों के रविवार।' १ अक्तूबर १९०३ को अमरीकी गणित परिषद् की सभा

में एक बहुत साधारण शीर्षक 'बड़ी संख्याओं के गुणन-खण्डन विषयक' पर प्रवचन आयोजित था। जब सभापति ने कोल को अपना प्रवचन प्रारंभ करने के लिए आमंत्रित किया, तब मितभाषी कोल चुपचाप श्याम-पट पर पहुँच गए और खड़िया से २ का ६७ घात ($२^{६७}$) लिख दिया। उसके बाद सावधानी से उसमें से १ घटा दिया। बिना एक शब्द भी बोले हुए वह श्यामपट पर बचे ख़ाली स्थान की ओर बढ़े और निम्न अंकों का पूरा गुणन किया:

$$२^{६७} - १ = १९,३७,०७,७२१ \times ७,६१,८३,८२,५७,२८७$$

दोनों ओर की संख्याएँ बराबर आईं। कोल महोदय चुपचाप अपने स्थान पर जा बैठ गए।

यदि हम ६१ और ६७ को लेकर विवाद का स्मरण करें तो स्पष्ट होगा कि इस 'प्रवचन' में मर्सेन का ढाई सौ वर्ष से भी पुराना अनुमानित दावा ढह गया था। कहते हैं कि परिषद् की बैठक में पहली और अंतिम बार श्रोताओं ने तालियों की गड़गड़ाहट से किसी भी अभिलेख का स्वागत किया था। कोल ने सभा में एक शब्द भी नहीं बोला, न किसी श्रोता ने कोई प्रश्न ही किया। कितनी अद्भुत थी उस सभा की कार्यवाही!

जब क़िले का एक पत्थर टूट गया तब गणितज्ञों ने अन्य मर्सेन संख्याओं की खोजबीन की। अब तक यह सिद्ध हो चुका है कि रूढ़ संख्या 'र' के निम्न मानों के लिए $म_{र}$ एक अभाज्य संख्या होगी:

२, ३, ४, ७, १३, १७, १९, ३१. ६१, ८९, १०७, १२७

सबसे बड़ी मर्सेन अभाज्य संख्या है $म_{१२७}$ = १७,०१,४१,१८,३४,६०,४६,९२,३१,७३,१६,८७,३०,३७,१५,८८,४१,०५,७२७।

अन्य मर्सेन संख्याएँ भाज्य सिद्ध की जा चुकी हैं। परंतु उन सबके गुणन-खंड ज्ञात नहीं हैं। केवल कुछ के ही सभी गुणन-खंड मालूम हैं; कुछ के केवल दो, कुछ के केवल एक और दस ऐसी संख्याएँ हैं जिनका कोई भी गुणन-खंड मालूम नहीं है।

'र' के निम्न मानों वाले मर्सेन संख्या $म_{र}$ के गुणन-खण्ड नहीं मालूम यद्यपि उनका भाज्य होना सिद्ध हो गया है:

१०१, १०३, १०९, १३७, १३९, १४९, १५७, १९९, २४१, २५७।

मर्सेन द्वारा प्रस्तुत ५५ मर्सेन संख्याओं में केवल ग्यारह संख्याओं के अभाज्य होने के दावे में पाँच अशुद्धियाँ थीं—६७ और २५७ उनमें सम्मिलित नहीं होने चाहिए थे और ६१, ८९, तथा १०७ छूट गए थे।

उसके इस अनुमानित दावे का किस प्रकार मूल्यांकन किया जाए? जब उसने यह दावा किया था तब वह उस दावे की महत्ता के बारे में क्या सोचता होगा? उसकी थोड़ी-सी भूल सुधारने में ३०४ वर्ष लगे।

मर्सेन संख्याओं के विवेचन के साथ परिपूर्ण-संख्याओं का भी संबंध है जिसे इस समय प्रस्तुत करना उचित होगा। ऑयलर ने एक प्रमेय सिद्ध किया कि

एक सम संख्या तभी और केवल तभी परिपूर्ण हो सकती है जब उसका स्वरूप

$$२^{न-१}(२^{न}-१)$$

हो और $(२^{न}-१)$ एक अभाज्य संख्या हो।

मर्सेन संख्या का रूप $(२^{न}-१)$ का होता है। इसमें 'न' के केवल रुढ़ मान ही लिए जाते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि प्रत्येक मर्सेन अभाज्य संख्या के समकक्ष एक परिपूर्ण संख्या की रचना की जा सकती है। यह ध्यान रहे कि इनके अलावा भी अन्य परिपूर्ण संख्याएँ हैं।

मर्सेन संख्याओं के सहारे बड़ी-बड़ी परिपूर्ण संख्याएँ बनाई गई हैं। ८,१२८ एक परिपूर्ण संख्या है जिसका ज़िक्र हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। उसके बाद की तीन परिपूर्ण संख्याएँ हैं :

३,३५,५०,३३६; ८,५८,९८,६९,०५६ और १,३७,४३,८६,९१,३२८।

अभी तक सबसे बड़ी परिपूर्ण संख्या जिसे दश-आधारी रूप में लिखा गया है, निम्नलिखित है :

२३,०५,८४,३०,०८,१३,९९,५२,१२८

इससे बड़ी संख्या भी अंतिम मर्सेन संख्या $२^{१२७}-१$ के समकक्ष है जो $२^{१२६}(२^{१२७}-१)$ है, परंतु अब तक इसका मान लिखने की हिम्मत किसी ने नहीं की है।

कुछ अन्य सूत्र

अभाज्य-संख्या-निर्माण के लिए और भी कई सूत्र दिए जाते रहे हैं। उनमें से दो को हम यहाँ प्रस्तुत करेंगे। पिछले दो सूत्रों के आकार को देख कर भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। ये दो सूत्र अपनी सरलता और बोधगम्यता की दृष्टि से चुने गए हैं।

पहला सूत्र है $न^{२}-न+४१$ जिसमें न=१, २, ३, ४, ५, . . . । हम तत्काल देख सकते हैं कि इस सूत्र में न=४१ लिखने पर उसका मान $४१^{२}-४१+४१=४१^{२}$ हो जाता है। $४१^{२}$ का अर्थ है ४१×४१ जो स्पष्ट ही भाज्य संख्या है। परंतु 'न' के ४१ के कम होने पर यह सूत्र अवश्य ही अभाज्य संख्याओं का निर्माण करता है।

ये संख्याएँ हैं :

४१; ४३; ४७; ५३; ६१; ७१; ८३; ९७; ११३; १३१; १५१; १७३; १९७; २२३; २५१; २८१; ३१३; ३४७; ३८३; ४२१; ४६१; ५०३; ५४७; ५९३; ६४१; ६९१; ७४३; ७९७; ८५३; ९११; ९७१; १,०३३; १,०९७; १,१६३; १,२३१; १,३०१; १,३७३; १,४४७; १,५२३; १,६०१ और अंत में $४१^{२}-४१+४१=१,६८१$। इस सूत्र में एक और कमी है—इसमें १,६८१ से छोटी सभी अभाज्य संख्याएँ सम्मिलित नहीं है। परंतु अभाज्य संख्या विषयक कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए इस सूत्र ने जितना दिया उतना ही बहुत कुछ है।

दूसरा उल्लेखनीय सूत्र है $न^2 - ७९न + १६०१$। न=२ पर इस सूत्र से १४४७ संख्या प्राप्त होती है जो एक अभाज्य संख्या है। यह सूत्र भी न=१, २, . . ., ७९ तक तो काम देता है और इससे सभी अभाज्य संख्याएँ ही मिलती हैं, परंतु न=८० पर हमें एक भाज्य संख्या मिल जाती है।

अभाज्य संख्या युग्म

यहाँ पर हम अभाज्य-संख्या-रचना सूत्रों से तो विदा लेते हैं, पर अभाज्य संख्याओं के विषय में दो-एक बातें और कह देना उचित है। यदि हम 'एरेटास्थेनीज़ की चलनी' में अभाज्य संख्याओं को ध्यान से देखें तो पाएँगे कि जैसे-जैसे हम बड़ी संख्याओं की ओर बढ़ते जाते हैं, अभाज्य संख्याएँ अपेक्षाकृत कम होती जाती हैं। हो सकता है कि उनका घनत्व बहुत बड़ी संख्याओं में और भी कम हो। परंतु इनमें कुछ अभाज्य संख्याएँ हमें एक-दूसरे के बिलकुल नजदीक भी मिलती हैं जिनमें अंतर केवल '२' का होता है जैसे ५ और ७ या २९ और ३१ या १०७ और १०९। इस प्रकार की दो अभाज्य संख्याओं को अभाज्य-युग्म कहते हैं। इन अभाज्य युग्मों का उल्लेख सबसे पहले यूक्लिद ने किया था। जैसे-जैसे हम बड़ी संख्याओं की ओर बढ़ते हैं, अभाज्य संख्याओं की भाँति अभाज्य-युग्म अपेक्षाकृत कम होते जाते हैं। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के युग्म भी अनंत हैं। १०,००० और १०,१०० के बीच तीन अभाज्य युग्म हैं—१०,००७ और १०,००९; १०,०३७ और १०,०३९; १०,०६७ और १०,०६९। और आगे भी २,०९,२०१ और २,०९,२०३ तथा २,०९,२६७ और २,०९,२६९ दो अभाज्य युग्म हैं। संभवतः हम बिना हिचक के इस प्रकार के युग्मों के अनंत होने के विषय में दावा कर सकते हैं। परंतु दावा कर सकना एक बात है और उसे सिद्ध करना दूसरी बात। अभी तक इन युग्मों के अनंत होने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

यदि हम कहें कि जाने दीजिए अभाज्य संख्याओं को—क्या इतना भी हम नहीं कह सकते कि अभाज्य संख्याओं का या अभाज्य-युग्मों की विभिन्न स्थलों पर आबादी की सघनता के बारे में अब तक कोई नियम नहीं हाथ लग पाया है। पहली सौ संख्याओं में २५ अभाज्य संख्याएँ हैं; दूसरी सौ संख्याओं में २१, तीसरी सौ में १६, . . .। पहली हज़ार संख्याओं में १६७ अभाज्य संख्याएँ हैं तथा पहली दस लाख में ७८,४९८; पहली अरब में ५,०८,४७,४७८। इन संख्याओं से इतना तो स्पष्ट है कि अभाज्य संख्याओं की बस्ती कम घनी होती जाती है। यदि पहली हज़ार या पहली लाख संख्याओं का घनापन आगे भी चालू रहता तो इनकी संख्या एक अरब में कहीं अधिक होती। अभाज्य-युग्मों की संख्या भी इसी प्रकार घटती जाती है पर उनके लिए भी कोई नियम उपलब्ध नहीं हो सका है। निम्न तालिका में १२०० तक में प्रति सैकड़े अभाज्य संख्याएँ और अभाज्य-युग्म का फैलाव प्रस्तुत है।

	अभाज्य सख्या	अभाज्य युग्म
१— १००	२५	८
१०१— २००	२१	७
२०१— ३००	१६	४
३०१— ४००	१६	२
४०१— ५००	१७	३
५०१— ६००	१४	२
६०१— ७००	१६	४
७०१— ८००	१४	०
८०१— ९००	१५	५
९०१—१०००	१४	०
१००१—११००	१६	५
११०१—१२००	१२	१

आइए, अब कुछ और समस्याएँ देखें ।

वर्गों के योग के रूप में पूर्णांक

अंकगणित का आधारभूत प्रमेय है कि किसी (धनात्मक) पूर्णांक को अभाज्य संख्याओं के गुणन के रूप में सारतः एक ही प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है। 'सारतः' का अर्थ है कि इस संख्या के अभाज्य गुणन-खण्ड वही होंगे पर उनका क्रम भिन्न हो सकता है, जैसे :

१६५=३×५×११

परंतु इन ३, ५, ११ गुणन-खण्डों को अन्य क्रमों में भी रखा जा सकता है, जैसे ५×३×११ अथवा ११×५×३ इत्यादि। यह स्पष्ट ही है कि १६५=३×५×११=५×३×११=११×५×३। इसके लिए प्रमाण देने की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

हम देख चुके हैं कि '२' को छोड़कर शेष सभी अभाज्य संख्याएँ विषम होती हैं । विषम संख्या के भी दो रूप हो सकते हैं — ४न+१ तथा ४न+३ जिनमें न=०, १, २, ३, . . . । उदाहरण के लिए, यदि हम 'न' को विभिन्न मान देते जाएँ तो ये दोनों श्रेणियाँ निम्न प्रकार होंगी :

४न+१ : १, ५, ९, १३, १७, २१, २५, . . .

४न+२ : ३, ७, ११, १५, १९, २३, २७, . . .

इन दोनों श्रेणियों में सभी विषम संख्याएँ सम्मिलित हैं। इन दोनों ही श्रेणियों में अभाज्य संख्याएँ हैं और वे संभवतः अनंत हैं। पहली श्रेणी अर्थात् ४न+१ परिवार की अभाज्य संख्याएँ हैं, ५, १३, १७, . . . इत्यादि और दूसरी परिवार अर्थात् ४न+३ परिवार की अभाज्य संख्याएँ हैं ३, ७, ११, १९, . . . इत्यादि।

देखने में इन दोनों प्रकार की अभाज्य संख्याओं में कोई अंतर प्रतीत नहीं होता। परंतु फ़र्मा ने एक मनोरंजक प्रमेय प्रस्तुत किया। उसने कहा :

४न+१ परिवार की प्रत्येक अभाज्य संख्या दो वर्गों का योग होती है और यह योग सार रूप में केवल एक प्रकार से ही हो सकता है। परंतु उसने यह भी कहा कि ४न+३ परिवार में कोई भी अभाज्य संख्या दो वर्गों का योग नहीं है। उदाहरणार्थ $५=१+४=१^२+२^२$, $१३=४+९=२^२+३^२$, $१७=१+१६=१^२+४^२$, $२९=४+२५=२^२+५^२$, $३७=१+३६=१^२+६^२$, $६१=२५+३६=५^२+६^२$, $१०१=१००+१=१०^२+१^२$, . . . परंतु ३, ७, ११ . . . इत्यादि को इस प्रकार व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

इस प्रमेय की स्थापना उसने 'अनंत अवरोह' के सिद्धांत द्वारा की थी। सार रूप में इस स्थापना के लिए हम पहले मान लेते हैं कि यह प्रमेय किसी एक बड़ी संख्या के लिए असत्य है तो उसका अर्थ होगा कि वह एक उसी परिवार की उससे छोटी संख्या के लिए भी असत्य होगा। यदि वह इस दूसरी संख्या के लिए असत्य है तो उसी परिवार की एक और भी छोटी संख्या के लिए असत्य होगा। इस प्रकार तर्क करते हुए हम सबसे छोटी संख्या ५ पर आ पहुँचेंगे और यह कहेंगे कि ५ भी दो वर्गों का योग नहीं है। परंतु $५=१+४=१^२+२^२$। इसलिए हमारा मूल अनुमान ही असत्य है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि ४न+१ परिवार की अभाज्य संख्याएँ दो संख्याओं के वर्गों का योग होती हैं।

४न+१ परिवार की अभाज्य संख्याओं को देखने से यह लगता है कि शायद कोई क्रम अभाज्य संख्याओं के विषय में प्राप्त हो जाए। इस प्रकार के कई अनुमान लगाए गए। उनके रूप को देख कर हम भी संभवतः सोच सकते हैं कि $(न^२+१)$ रूपधारी अनंत अभाज्य संख्याएँ हो सकती हैं। परंतु इसका कोई प्रमाण अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है।

एक बात और ध्यान में रखने की है कि इस प्रकार की समस्याओं के विषय में दिमाग़ी घोड़े दौड़ाने के लिए सभी को पूरी छूट है। ये समस्याएँ ही ऐसी हैं जिनका समाधान तो दूर, उस समाधान की ओर अकिंचन प्रगति तक नहीं हुई है। कोई समय था कि पश्चिम में गणितज्ञों द्वारा इस प्रकार के अनुमानों की भरमार थी, पर अब ऐसा बहुत कम होता है। कुछ लोगों का कहना है कि संभवतः अब नई पीढ़ी के अधिक 'विद्वान' गणितज्ञ अपनी अलौकिक सहज-बोधता अथवा अन्तर्दृष्टि की शक्ति खोते जा रहे हैं। कुछ अनुमानों ने सिद्धि या असिद्धि के लिए विद्वानों का कितना समय लिया यह हम कुछ समय पूर्व देख चुके हैं। पर फिर भी गणित का प्रेम अनेक प्रेमियों को सदा बिना किसी प्रत्याशा के अपनी ओर खींचता ही रहता है।

फ़र्मा प्रमेय

संख्या-सिद्धांत का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पर बड़ा ही सरल प्रमेय भी फ़र्मा ने प्रस्तुत किया था।

'यदि 'न' कोई ऐसी संख्या है जो एक अभाज्य संख्या 'र' से भाज्य नहीं है, तो संख्या

$न^{र-१}-१$ संख्या 'र' से भाज्य होगी।'

इस सरल से प्रमेय को बहुत कुछ आगे बढ़ाया जा चुका है और आधुनिक बीजगणित में इसका विशेष स्थान है। इस प्रमेय के कुछ फल देखिए। यदि र=३ ले लें तो 'र' से अभाज्य संख्याएँ २, ४, ५, ७, ८ इत्यादि होंगी। इस प्रमेय के अनुसार सूत्र $न^{र-१}-१$ में 'र' को ३ एवं 'न' को २, ४, ५, . . . इत्यादि मान देने से जो संख्याएँ प्राप्त होंगी वे ३ द्वारा भाज्य होंगी।

र=३ $\quad न^{र-१}-१=न^{३-१}-१=न^{२}-१$

न के विभिन्न मानों के लिए $न^{२}-१$ के निम्न मान होंगे:

न	$न^{२}-१$
२	$२^{२}-१=३$
४	$४^{२}-१=१५$
५	$५^{२}-१=२४$
७	$७^{२}-१=४८$

३, १५, २४, ४८, . . . सभी ३ से भाज्य हैं।

इसी प्रकार यदि र=५ तो न=२, ३, ४, ६, ७, ८, ९, . . . र के द्वारा अभाज्य हैं। $न^{र-१}-१=न^{४}-१$। 'न' के विभिन्न मान लिखने पर निम्न फल होगा:

न	$न^{४}-१$
२	$२^{४}-१=\ १६-१=१५$
३	$३^{४}-१=\ ८१-१=८०$
४	$४^{४}-१=\ २५६-१=२५५$
६	$६^{४}-१=१२९६-१=१२९५$

स्पष्ट है कि १५, ८०, २५५, १२९५ इत्यादि सभी संख्याएँ संख्या ५ द्वारा भाज्य हैं। इस प्रमेय द्वारा हम अनेक संख्याओं को बिना पूर्ण रूप से जाने हुए भी उनकी प्रकृति के बारे में कुछ बता सकते हैं। जैसे $१०१^{६}-१$, या $१७३^{६}-१$ बहुत बड़ी संख्याएँ होंगी। यहाँ १०१ या १७३ का घात ६ लिखा गया है। ६+१=७ एक रूढ़ संख्या है। १०१ तथा १७३ संख्या ७ द्वारा अभाज्य हैं। ऊपर प्रमेय को यदि हम ध्यान से देखें तो इससे यह सिद्ध हुआ कि $१०१^{६}-१$ और $१७३^{६}-१$ संख्या ७ द्वारा भाज्य हैं।

अभाज्य सख्या की कसौटी

अभाज्य संख्याओं को खोजने के समकक्ष एक और समस्या है—किसी संख्या के अभाज्य होने की कसौटी। सन् १७७० में विल्सन ने एक प्रमेय प्रस्तुत किया जो इस प्रकार है:

कोई संख्या 'न' उस दशा में, और केवल उसी दशा में, अभाज्य होगी यदि १×२×३×......×(न—१)+१ संख्या 'न' से भाज्य हो।

आइए, इसे अपनी जानी-पहचानी अभाज्य संख्याओं पर आज़माएँ :

न	१×२×३......(न—१)+१	संख्या 'न' द्वारा भाज्य/अभाज्य
२	१+१=२	भाज्य
३	१×२+१=३	भाज्य
४	१×२×३+१=७	अभाज्य
५	१×२×३×४+१=२५	भाज्य
६	१×२×३×४×५+१=१२१	अभाज्य
७	१×२×३×४×५×६+१=७२१	भाज्य
८	१×२×......×७+१=५,०४१	अभाज्य
९	१×२×......×८+१=४०,३२१	अभाज्य
१०	१×२×......×९+१=३,६२,८८१	अभाज्य
११	१×२×......×१०+१=३६,२८,८०१	भाज्य
..	....	

बात तो बिलकुल सत्य है। जिस 'न' के सामने भाज्य लिखा है (२, ३, ५, ७, ११, . . .) वे सभी अभाज्य हैं और जिनके सामने अभाज्य लिखा है (४, ६, ८, ९, १०, . . .) वे सभी भाज्य-संख्याएँ हैं।

परंतु एक कष्ट है कि एक छोटी-सी संख्या ११ को भी अभाज्य सिद्ध करने के लिए कितना बड़ा गुणन करना पड़ा। थोड़ी-सी और बड़ी संख्याओं के लिए भी इसका उपयोग करना कठिन है—चाहे तो हम इसकी सहायता से १०१ को अभाज्य सिद्ध करने का प्रयास कर सकते हैं। हमारी वास्तविक समस्या तो बहुत बड़ी संख्याओं की है और उनके लिए तो यह सूत्र किसी भी प्रकार उपयोगी नहीं है। तथापि यह प्रमेय अभाज्य और भाज्य संख्याओं में एक अत्यंत सुंदर और मनोरंजक संबंध स्थापित अवश्य करता है।

कुछ इसी प्रकार का एक अन्य प्रमेय डिरिच्लेट ने प्रस्तुत किया था। 'यदि क और ख कोई दो ऐसी संख्याएँ हैं जिनमें संख्या १ से बड़ा कोई भी समान गुणन-खण्ड नहीं है तो उनके द्वारा रचित संख्या-परिवार

क न+ख, न=०, १, २, ३, ...

में अनन्त अभाज्य संख्याएँ मिल सकेंगी।'

उदाहरणार्थ क=६, ख=१ से संख्या-परिवार ६ न+१ की रचना होगी। यह परिवार है १, ७, १३, १९, २५, ३१, . . . । इस परिवार में अनंत अभाज्य संख्याएँ हैं। डिरिच्लेट द्वारा प्रतिपादित प्रमाण बहुत ही कठिन था। सन् १९४९ में इसकी एक सरल-सी उपपत्ति भी प्राप्त हुई है।

पूर्णांक $= \triangle + \triangle + \triangle$

गॉस की डायरी में दिनांक १० जुलाई सन् १७९६ को एक कोने पर लिखा हुआ है 'मैंने प्राप्त कर लिया (यूरेका)! संख्या $= \triangle + \triangle + \triangle$'

$\triangle$ का अर्थ है त्रिकोण। उस दिन गॉस ने सिद्ध कर दिया था कि प्रत्येक पूर्णांक तीन त्रिकोणीय अंकों के योग के बराबर होता है। त्रिकोणीय संख्या-परिवार है— ०, १, ३, ६, १०, १५, . . . । कुछ संख्याओं को देखिए :

१=०+०+१
२=०+१+१
३=१+१+१
४=०+१+३
५=१+१+३
६=०+३+३
७=१+३+३
८=१+१+६
९=०+३+६
१०=१+३+६
११=०+१+१०
१२=१+१+१०
१३=०+३+१०
१४=१+३+१०
१५=३+६+६
.. ..

कितना सरल और सुंदर है यह संबंध। इसीलिए गॉस ने इसकी खोज पर वही हर्ष के शब्द लिखे जिन्हें कहता हुआ दो हज़ार वर्ष से अधिक हुए आर्कमेडीज़ नगर की गलियों में से दिगम्बर अवस्था में ही भाग चला था ।

वास्तव में इस संबंध को यदि दूसरे रूप में देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि ८न+३, न=०, १, २, ३, . . . परिवार के सभी अंकों को तीन अंकों के वर्ग के योग रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इन दोनों कथनों के संबंध को यहाँ स्पष्ट नहीं किया जा सकता है पर थोड़ा बीजगणित के ज्ञान के सहारे उसे स्थापित करना सरल है। इसके कुछ उदाहरण निम्न हैं :

न	८न+३
०	३=१^२+१^२+१^२
१	११=१^२+१^२+३^२
२	१९=१^२+३^२+३^२

१०	$८३ = १^{२} + १^{२} + ९^{२}$
..	....
१२	$९९ = ३^{२} + ३^{२} + ९^{२}$

फ़र्मा ने इसी अनुसंधान को आगे बढ़ाया और सिद्ध कर दिया कि प्रत्येक पूर्णांक को चार पूर्णांकों के वर्गों के योग के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इन पूर्णांकों में ० भी अलबत्ता सम्मिलित है, जैसे कि पिछले उदाहरण में ० को एक त्रिकोणीय संख्या भी माना गया है।

फ़र्मा के इस सुंदर संख्या-संबंध से प्रभावित होकर सन् १७७० में वारिंग ने अनुमान लगाया कि जिस प्रकार फ़र्मा ने प्रत्येक पूर्णांक को **चार** पूर्णांकों के वर्ग का **योग** सिद्ध किया उसी प्रकार यह भी संभव होना चाहिए कि प्रत्येक पूर्णांक पूर्णांकों के **अन्य घातों** की एक **निश्चित** संख्या के योग रूप में व्यक्त किया जा सके। इस अनुमान के बाद अब सिद्ध हो चुका है कि प्रत्येक संख्या **९** पूर्णांकों के **घन** के योग के बराबर होती है, जैसे :

$$३९ = ० + ० + ० + १^{३} + १^{३} + १^{३} + १^{३} + २^{३} + ३^{३}$$
$$१८६ = १^{३} + १^{३} + १^{३} + १^{३} + २^{३} + २^{३} + २^{३} + ३^{३} + ५^{३}$$
$$४५७ = १^{३} + १^{३} + २^{३} + २^{३} + ३^{३} + ३^{३} + ४^{२} + ५^{३} + ६^{३}$$

... .

हम सोच सकते हैं कि यह तो सरल-सी बात है और किसी भी संख्या को इस प्रकार लिखने में कोई विशेष कष्ट नहीं होना चाहिए। पर इस अनुमान को सिद्ध करने में १७३ वर्ष लगे। अभी भी यह अवश्य सिद्ध हो चुका है कि वारिंग का अनुमान सत्य है अर्थात् सभी पूर्णांकों को पूर्णांकों के घातों की निश्चित संख्या के योग के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, परंतु किसी विशेष घात के लिए कितने अंकों की आवश्यकता होगी, हमें नहीं मालूम। अभी तो चौथे घात के लिए भी वांछित अंकों की संख्या क्या होगी नहीं मालूम, इतना ही सिद्ध कर सके हैं कि वह २१ से अधिक नहीं होगी। इससे ऊँचे घातों का क्या होगा, कह नहीं सकते, परंतु गणित का सर्वोच्च प्रमेय सिद्ध हो चुका है।

इस अनुमान के विषय में यह उल्लेखनीय है कि इसे एक अंग्रेज़ ने प्रस्तुत किया, पर उसके अंतिम समाधान में विभिन्न समय और विभिन्न प्रदेशों में काम करने वाले एक अंग्रेज़, एक जर्मन, एक रूसी, एक भारतीय (एस० एस० पिल्लै), एक अमेरिकी और एक कैनाडी के प्रयासों का सहयोग प्राप्त हुआ। भाग्य से, गणित के क्षेत्र में राष्ट्रीय पक्षपात के लिए कोई स्थान नहीं है।

एक प्राचीन चीनी अनुमान

लगभग २५०० वर्ष पूर्व चीन में गणितज्ञों ने सूत्र $२^{न} - २$ द्वारा बनी हुई संख्याओं

एक विलक्षण गुण पाया। 'न' के विभिन्न मानों के लिए इस सूत्र द्वारा बनी संख्या ार होगी :

न	$२^{न}—२$	=	संख्या	संख्या 'न' द्वारा भाज्य या अभाज्य
२	$२^{२}—२=\ \ ४—२$	=	२	भाज्य
३	$२^{३}—२=\ \ ८—२$	=	६	भाज्य
४	$२^{४}—२=\ १६—२$	=	१४	अभाज्य
५	$२^{५}—२=\ ३२—२$	=	३०	भाज्य
६	$२^{६}—२=\ ६४—२$	=	६२	अभाज्य
७	$२^{७}—२=१२८—२$	=	१२६	भाज्य
८	$२^{८}—२=२५६—२$	=	२५४	अभाज्य
९	$२^{९}—२=५१२—२$	=	५१०	अभाज्य
....	....		.....	......

इस तालिका से यह प्रतीत होता है कि जब 'न' एक अभाज्य संख्या है, जैसे २, ३, ५, ७,... तब तो $२^{न}—२$ उसके द्वारा भाज्य है। परंतु जब 'न' अभाज्य नहीं है, जैसे ४, ६, ८, ९,... तब $२^{न}—२$ उसके द्वारा अभाज्य है। हम चाहे कुछ अन्य संख्याओं के लिए भी यह करके देख लें तो यही नियम सत्य पाएँगे। वस्तुतः जैसे-जैसे हम 'न' के और बड़े मान लेते जाते हैं, संख्याएँ बहुत तेज़ी से बढ़ती जाती हैं और हमारे लिए भाग की क्रिया करना कठिन होता जाता है। $२^{६४}$ से हम परिचित ही हैं। परंतु इस सूत्र में न=६४ तो एक अत्यंत छोटी संख्या है। चीनी गणितज्ञों का यही विश्वास था कि यदि 'न' एक अभाज्य संख्या है तो $२^{न}—२$ उसके द्वारा भाज्य है पर यदि 'न' स्वयं एक भाज्य संख्या है तो $२^{न}—२$ उसके द्वारा भाज्य नहीं होगी। सन् १६८०–८१ में जर्मन दार्शनिक लेबिनिट्ज़ ने भी इस अनुमान के सत्य होने का दावा किया।

परंतु गणितज्ञ केवल कुछ संख्याओं के द्वारा इस प्रकार के प्रदर्शन से संतुष्ट नहीं हुए। अब यह दिखाया जा चुका है कि जब न=३४१ (=३१×११) तो $२^{न}—२$ उसके द्वारा भाज्य है। $२^{३४१}—२$ को यदि हम लिखें तो उसमें ३४१ का भाग चला जाएगा। इस प्रकार ३४१ संख्या पर पहुँच कर यह नियम टूट जाता है।

अब प्रश्न है कि क्या इसके सिवाय कोई अन्य संख्याएँ भी हैं जिनके लिए चीनी अनुमान असत्य है? ३४१ तो एक विषम संख्या है, क्या यह अनुमान किसी सम संख्या के संबंध में भी असत्य हो सकता है? सन् १९५० में हेलमर ने सिद्ध किया कि यदि न=१६१०३८ तो $२^{न}—२$ संख्या 'न' द्वारा भाज्य है अर्थात् $२^{१६१०३८}—२$ में १६१०३८ का भाग जा सकता है। यह तो स्पष्ट है कि $२^{१६१०३८}$ का मान लिखना असंभव है, परंतु हेलमर के कथन की उपपत्ति तर्क द्वारा की गई है।

कहते हैं कि फ़र्मा का $२^{२^{न}}+१$ के रूढ़ होने का दावा इसी चीनी अनुमान पर अवलंबित था। चीनी अनुमान असिद्ध होने पर उसके दावे का आधार भी समाप्त हो गया।

परंतु इस अनुमान को असिद्ध करने में ढाई हज़ार वर्ष लगे।

कुछ और अनिर्णीत अनुमान

सम संख्याओं की निम्न लिखने की विधि को देखने से उनका एक गुण स्पष्ट होता है :

४=२+२
६=३+३
८=३+५
१०=५+५
१२=५+७
१४=७+७
१६=५+११
१८=७+११
२०=७+१३
२२=५+१७

प्रत्येक सम संख्या दो अभाज्य संख्याओं के योग के रूप में व्यक्त की जा सकती है। हम देख सकते हैं कि विषम संख्याओं के लिए ऐसा करना संभव नहीं। यदि हम ११ को इस प्रकार व्यक्त करने का प्रयास करें तो उसको १+१०, २+९, ३+८, ४+७, ५+६ इन चार प्रकारों से ही दो संख्याओं के योग रूप में लिख सकते हैं। इस प्रकार ११ को दो अभाज्य संख्याओं के योग रूप में नहीं व्यक्त किया जा सकता है।

अब समस्या यह है कि क्या **सभी** सम संख्याओं को दो अभाज्य संख्याओं के योग रूप में व्यक्त किया जा सकता है? सन् १७४२ में सर्वप्रथम ऊपर के दृष्टांत देकर गोल्डबाख़ ने ऑयलर के सामने यह समस्या रखी थी। यह आज भी अनिर्णीत है। गणितज्ञों ने २०,००,००० तक सभी सम संख्याओं को दो अभाज्य संख्याओं के योग रूप में व्यक्त करना संभव सिद्ध कर दिया है, पर सभी सम संख्याओं के लिए अभी यह समस्या उलझी ही है।

एक अन्य समस्या देखिए। पहले हम रूढ़ संख्याओं को एक पंक्ति में लिख लेते हैं। उसके नीचे की पंक्ति में दो पास-पास की अभाज्य संख्याओं का अंतर लिखते जाते हैं। इस प्रकार कुछ संख्याओं की यह दूसरी पंक्ति बन जाएगी। तीसरी पंक्ति में हम दूसरी पंक्ति में लिखी संख्याओं में पास-पास संख्याओं का अंतर लिख दें। यह अंतर लिखने

में हम संख्या के चिह्न का ध्यान नहीं रखेंगे। उदाहरण के लिए २ और ३ में अंतर १ है, तथा ३ और २ में —१, पर हम दोनों के लिए केवल १ ही लिखेंगे क्योंकि हम अंतर ही लिखना चाहते हैं। हम २ से लेकर ४७ तक की सब अभाज्य संख्याओं को क्रम से लिख कर निम्न तालिका बना सकते हैं:

२, ३, ५, ७, ११, १३, १७, १९, २३, २९, ३१, ३७, ४१, ४३, ४७
१, २, २, ४, २, ४, २, ४, ६, २, ६, ४, २, ४
१, ०, २, २, २, २, २, २, ४, ४, २, २, २
१, २, ०, ०, ०, ०, ०, २, ०, २, ०, ०
१, २, ०, ०, ०, ०, २, २, २, २, ०
१, २, ०, ०, ०, २, ०, ०, ०, २
१, २, ०, ०, २, २, ०, ०, २
१, २, ०, २, ०, २, ०, २
१, २, २, २, २, २, २
१, ०, ०, ०, ०, ०
१, ०, ०, ०, ०
१, ०, ०, ०
१, ०, ०
१, ०
१

इस तालिका में दृष्टव्य यह है कि पहिली पंक्ति को छोड़ सभी पंक्तियों में प्रथम अंक १ ही है। पर प्रश्न यह है कि क्या ऐसा सदा ही होगा चाहे हम कितनी भी अभाज्य संख्याओं को प्रथम पंक्ति में लिखकर यह क्रिया क्यों न प्रारंभ करें? प्रथम ६४,३१८ अभाज्य संख्याओं तक दिखाया जा चुका है कि यह नियम सत्य होगा, परंतु व्यापक हल अभी प्राप्त नहीं हुआ है।

यह समस्या सन् १९५८ में गिल्ब्रीथ ने प्रस्तुत की थी।

डाकघर में उलझन और डायफ़ेंटाइन विश्लेषण

शुद्ध गणितशास्त्री उपयोगिता की बात सुनकर प्रसन्न नहीं होता है। परंतु कभी-कभी उसके प्रमेय भी उपयोगी हो ही जाते हैं। आइए, एक साधारण उलझन को, जो कभी-कभी डाकघर में पोस्टकार्ड-लिफ़ाफ़े लेने जाने पर सामने आती है, देखें।

कभी-कभी खुले पैसे न होने पर एक रुपये के नोट से क्या क्रय करें, इसका निर्णय लेना होता है। कुछ लोगों ने तो अनुभव के आधार पर पूरे रुपये में से क्या खरीदेंगे, सदा के लिए ही निश्चित कर लिया होता है।

मान लीजिए कि हमारे पास एक रुपया है। हम पोस्टकार्ड लिखते नहीं हैं, अंतर्देशीय

और एक लिफ़ाफ़ा चाहिए। मुंशी जी के पास रेज़गारी नहीं है। क्या करेंगे? चट-पट हिसाब लगाकर हम कुछ और लिफ़ाफ़े और अंतर्देशीय पत्र ले लेते हैं। प्रश्न है कितने?

हमारे पास १०० पैसे हैं। लिफ़ाफ़े की कीमत २० पैसे और अंतर्देशीय पत्र की १५। मान लीजिए हम 'य' लिफ़ाफ़े और 'र' अंतर्देशीय पत्र ले सकते हैं। इसको यदि गणितीय समीकरण के रूप में लिखें तो

$$२० \times य + १५ \times र = १००$$

अथवा $$४य + ३र = २०$$

इस समीकरण का हल हमें चाहिए। परंतु ध्यान रहे कि बीजगणित का हल हमें नहीं चाहिए क्योंकि इस समीकरण के भिन्न संख्याओं में तो अनंत हल हो सकते हैं। पर डाकखाने में लिफ़ाफ़े फट कर नहीं बिकते—आधे लिफ़ाफ़े का कोई अर्थ नहीं। साथ ही 'य' और 'र' दोनों कम से कम १—१ होने चाहिए क्योंकि एक लिफ़ाफ़ा और एक अंतर्देशीय अवश्य लेना है। थोड़ा प्रयास करने पर इस समीकरण का एकमात्र हल य=२, र=४ प्राप्त हो सकता है। हम २ लिफ़ाफ़े और ४ अंतर्देशीय पत्र ख़रीद कर रेज़गारी की समस्या का हल कर सकते हैं।

अब मान लीजिए कि हमको एक पोस्टकार्ड भी चाहिए क्योंकि महँगाई के कारण पोस्टकार्ड लिखने में हमें कोई विशेष आपत्ति नहीं रही। पोस्टकार्ड की क़ीमत १० पैसे है। मान लीजिए हम ने 'ल' पोस्टकार्ड ख़रीदे। तो हमारा समीकरण इस स्थिति में निम्न रूप का होगा :

$$२० य + १५ र + १० ल = १००$$

अथवा $$४ य + ३ र + २ ल = २०$$

इस समीकरण के एक से अधिक हल हो सकते हैं : (१, ४, २); (१, २, ५); (२, २, ३) तथा (३, २, १)। पोस्टकार्ड भी मोल लेने के निर्णय से हमें अपनी अभिरुचि के अनुसार क्रय करने की अधिक स्वतंत्रता मिल गई। हम इन चार संचयों में से किसी एक को भी चुन सकते हैं।

वस्तुतः यह कोई नई समस्या नहीं है। शुद्ध गणित में आज से हज़ारों वर्ष पूर्व इस समस्या का अध्ययन प्रारंभ हुआ था। आइए, इसकी आधारभूत गणितीय समस्या को भी देखें।

विभिन्न समीकरणों को हल करने के सिलसिले में हमने संख्या संकल्पना को पूर्णांकों से भिन्नांक, करणी संख्या, अपरिमेय तथा काल्पनिक संख्याओं तक विस्तृत किया। इस प्रकार इस विशद् संख्या संकल्पना के आधार पर हम कितनी घात के भी सभी समीकरणों को हल कर सकते हैं। परंतु अब यहाँ हम डायफ़ेंटाइन गणित में पुनः पूर्णांकों के सिवाय अन्य सभी संख्या समुदायों को भूलने का प्रयास करेंगे। यह गणित का **उच्चतम** रूप है। इसमें समीकरणों के केवल वे ही हल मान्य हैं जिनका हल पूर्णांक हो अन्यथा हम कह देते हैं कि हमारे इस गणित के अंतर्गत समीकरण का हल संभव नहीं है।

कभी-कभी हम इससे कुछ कम कड़े प्रतिबंध भी स्वीकार कर लेते हैं। उस स्थिति में हम भिन्न अंकों अथवा परिमेय संख्या परिवार के अंतर्गत प्राप्त हल को भी मान्यता दे सकते हैं। यहाँ पर हम अपना विवेचन पूर्णांकों तक ही सीमित रखेंगे।

गणित की इस शाखा का उद्भव सिकंदरिया निवासी डायफ़ेंटस के नाम से जुड़ा हुआ है। उसके बाद आधुनिक काल में ऑयलर, लगरांज और गॉस ने इसमें महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अभी भी अनेक समस्याएँ प्रतिभाशाली गणितज्ञों की प्रतीक्षा में हैं।

हम इसका विवेचन एक एकघातीय समीकरण के ही परीक्षण से प्रारंभ करेंगे। ३ क + ४ ख = ७ समीकरण दिया हुआ है। इसमें यदि हमें 'ख' का मूल्य ज्ञात करना है तो हम निम्न क्रिया अपनाएँगे :

३ क + ४ ख = ७

अथवा ४ ख = ७ — ३ क (३ क को बाईं ओर से दाहिनी ओर ले आएँ)

ख = $\frac{१}{४}$ × (७ — ३ क) (दोनों ओर ४ का भाग दिया)

अंतिम समीकरण से हम 'क' और 'ख' के अनंत मान लिख सकते हैं जो हमारे मूल समीकरण को संतुष्ट करें। हम 'क' का जो चाहें मान रखें, उसके अनुरूप 'ख' का भी एक मान प्राप्त हो जाएगा। जैसे क = २, ख = $\frac{१}{४}$; क = $\frac{१}{३}$, ख = $\frac{३}{२}$; क = ०, ख = $\frac{७}{४}$ इत्यादि।

परंतु यदि हम इन हलों पर डायफ़ेंटाइन प्रतिबंध लगा दें कि इस समीकरण का हल पूर्णांकों में होने पर ही मान्य होगा तो कठिनाई होगी। मूल समीकरण के परीक्षण मात्र से हम कह सकते हैं कि इसका पूर्णांकों में केवल एक हल है क = १, ख = १।

यह उदाहरण तो इतना सरल है कि जिसमें कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होती। परंतु यदि कोई समीकरण

१२१ क + ७१ ख + २०७ ग = २१६७

की तरह का हो तो सहसा देखने मात्र से उसका हल निकालना संभव नहीं है और एक-घातीय समीकरण ३ से अधिक अज्ञात राशियों के भी हो सकते हैं।

हम लोगों ने २००० वर्ष से अधिक के प्रयत्न के बाद एक-घातीय समीकरणों को पूरी तरह से हल कर लिया है। इस क्षेत्र में प्राचीन काल में हिन्दू गणितज्ञ अग्रणी थे। और हमारे समय में स्मिथ ने सन् १८८० के लगभग इस एक-घातीय समस्या की अंतिम कठिनाइयों का निवारण किया। हमारी डाकघर की समस्या मूल रूप में एक-घातीय समीकरण के हल की समस्या ही थी।

डायफ़ेंटाइन विश्लेषण की समस्या का सूत्रपात वास्तव में एकाधिक घात के समीकरणों के हल के साथ हुआ। संख्यांकों के साथ मनोविनोद करते हुए कभी कदाचित् हम भी कुछ संबंधों से प्रभावित हुए होंगे। इसी अध्याय में अनेक संबंध सामने आ चुके हैं।

एक संबंध विशेष उल्लेखनीय है २७ = २५ + २। यहाँ पर **उल्लेखनीय** यह है कि २७ और २५ दो पूर्णांकों के घात हैं—२७ = $३^{३}$, २५ = $५^{२}$। यदि हम एक समीकरण लिखें :

$$य^3 = र^2 + २$$

$$२७ = २५ + २$$

संबंध ज्ञात होने से हम कह सकते हैं कि इस समीकरण का हल पूर्णांकों में उपलब्ध है—हल है य = ३, र = ५।

अब विचार करने वाला व्यक्ति इसी से संतुष्ट नहीं होगा। उसके सामने प्रश्न होगा कि क्या $य^3 = र^2 + २$ के अन्य कोई पूर्णांक हल भी उपलब्ध हो सकते हैं? हम यदि चाहें तो इस सरल-सी प्रतीत होने वाली समस्या का समाधान करने का प्रयास करें। परंतु ध्यान रहे कि 'इस बच्चों की-सी समस्या के हल करने के लिए आपेक्षिकता सिद्धांत को समझने से भी अधिक कुशाग्र बुद्धि की आवश्यकता है।'

$य^3 = र^2 + २$ की समस्या भी डायफ़ेंटस से प्रारंभ हुई जिसे अंत में फ़र्मा ने सुलझाया। इसके पूर्व यह नहीं ज्ञात था कि अन्य कोई पूर्णांक हल उपलब्ध है अथवा नहीं। फ़र्मा ने सिद्ध किया कि इसका अन्य कोई हल नहीं है। परंतु अपनी आदत के अनुसार उसने इस साध्य की उपपत्ति भी कहीं दबा कर रख दी थी। उसकी मृत्यु के कई वर्षों बाद ही उसे खोज कर निकाला जा सका।

फ़र्मा का अंतिम प्रमेय

फ़र्मा की लिखकर रख देने की आदत ने एक अन्य विशेष समस्या के विषय में विश्व भर के गणितज्ञों को ३०० से अधिक वर्ष से परेशान कर रखा है। उसका पूरा समाधान अभी भी नहीं हो पाया है। हम शुल्व प्रमेय (पश्चिम के पाइथागोरस प्रमेय) को इसके पूर्व देख चुके हैं। यदि एक समीकरण

$$य^2 + र^2 = क^2$$

के रूप का हो तो उसके अनन्त हल संभव हैं। यथा य = ३, र = ४, क = ५; य = ४, र = क = १३; इत्यादि।

यही समस्या डायफ़ेंटस द्वारा रचित अंकगणित के दूसरे भाग में दी हुई है। फ़र्मा की यह आदत थी कि जो भी विचार उसे आता, वह किताब के हाशिये पर ही लिख दिया करता था। वास्तव में उसका अधिकांश गणित का कार्य इसी प्रकार के समय-समय पर अंकित किए गए लेखों को जोड़ कर ही प्राप्त किया जा सका है। उसकी मृत्यु के बाद $य^2 + र^2 = क^2$ समीकरण के पास हाशिये पर निम्न टिप्पणी लिखी पाई गई :

'इसके विपरीत, किसी भी घन को दो घनों के योग के रूप में, या किसी संख्या के चतुर्थ घात को संख्याओं के चतुर्थ घात के योग के रूप में विभाजित करना असंभव है, अथवा व्यापक रूप से किसी भी अंक के वर्ग से बड़े किसी भी घात को दो संख्याओं के **उसी** घात के योग के रूप में नहीं विभाजित किया जा सकता है। मैंने (इस साध्य का) एक सत्य और अद्भुत प्रदर्शन खोज लिया है जिसे लिखने के लिए यह हाशिया बहुत सँकरा है।'

यही प्रमेय फ़र्मा का 'विख्यात' अंतिम प्रमेय है जिसको उसने सन् १६३७ ई०

के लगभग 'खोजा' था। ३०० वर्ष से अधिक के कठिन परिश्रम के बाद भी दुनिया के मूर्धन्य गणितज्ञ भी इस सँकरे हाशिये को बढ़ा कर इस प्रमेय को सिद्ध करने में असमर्थ रहे हैं।

इसी समस्या को यदि हम समीकरण के रूप में लिखें तो कुछ निम्न प्रकार होगा :

डायफ़ेंटस की समस्या य, र, क तीन ऐसे पूर्णांक या परिमेय संख्याएँ प्राप्त करने की थी जो $य^२+र^२=क^२$ को संतुष्ट कर सकें। फ़र्मा ने दावा किया कि ऐसी कोई भी पूर्णांक या परिमेय संख्याएँ नहीं हैं जो $य^३+र^३=क^३$ या $य^४+र^४=क^४$ को संतुष्ट करें या व्यापक रूप से $य^न+र^न=क^न$ को संतुष्ट करें जिसमें 'न' अंक २ से बड़ा कोई पूर्णांक है।

फ़र्मा ने स्वयं ही इस प्रमेय को न=४ के लिए अनंत अवरोह के द्वारा सिद्ध किया था। अर्थात् $य^४+र^४=क^४$ का पूर्णांकों में हल नहीं हो सकता। ऑयलर ने सन् १७७० में न=३ के लिए एक अधूरी उपपत्ति प्रस्तुत की, जिसे अन्य लोगों ने बाद को पूरा किया।

$य^न+र^न=क^न$ में अगर 'न' का मान २ से अधिक हो तो समीकरण का पूर्णांक हल असंभव है, इसे सिद्ध करने के लिए कितने प्रयास हुए, उन सबका ब्यौरा तो संभव नहीं, परंतु तद्विषयक विद्वानों के परिश्रम का कुछ आभास अवश्य मिल सकता है। $य^न+र^न=क^न$ समस्या को हल करने के लिए दो भागों में विभाजित किया गया—पहली वे स्थितियाँ जिन में संख्याएँ य, र तथा क तीनों में से कोई भी संख्या 'न' से भाज्य नहीं है, दूसरी वह स्थिति जिसमें य, र तथा क में से कम से कम एक संख्या 'न' से भाज्य है। दूसरी स्थिति अधिक कठिन है। पहली स्थिति के विषय में रोसर (१९०७–   ) ने यह सिद्ध किया कि यह प्रमेय संख्या ४,१०,००,००० तक के सभी विषम रूढ़ घातों के लिए सत्य है। सन् १९४१ में दो गणितज्ञों ने इस संख्या को २५,३७,४७,८८९ तक पहुँचा दिया। दूसरी स्थिति के लिए सन् १९५० तक केवल ६०७ घातों तक के लिए प्रमेय सिद्ध हुआ है। अभी तक इस प्रमेय का कोई अपवाद नहीं मिला है।

इस उदाहरण से गणित में उपपत्ति किसे कहते हैं और उसे पाना कितना कठिन हो सकता है, यह स्पष्ट हो गया होगा। करोड़ों विशेष उदाहरण हमारे व्यापक प्रमेय को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। हमें तो 'न' के '२' से अधिक सभी मानों के लिए प्रमाण चाहिए जो अभी तक उपलब्ध नहीं हैं।

कुछ पाठक इस समस्या पर अपना हाथ आज़मा सकते हैं। परंतु इस विषय में हिलबर्ट का कथन ध्यान में रखना हितकर होगा। सन् १९२० में किसी ने हिलबर्ट से पूछा कि वह इस समस्या को क्यों नहीं हल करते। उसने उत्तर दिया, 'इसके हल की खोज प्रारंभ करने के पूर्व मुझे कम से कम तीन वर्षों तक समस्या का गहन अध्ययन करना चाहिए। परंतु मेरे पास एक संभावित असफल प्रयास पर फ़िज़ूलख़र्ची के लिए इतना समय नहीं है।'

पर फिर भी अनेक गणित के प्रेमी इस समस्या को हल करने का प्रयास करते ही

रहते हैं—क्या मालूम फ़र्मा की उपपत्ति हाथ लग जाए, जो उस हाशिए के लिए तो दीर्घकाय थी, पर इतनी छोटी अवश्य थी कि फ़र्मा उस पर अपने मन में ही पूरा विचार कर सका। सचमुच इतना-सा कार्य विश्व-ख्याति के लिए पर्याप्त होगा।

यदि अब तक की कहानी पढ़कर कुछ उत्साह का अनुभव हो रहा हो तो क्यों न कागज़-पेंसिल लेकर हम भी कुछ करें। इस क्षेत्र में खोज करने के लिए न विलायत जाने की आवश्यकता है, न बड़ी मशीनों की और न बड़ी-बड़ी इमारतों की। आर्कमेडीज़, न्यूटन और गॉस तीनों का अब तक के पूरे विश्व के गणितशास्त्रियों में मूर्धन्य स्थान है। कौन बड़ा है और कौन छोटा है, यह साधारण लोगों के लिए कहना असंभव है। आर्क-मेडीज़ ने बिना किसी साधन के कितने प्रगति की, कितने प्रमेय सिद्ध किए, यह हमें चकित कर देता है। कहते हैं कि यदि यूनानी गणितज्ञों ने यूक्लिद, प्लेटो और अरस्तू का अनुसरण करने के बजाय आर्कमेडीज़ का अनुसरण किया होता तो उन्होंने निस्संदेह आधुनिक गणित और आधुनिक विज्ञान की दुनिया में उसी समय पदार्पण कर लिया होता। यही आर्कमेडीज़, जब समुद्र के रेत पर एक रेखा बना कर विचार कर रहा था, एक रोमी सिपाही की तलवार का शिकार बना था।

सत्रहवीं शताब्दी में फ़र्मा, जिसके कई प्रमेयों को हम देख चुके हैं, व्यवसाय से एक वकील था। केवल कार्यकारी जीवन से बचा प्रतिदिन संध्या का समय अथवा छुट्टियों के दिन गणित पर गहन विचार करते या गणित के संबंध में पत्र-व्यवहार करते बीतते थे। यदि फ़र्मा के पुत्र ने उसके कार्य को संकलित न किया होता तो शायद हम उसके बारे में कुछ भी नहीं जान पाते। फ़र्मा ने कभी कोई पुस्तक नहीं लिखी। गणित की किताब पढ़ते-पढ़ते जो विचार आते, उन्हें उसी के हाशिए पर लैटिन में अपने आड़े-टेढ़े अक्षरों में वह लिख दिया करता था अथवा वह अपने बगीचे में बैठ कर गणित के संबंध में अपने नये विचार मित्रों को पत्र में लिख दिया करता था। उसके पुत्र ने पुस्तकालय की सब पुस्तकों में लिखी टिप्पणियों को और जो पत्र मिल सके उन्हें संग्रहीत किया और उसकी मृत्यु के पाँच वर्ष पश्चात् पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। जब उसका यह कार्य प्रकाश में आया तब गणित जगत ने उसे संख्या-सिद्धांत और चलन-कलन का प्रवर्त्तक स्वीकार किया। कहते हैं कि शुद्ध गणित में उसका कोई सानी नहीं। उसका समकालीन न्यूटन यद्यपि महान गणितज्ञ था, पर शुद्ध गणित में फ़र्मा के बराबर नहीं था। उसे गणितज्ञों का राजकुमार कहा जाता है।

हमारे देश में भी रामानुजन नगण्य साधनों से अपने अत्यल्प जीवन में कुछ क्षेत्रों में उतना कर गए जो हार्डी के शब्दों में पूरे यूरोप के गणितज्ञ १०० वर्षों में नहीं कर सके। अस्तु, गणित, विशेष कर शुद्ध गणित, में अमूल्य भंडार अभी भी खोजने के लिए शेष हैं और उन्हें खोजने के लिए यदि कोई चीज़ आवश्यक है तो वह है जिज्ञासा और कुशाग्र बुद्धि। यही इन महान गणितज्ञों के जीवन का संदेश है।

आइए, इस अध्याय में कुछ और सरल प्रमेय प्रस्तुत करें जो इस अभिरुचि को जागृत करने में सहायक हों। और कुछ नहीं तो वे स्वस्थ मनोविनोद का आधार तो बन ही सकते हैं। इनमें से कुछ प्रमेय यूक्लिद के नाम से संबंधित हैं।

कुछ अन्य सरल प्रमेय

यदि 'क' और 'ख' कोई दो पूर्णांक हैं तो एक और केवल एक ही ऐसा पूर्णांक 'ह' भी होगा कि

(१) 'क' और 'ख' दोनों ही 'ह' द्वारा भाज्य हों, और

(२) 'का' और 'खा' दो अन्य ऐसे पूर्णांक हैं जो निम्न संबंध को तुष्ट करते हैं :
का क + खा ख = ह

इस प्रमेय में 'का' और 'खा' ऋणात्मक पूर्णांक भी हो सकते हैं।

इस प्रमेय की उपपत्ति देने के पूर्व हम उसका आशय एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करेंगे। महत्तम समापवर्त्तक की क्रिया से हम परिचित ही हैं। ७४१ तथा १०७९ दो संख्याओं का महत्तम समापवर्त्तक निकालने के लिए परिगणना निम्न प्रकार की जाएगी :

```
७४१) १०७९ (१
      ७४१
      ———
      ३३८) ७४१ (२
           ६७६
           ———
            ६५) ३३८ (५
                ३२५
                ———
                 १३) ६५ (५
                     ६५
                     ——
                      ×
```

इस प्रकार ७४१ और १०७९ का महत्तम समापवर्त्तक १३ आया। इसका अर्थ क्या है ? ७४१ और १०७९ दोनों ही संख्याएँ १३ द्वारा भाज्य हैं। ऊपर दिए प्रमेय के भाग (१) का साध्य यही है कि इस प्रकार का एक भाज्य किन्हीं भी दो पूर्णांकों के लिए प्राप्त करना संभव है।

साध्य के दूसरे भाग के अनुसार हम १३ को

१०७९ का + ७४१ खा = १३

रूप में व्यक्त कर सकते हैं।

इस समीकरण के रूप में १३ को व्यक्त करने के लिए ऊपर महत्तम समापवर्त्तक निकालने के लिए भाग की क्रिया में प्रयुक्त अंकों का सहारा लेते हैं।

सर्वप्रथम ऊपर भाग की क्रिया में हम १३ को दो पूर्णांकों के अंतर के रूप में देख सकते हैं :

१३ = ३३८ — ३२५

इसी से हमें यह भी ज्ञात होता है कि ३२५ संख्या ५ और ६५ का गुणनफल है। अतएव ३२५ को उसी रूप में रखकर निम्न समीकरण लिखा जा सकता है :

$$१३ = ३३८ — ५ \times ६५$$

अब देखिए ६५ स्वयं ७४१ और ६७६ का अंतर है।

इसलिए
$$१३ = ३३८ — ५ \times (७४१ — ६७६)$$
$$= ३३८ — ५ \times (७४१ — २ \times ३३८)$$
$$= ३३८ — ५ \times ७४१ + १० \times ३३८$$
$$= ११ \times ३३८ — ५ \times ७४१$$

अब ३३८ स्वयं १०७९—७४१ है।

इसलिए
$$१३ = ११ \times (१०७९ — ७४१) — ५ \times ७४१$$
$$= ११ \times १०७९ — ११ \times ७४१ — ५ \times ७४१$$
$$= ११ \times १०७९ — १६ \times ७४१$$

अतएव
$$११(१०७९) — १६(७४१) = १३$$

इस प्रकार ११ और —१६ दो पूर्णांक हमें प्राप्त हुए जिनके सहारे १०७९, ७४१ तथा १३ के संबंध को दर्शाते हुए एक समीकरण लिखा जा सकता है। यही इस प्रमेय के दूसरे भाग का आशय है।

एक अन्य उदाहरण भी लीजिए।

१६ और २७ दो ऐसी संख्याएँ हैं जिनमें कोई समान गुणन-खण्ड नहीं है। अर्थात् इनके विषय में ह = १ क्योंकि १ ही वह संख्या है जिसके द्वारा ये दोनों भाज्य हैं। इनके लिए १६, २७ और १ को निम्न समीकरण के रूप में व्यक्त किया जा सकता है :

$$१६\text{का} + २७\text{खा} = १$$

ऊपर बताई रीति से 'का' और 'खा' का मान निकाला जा सकता है और पूर्णांक रूप में इस समीकरण का निम्न रूप होगा :

$$११(१६) — ७(२७) = १$$

जब दो संख्याओं में कोई समान गुणन-खण्ड नहीं होते तब इस संख्या युग्म (जैसे १६ और २७) को हम संयुग्मी-अभाज्य संख्या कहते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि दो संख्याओं के संयुग्मी-अभाज्य होने के कारण उन दोनों संख्याओं का रूढ़ होना आवश्यक नहीं है—१६ और २७ दोनों ही भाज्य संख्याएँ हैं।

यदि 'क' और 'ख' दोनों ही अभाज्य संख्याएँ हैं तो वे निश्चित ही संयुग्मी-अभाज्य भी होंगी अर्थात्

$$\text{क का} + \text{ख खा} = १$$

उपर्युक्त प्रमेय की उपपत्ति अत्यंत सरल है और उसे यहाँ देने की आवश्यकता

प्रतीत नहीं होती। यह प्रमेय यूक्लिद एलोगरिथम कहलाता है। यह एलोगरिथम वास्तव में गणित की एक महत्त्वपूर्ण शाखा की आधारशिला है।

दो भिन्न संख्याओं को जोड़ना गणित की एक अत्यंत सरल क्रिया है:

$\frac{१}{४}+\frac{२}{१५}$ का मान निकालने के लिए हमें निम्न रीति अपनानी होती है:

$$\frac{१}{४}+\frac{२}{१५}=\frac{१\times१५+२\times४}{४\times१५}=\frac{१५+८}{६०}=२३$$

परंतु यदि इसके विपरीत हमसे यह कहा जाए कि $\frac{२३}{६०}$ एक संख्या दी हुई है और उसे ऐसी ऐसी दो भिन्नों के योग के रूप में लिखना है जिनका हर ४ और १५ है तो हमें अनुमान और परीक्षण के सिवाय कोई मार्ग उपलब्ध प्रतीत नहीं होता है। परंतु इस समस्या के हल में यूक्लिद एलोगरिथम सहायक होता है।

४ और १५ संयुग्मी-अभाज्य हैं और उनकी महत्तम क्रिया निम्न प्रकार होगी:

```
४)१५(३
  १२
  ३)४(१
    ३
    १
```

इसलिए संख्या १ को हम १५ और ४ के गुणनों के योग रूप में लिख सकते हैं।

$$१=४-३=४-(१५-१२)=४-(१५-४\times३)=४\times४-१५$$

इस संबंध के आधार पर सर्वप्रथम हम $\frac{१}{६०}$ को ऐसी दो भिन्नों के रूप में लिख सकते हैं जिनका हर ४ और १५ हो:

$$\frac{१}{६०}=\frac{४\times४-१५}{६०}=\frac{४\times४}{६०}-\frac{१५}{६०}=\frac{४}{१५}-\frac{१}{४}$$

अब इच्छित संख्या $\frac{२३}{६०}$ को प्राप्त करने के लिए $\frac{१}{६०}$ में २३ से गुणा कर सकते हैं:

$$\frac{२३}{६०}=\frac{४\times२३}{१५}-\frac{२३}{४}=\frac{९२}{१५}-\frac{२३}{४}=६\frac{२}{१५}-५\frac{३}{४}$$

$$=६+\frac{२}{१५}-५-\frac{३}{४}=\frac{२}{१५}+१-\frac{३}{४}=\frac{२}{१५}+\frac{१}{४}$$

इस प्रक्रिया से $\frac{२३}{६०}$ से चलकर मूल संख्याओं पर आ गए। इस संख्या में $\frac{२}{१५}$ को यदि पुनः हम दो भिन्न संख्याओं के रूप में प्रस्तुत करना चाहें जिनके हर ३ और ५ हों तो इसी प्रकार की पद्धति अपना सकते हैं।

```
३)५(१
  ३
  २)३(१
    २
    १
```

$$१ = ३ - २ = ३ - (५ - ३) = २ \times ३ - ५$$

$$\frac{१}{१५} = \frac{२}{५} - \frac{१}{३}$$

$$\frac{२}{१५} = \frac{४}{५} - \frac{२}{३}$$

$$\frac{२३}{६०} = \frac{४}{५} + \frac{१}{४} - \frac{२}{३}$$

एक भिन्न को अनेक भिन्नों के योग के रूप में प्रस्तुत करने की समस्या बहुत समय से चली आ रही है। जैसा हम एक बार उल्लेख कर चुके हैं कि चार हज़ार वर्ष पूर्व मिस्र में भिन्नों को एकांश भिन्नों के रूप में लिखने का प्रचलन था। रीण्ड पापीरस में $\frac{२}{३}$, $\frac{२}{५}$, . . . $\frac{२}{१०१}$ तक के सभी भिन्नों को एकांश रूप में परिवर्त्तित करने की तालिका थी। उदाहरणार्थ $\frac{२}{६१}$ को उसमें $\frac{१}{४०}$, $\frac{१}{२४४}$, $\frac{१}{४८८}$, $\frac{१}{६१०}$ लिखा हुआ है। उस समय + चिह्न का प्रयोग नहीं होता था।

नारायण रचित गणित कौमुदी में महावीर द्वारा किसी भी भिन्न को एक से अधिक एकांशक भिन्नों के रूप में परिवर्त्तित करने के नियम दिए गए हैं। '१' को 'न' एकांशक भिन्न के रूप में परिवर्त्तित करने का नियम उल्लेखनीय है :

'वहुत-सी एकांशक भिन्नों का योगफल १ होने पर, उन भिन्नों की हरें १ से प्रारंभ होकर क्रमशः ३ के अनुपात में बढ़ने वाली संख्याएँ होंगी, जिनमें से प्रथम और अंतिम क्रमशः २ और $\frac{२}{३}$ से भी गुणित होंगी।'

अर्थात् पहले तो कुछ एकांशक भिन्नें १, ३, $३^२$, $३^३$, . . . हरों वाली भिन्नों के रूप में लिखिए। मान लीजिए कि हमने उन्हें इस प्रकार लिखा है :

$$\frac{१}{१}, \frac{१}{३}, \frac{१}{३^२}, \frac{१}{३^३}, \frac{१}{३^४}, \frac{१}{३^५}, \frac{१}{३^६}$$

अव दिए नियम के अनुसार पहली भिन्न के हर को २ से गुणा करिए अर्थात् $\frac{१}{१}$ के स्थान पर $\frac{१}{२}$ लिखिए। अंतिम भिन्न के हर को $\frac{२}{३}$ से गुणा कीजिए अर्थात् $\frac{१}{३^६}$ के स्थान पर

$$\frac{१}{३^६ \times \frac{२}{३}} = \frac{१}{२ \times ३^५}$$

इस प्रकार $१ = \frac{१}{२} + \frac{१}{३} + \frac{१}{३^२} + \frac{१}{३^३} + \frac{१}{३^४} + \frac{१}{३^५} + \frac{१}{२.३^५}$

इस नियम के अनुसार १ को कितनी ही एकांशिक भिन्नों के योग के रूप में लिखा जा सकता है, जैसे :

$$१=\frac{१}{२}+\frac{१}{२}$$
$$१=\frac{१}{२}+\frac{१}{३}+\frac{१}{६}$$
$$१=\frac{१}{२}+\frac{१}{३}+\frac{१}{९}+\frac{१}{१८}$$
$$१=\frac{१}{२}+\frac{१}{३}+\frac{१}{९}+\frac{१}{२७}+\frac{१}{५४}$$
$$१=\frac{१}{२}+\frac{१}{३}+\frac{१}{९}+\frac{१}{२७}+\frac{१}{८१}+\frac{१}{१६२}$$
$$१=\frac{१}{२}+\frac{१}{३}+\frac{१}{९}+\frac{१}{२७}+\frac{१}{८१}+\frac{१}{२४३}+\frac{१}{४८६}$$

$$१=\frac{१}{२}+\frac{१}{३}+\frac{१}{३^{२}}+\frac{१}{३^{३}}+ \quad \cdots \quad +\frac{१}{३^{न}}+\frac{१}{२\times ३^{न}}$$

किसी भी भिन्न को एकांशक भिन्नों के योग के रूप में व्यक्त करने का एक अन्य सूत्र भी उल्लेखनीय है :

'(दी हुई भिन्न के) हर में किसी ऐसी संख्या को जोड़ दो कि इस योगफल को भिन्न के अंश से भाग देने में शेष 'न' बचे। (इस प्रकार) भाग देने से प्राप्त लब्धि पहली एकांश भिन्न की हर है और इस हर तथा दी हुई संख्या (भिन्न) के हर द्वारा कल्पित संख्या को भाग देने से बनी संख्या शेष है। इस शेष पर वही क्रिया करने पर अन्य एकांश भिन्नों के हर भी प्राप्त होंगे।'

इस सूत्र को हम एक उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करेंगे। मान लीजिए कि $\frac{७}{९}$ भिन्नांक को एकांश भिन्न के रूप में लिखना है। सूत्र के अनुसार हर अर्थात् ९ में एक ऐसी संख्या जोड़ो जिससे उस योगफल में इस संख्या के अंश अर्थात् ७ का भाग चला जाए। स्पष्ट है

$$९+५=१४=७\times २$$

इस प्रकार यह कल्पित संख्या ५ हुई। योगफल १४ में ७ का २ बार भाग जाता है इसलिए २ पहली एकांशक संख्या का हर है अर्थात् पहली एकांशक संख्या $\frac{१}{२}$ है। शेष अब क्या है? उसके लिए कल्पित राशि ५ को अंश मानकर और पहली संख्या के हर २ और मूल संख्या के हर ७ के गुणनफल को हर मानकर जो संख्या बने, वही शेष है।
अर्थात्

$$\text{शेष}=\frac{\text{कल्पित संख्या}}{\text{मूल संख्या का हर}\times\text{पहली एकांश संख्या का हर}}$$

$$=\frac{५}{९\times २}$$

$$\text{शेष संख्या}\quad \frac{५}{२\times ९}=\frac{५}{१८}\ \text{हुई।}$$

$$\text{इस प्रकार}\quad \frac{७}{९}=\frac{१}{२}+\frac{५}{१८}$$

यही क्रिया फिर $\frac{५}{१८}$ के साथ करनी होगी। इस संख्या के लिए कल्पित संख्या २ होगी क्योंकि

$$१८ + २ = २० = ५ \times ४$$

दूसरी एकांशिक संख्या $= \frac{१}{४}$

शेष संख्या $= \frac{२}{१८ \times ४} = \frac{१}{३६}$

अतएव

$$\frac{७}{९} = \frac{१}{२} + \frac{१}{४} + \frac{१}{३६}$$

अध्याय १२

अंकगणित विनोद

संभवत: सभी समाजों में और सभी वर्गों में चाहे शिक्षा का स्तर कुछ भी क्यों न हो, सबसे प्रिय विनोद अंकगणित की समस्याओं का ही होता है। ये समस्याएँ न केवल मनोविनोद करती हैं, परंतु वे सभी लोगों को, चाहे उनका सामाजिक जीवन में कोई भी स्थान क्यों न हो, अपनी बौद्धिक क्षमता को आज़माने का मौक़ा भी देती हैं। छोटे से छोटे स्कूलों में छोटी-छोटी कक्षाओं के बालक भी कुछ समस्याओं में उलझे मिलते हैं। मस्तिष्क के विकास के लिए और स्वस्थ विनोद के लिए इससे अच्छा अन्य कोई साधन नहीं हो सकता है। इस अध्याय में हम सरल समस्याओं से प्रारंभ कर कुछ कठिन समस्याएँ भी प्रस्तुत करेंगे। उनमें से अधिकांश के समाधान यहाँ न देकर पुस्तक के अंत में देंगे जिससे जो उनका वास्तविक आनंद उठाना चाहें उसमें बाधा न पड़े।

कुछ व्यवस्था संबंधी समस्याएँ

समस्या १

बहुत ही अल्प आयु के बालकों में मिलने वाली कुछ समस्याएँ इस प्रकार हैं। संध्या समय स्वर्णिम आकाश में कलरव करते हुए एक पंक्ति में कुछ तीतर अपने घोंसलों की ओर लौट रहे हैं, उन्हें देखकर एक बालक कह उठता है :

तीतर के दो तीतर आगे
तीतर के दो तीतर पीछे
आगे तीतर पीछे तीतर बीच में तीतर।

तो बताइए कुल कितने तीतर हैं?

समस्या २

दियासलाई की तीन तीलियों को तीन बार में तोड़कर नौ टुकड़े कीजिए? प्रश्न सरल दिखाई पड़ता है पर कोशिश कीजिए।

समस्या ३

एक बटोही अपने साथ एक भेड़िया, एक बकरी और एक पान के पत्तों का गट्ठा लेकर गंगा के किनारे पहुँचा। वहाँ पहुँच कर वह पाता है कि एक बहुत छोटी-सी नाव पड़ी हुई है। उस नाव में एक बार में अपने साथ केवल एक ही चीज़ ले जा सकता है। उसके साथ दुर्भाग्यवश समस्या और भी विकट इसलिए है कि वह भेड़िया और बकरी को अथवा बकरी और पानों को एक साथ अकेला नहीं छोड़ सकता। बताइए वह किस प्रकार गंगा पार करे ?

इसी समस्या का एक और कठिन रूप भी है । तीन दंपति गंगा के किनारे आते हैं और उसे पार करना चाहते हैं। परंतु नाव बहुत छोटी है जो एक बार में केवल दो ही व्यक्तियों को ले जा सकती है। साथ ही सभी पति बड़े ईर्ष्यालु हैं और इसलिए गंगा पार करते समय कोई भी पत्नी किसी अन्य पुरुष की उपस्थिति में नहीं रहना चाहती जब तक कि स्वयं उसका पति भी उसके साथ न हो। किस प्रकार ये दंपति गंगा पार करें ?

इस समस्या का तो एक समाधान है परंतु यदि इसी प्रकार के चार या उससे अधिक दंपति हों तो उनके लिए गंगा पार करना असंभव होगा।

यदि हम भेड़िए के लिए भ, बकरी के लिए ब और पानों के गट्ठर के लिए प लिखें तो उस बटोही को निम्न प्रकार से गंगा पार करनी होगी :

० भ ब प
१ भ प ———→ ब —→ ब
२ भ प ←——— ब
३ प ———→ भ —→ भ ब
४ प ब ←——— ब —→ भ
५ ब ———→ प —→ भ प
६ ब ←——— भ प
७ ———→ ब भ ब प

यदि पुरुष के लिए प लिखें और महिला के लिए म तो तीन दंपति प$_1$म$_1$, प$_2$म$_2$, प$_3$म$_3$ उनकी गंगा पार करने की ममस्या का समाधान निम्न रूप से होगा :

० (प$_1$म$_1$) (प$_2$म$_2$) (प$_3$म$_3$)
१ (प$_2$म$_2$) (प$_3$म$_3$) ———→ (प$_1$म$_1$) ———→ (प$_1$म$_1$)
२ प$_1$ (प$_2$म$_2$) (प$_3$म$_3$) ←——— प$_1$ ←——— म$_1$
३ प$_1$ म$_2$ प$_3$ ———→ म$_2$म$_3$ ———→ म$_1$ म$_2$ म$_3$
४ प$_1$ प$_2$ (प$_3$म$_3$) ←——— म$_3$ ←——— म$_1$ म$_2$
५ (प$_3$म$_3$) ———→ प$_1$ प$_2$ ———→ (प$_1$म$_1$) (प$_2$म$_2$)
६ (प$_2$म$_2$) (प$_3$म$_3$) ←——— प$_2$म$_2$ ←——— (प$_1$म$_1$)
७ म$_2$ म$_3$ ———→ प$_2$ प$_3$ ———→ (प$_1$म$_1$) प$_2$ प$_3$

८	म$_1$ म$_2$ म$_3$	←—	म$_1$	←—	प$_1$ प$_2$ प$_3$
९	म$_3$	—→	प$_1$ म$_2$	—→	(प$_1$म$_1$) (प$_2$म$_2$) प$_3$
१०	(प$_3$ म$_3$)	←—	प$_3$	←—	(प$_1$म$_1$) प$_2$ प$_3$
११	—	—→	(प$_2$ म$_3$)	—→	(प$_1$म$_1$) (प$_2$म$_2$) (प$_3$प$_3$)

समस्या ४

तीन मित्र थे गोपाल, गोविन्द और गोकुल। इन तीनों में से प्रत्येक दो व्यवसाय करता था। वे सब निम्न छः व्यवसाय करते थे—पहलवानी, अध्यापन, संगीत, चित्रकला, माली और नाई। कौन क्या करता था, यह हमें नही मालूम। उनके जीवन से संबंधित निम्न-लिखित तथ्य हैं :

१. पहलवान संगीतज्ञ के बड़े बालों पर छींटे कसता है।
२. संगीतज्ञ और माली दोनों ही गोपाल के साथ गंगा पर बहार करने जाया करते थे।
३. चित्रकार कभी-कभी अध्यापक से गणित पढ़ लिया करता था।
४. पहलवान ने चित्रकार से अपना एक चित्र बनाने के लिए कहा था।
५. गोविन्द ने माली से कुछ फूल लाने को कहा था।
६. गोकुल ने गोविन्द और चित्रकार दोनों को विदेश से लौटने पर सुंदर भेंट दी थी।

उन सबके व्यवसाय बताइए।

समस्या ५

यद्यपि मन और सेर के वज़न अब नहीं चलते हैं, पर उनसे संबंधित एक सुंदर समस्या है—एक पंसारी को १ सेर से लेकर ४० सेर तक सभी वज़नों को तौलने के लिए कम से कम वज़न वाले कम से कम कितने बाट रखने चाहिए ?

समस्या ६

दो बराबर के गिलास रख हुए हैं—एक में पानी है, दूसरे में दूध। दोनों में पानी और दूध की मात्रा भी बराबर है। अब यदि दूध वाले गिलास में से एक चम्मच दूध पानी के गिलास में डाल दें और उसे खूब मिला दें। फिर इस पानी वाले गिलास में से एक चम्मच (दूध और पानी का) दूध मिश्रण वाले गिलास में डाल दें। तो बताइए कि दूध वाले गिलास में शेष दूध की मात्रा पानी वाले गिलास में शेष पानी की मात्रा से अधिक होगी या कम ?

समस्या ७

निम्न समस्या कुछ आवश्यकता से अधिक कठिन है। कभी-कभी महीनों का प्रयास भी सफलता प्राप्ति के लिए पर्याप्त नहीं होता। हल तभी देखिए जब आप पूरी तौर से हार मान लें।

संगमरमर की १२ गेंदें हैं जो देखने में बिलकुल हूबहू एक-सी हैं—किसी प्रकार का अंतर नहीं है। इनमें से एक गेंद के बनाने में अलबत्ता कुछ त्रुटि आ गई है। इसलिए यद्यपि ऊपर से तो वैसी ही है, पर अन्य गेंदों की अपेक्षा संभवतः भारी है या हलकी। एक तराज़ू पास रखा हुआ है, पर कोई बाट नहीं है। तीन बार तौलान करके इस त्रुटिपूर्ण गेंद को अलग करना है और यह भी बताना है कि वह भारी है या हलकी? ध्यान रहे कि एक बार तौल का अर्थ है कि हम कितनी गेंदें भी दोनों पलड़ों में रख कर तौल सकते हैं। परंतु यदि उसके बाद कुछ अदला-बदली या गेंदों में कुछ अन्य परिवर्त्तन करके फिर तराज़ू उठाएँ तो वह दूसरा तौलान माना जाएगा।

दशाधारी संख्या पद्धति के कुछ विशेष गुणों के आधार पर कई मनोरंजक तथा उपयोगी समस्याएँ प्रस्तुत होती रहती हैं। उनमें से सबसे साधारण है अंकों को जोड़ कर गुणा को जाँचना।

१२३४ × ५६७८ = ७००६६५२ पर विचार कीजिए। हमें मालूम करना है कि यह गुणा ठीक हुआ है अथवा नहीं। गुणक, गुण्य और गुणनफल सभी के अंकों को अलग-अलग जोड़ लीजिए। १ + २ + ३ + ४ = १०, ५ + ६ + ७ + ८ = २६, ७ + ० + ० + ६ + ६ + ५ + २ = २६। अब चूँकि तीनों योगफल १०, २६, २६ सभी ९ से अधिक हैं इसलिए उनके अंकों को फिर से जोड़ लीजिए। १ + ० = १, २ + ६ = ८, २ + ६ = ८। (यदि इसके बाद भी किसी का जोड़ ९ से अधिक होता तो उसके अंकों को भी जोड़ लेते)। अब इन गुणक और गुण्य के अंतिम योगफलों का गुणा कीजिए और इसको गुणनफल के अंकों के अंतिम योगफल से तुलना कीजिए। इस उदाहरण में १ × ८ = ८ स्पष्ट है। इसलिए मूल गुणनफल ठीक है।

इसी नियम से हम निम्न गुणन को जाँचना चाहेंगे :

३१२५६
८४२७

२६३३९५३१२

गुण्य के अंकों का योग ३ + १ + २ + ५ + ६ = १७; १ + ७ = ८
गुणक के अंकों का योग ८ + ४ + २ + ७ = २१; २ + १ = ३
गुणनफलों के अंकों का योग २ + ६ + ३ + ३ + ९ + ५ + ३ + १ + २ = ३४
३ + ४ = ७

अब गुण्य और गुणक के अंतिम योगफलों का गुणा करें तो ८ × ३ = २४ और

२४ के अंकों का योग २ + ४ = ६ है। परंतु गुणनफल के अंकों का योग ७ है। इसलिए यह गुणन अशुद्ध है।

इन संख्याओं का एक अन्य गुण देखिए। हम कोई भी संख्या ले लें और फिर उसके अंकों को किसी भी और क्रम में लिख कर एक अन्य संख्या बना लें। इन दोनों संख्याओं का अंतर सदा ही ९ से भाज्य होगा।

उदाहरण के लिए देखिए:

```
  ८७६३१२४५
  ३१२५४६८७
  ─────────
  ५६३७६५५८
```

शेष ५६३७६५५८ के अंकों का योगफल ४५ है जो ९ से भाज्य है। इसलिए पूरी शेष संख्या ९ से भाज्य है।

दशाधारी संख्या के गुणों के आधार पर कुछ ऐसी संख्याएँ भी मिलती हैं जिनमें कुछ पूर्णांकों द्वारा गुणा करने पर गुणनफल एक ऐसी संख्या होती है जो उसके अंकों को उलटे क्रम में रखने से बनती है। उदाहरण के लिए:

```
  २१७८        १०८९
     ४           ९
  ────        ────
  ८७१२        ९८०१
```

संख्या के इन्हीं गुणों के आधार पर किसी के मन की बात बताने वाली छोटी-मोटी पहेलियाँ भी हैं। उनमें हमसे कोई संख्या मान लेने के लिए कहा जाता है। तत्पश्चात् उसमें कुछ गणितीय क्रियाएँ जैसे कुछ अंक जोड़ना, घटाना या कुछ अंकों से गुणा देना, भाग देना इत्यादि करने को कहा जाता है। अंतिम फल हमसे बिना कुछ इंगित पाए हुए बता दिया जाता है। आइए, कुछ इस प्रकार के खेलों का विश्लेषण करें:

पाठक अपनी उम्र (पूरे वर्षों में) सोच लें। उसे २ से गुणा करें। गुणनफल में ५ जोड़ दें। इस योगफल में फिर ५० का गुणा कर दें। इसमें अपने जेब में पड़े पैसों की संख्या (१०० से छोटी कोई संख्या) और जोड़ दें। योगफल में से एक वर्ष के दिन (३६५) घटा दें। यदि अब आप शेष संख्या को बता दें तो आपकी अपनी उम्र और जेब के पैसे फ़ौरन बताए जा सकते हैं।

मान लीजिए आपकी उम्र ३२ साल है और आपकी जेब में ८७ पैसे पड़े हैं। देखिए बताए अनुसार क्रिया से क्या प्राप्त होगा?

आपकी उम्र	३२
२ का गुणा कीजिए	×२
	६४
५ जोड़िए	५
	६९
५० का गुणा कीजिए	५०
	३४५०
जेब के ८७ पैसे जोड़िए	८७
	३५३७
वर्ष के दिन घटाइए	३६५
	३१७२

आपका उत्तर आया ३१७२ जिसका आपकी उम्र या जेब के पैसों से कोई संबंध नहीं प्रतीत होता है। परंतु प्रश्न करने वाला गणित जानता है। जैसे ही आप यह संख्या बताएँगे, वह उसमें ११५ जोड़ देगा। देखिए, क्या होता है।

$$३१७२ + ११५ = ३२८७$$

इस संख्या के पहले दो अंक (३२) आपकी उम्र बताते हैं और अंतिम दो (८७) आपकी जेब के पैसे।

आप चाहे जिन दो अंकों वाली दो संख्याओं को लेकर चलें, अंतिम फल में ११५ जोड़ने से दोनों अज्ञात संख्याएँ प्राप्त हो जाती हैं। यही सूत्र प्रश्नकर्त्ता को मालूम है, इसीलिए वह अपने को सिद्ध पुरुष सिद्ध कर देता है।

आप कोई तीन अंकों की संख्या ले लीजिए परंतु उसमें सैकड़े और इकाई के अंक बराबर नहीं होने चाहिए। इन तीनों अंकों को उलट कर एक नई संख्या बनाइए। इन दोनों में बड़ी में से छोटी संख्या घटाइए। जो शेष आए, उस तीन अंक वाली संख्या को फिर उलट दीजिए। शेष और इस नई संख्या को जोड़ लीजिए। आपने प्रारंभ में कोई भी संख्या क्यों न ली हो, अंतिम योगफल १०८९ होगा। प्रश्नकर्त्ता बिना आपसे पूछे यह फल बता सकता है। उदाहरण के लिए:

इच्छित संख्या	५७२	७७३
उलटी संख्या	२७५	३७७
शेष	२९७	३९६
शेष का उलटा	७९२	६९३
योग	१०८९	१०८९

एक समस्या और देखिए। इसका हल अभाज्य संख्याओं के कुछ गुणों पर निर्भर करता है।

३ से बड़ी कोई भी अभाज्य संख्या ले लीजिए। उसका वर्ग कर दीजिए। वर्ग में १७ जोड़ दीजिए। गुणनफल को १२ से भाग दे दीजिए। शेष सदा ही ६ बचेगा। उदाहरणार्थ :

अभाज्य संख्या	११	१९
उसका वर्ग	१२१	३६१
१७ जोड़िए	१७	१७
	१३८	३७८

१२ से भाग दीजिए

```
१२) १३८ (११        १२) ३७८ (३१
    १२                 ३६
    --                 --
     १८                 १८
     १२                 १२
     --                 --
      ६ शेष              ६ शेष
```

इसका राज़ ३ से बड़ी अभाज्य संख्या का ६न ± १ रूप का होना है। ६ शेष का संबंध १७ से है। केवल १२ जोड़ने पर शेष १, १३ जोड़ने पर शेष २, . . . १७ जोड़ने पर ६, १८ जोड़ने पर ७, . . . । प्रश्न करने वाला यह जोड़ने वाली संख्या घटा-बढ़ा कर सही शेष बता कर और भी चकित कर देगा।

नीचे कुछ समस्याएँ संख्याओं के गुणा और भाग संबंधी भी दी जा रही हैं जिनमें कुछ अंक वर्षा या अन्य किन्हीं कारणों से मिट गए हैं। अन्य दिए हुए अंकों और स्थान मान के सिद्धांतों का उपयोग करके इन अंकों की पुनः स्थापना करना है। इनके लिए कोई गणितीय नियम नहीं प्रस्तुत किया जा सकता है। इनमें अनुमान और परीक्षण तथा तर्क का उपयोग करना होता है। . . . का अर्थ है कि उस स्थान का अंक मिट गया है।

समस्या ८

```
 .१. . .
   ४१७
-------
९. . .५७
```

समस्या ९

एक पुरानी भारतीय भाग संबंधी समस्या देखिए :

```
...)......(...
    .०..
   ------
    ....
    .५०.
   ------
      ...
      .४.
     ----
```

समस्या १०

समस्या ९ से थोड़ी कठिन निम्न समस्या है। एक सात अंक वाली संख्या को एक छः अंकों वाली संख्या से भाग देने से भजनफल में दो पूर्णांकों तथा दस दशमलव अंकों की संख्या आती है। दशमलव के अंतिम नौ अंक आवर्त्त दशमलव हैं। आवर्त्त दशमलवों के ऊपर एक रेखा खींच दी गई है। इस समस्या में विशेष बात यह है कि एक भी अंक नहीं दिया हुआ है।

```
                               _________
......).......(...........
       ......
      --------
       .......
        ......
       --------
        .......
        .......
         --------
         .......
          ......
          --------
          .......
          .......
          --------
           .......
           .......
           --------
             .......
             .......
             --------
              .......
              .......
              -----------
                   ......
                   ......
                   --------
                   ......
```

समस्या ११

निम्न समस्या इससे भी कठिन है। इसमें सात '७' को छोड़ कर और सभी अंक मिट गए हैं। अन्य अंक ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, या ९ कोई भी हो सकते हैं; हाँ, शून्य किसी संख्या का पहला अंक नहीं हो सकता क्योंकि यहाँ उसका कोई मूल्य नहीं होता।

समस्या १२

इसी प्रकार दो समस्याएँ चार '४' तथा पाँच '५' लेकर बनाई गई हैं :

```
...) ......४(.४..
     ...
     ---
     ..४.
     ....
     ----
       ....
        .४.
      -----
        ....
        ....
      -----
```

इस समस्या के चार हल हैं। यदि इसी को निम्न रूप में एक और ४ मिला कर लिखा जाए तो एक ही हल होगा :

```
...)......४(.४...
   ...
   ------
   ..४.
   ...४
   ------
    ....
    .४.
   ------
     ....
     ....
   ------
```

समस्या १३

पाँच '५' की समस्या निम्नांकित है :

```
....).५५..५.(.५.
     ..५..
     ------
     .....
     .....
     ------
      ....
      ....
     ------
```

इस समस्या का एक ही हल है।

अब कुछ अनंत श्रेणियों के करिश्मे भी देखिए :

मान लीजिए निम्न श्रेणी दी हुई है :

$$१-२+४-८+१६-३२+६४-१२८+\ldots$$

अर्थात् इस श्रेणी का प्रत्येक पद दूना होता जाता है तथा एक पद धनात्मक है और एक ऋणात्मक। इस श्रेणी का योग य मान लीजिए।

$$य=१-२+४-८+१६-३२+६४-\ldots$$

अथवा $य=१-(२-४+८-१६+३२-६४+\ldots)$

अथवा $य=१-२(१-२+४-८+१६-३२+\ldots)$

दाहिनी ओर कोष्ठक में मूल श्रेणी ही है इसलिए उसके स्थान पर य लिखा जा सकता है।

इसलिए $य=१-२य$

अथवा $३य=१$ $\qquad य=\frac{१}{३}$

दूसरी ओर हम मूल श्रेणी को निम्न प्रकार भी लिख सकते हैं :

$$\text{य} = १ + (-२ + ४) + (-८ + १६) + (-३२ + ६४) + \ldots$$
$$= १ + २ + ८ + ३२ + ६४ + \ldots$$

अर्थात् य का योग $+\infty$ अनंत हुआ।

परंतु फिर यदि हम उसी श्रेणी को निम्न भाँति लिखें :

$$\text{य} = (१ - २) + (४ - ८) + (१६ - ३२) + (६४ - १२८) + \ldots$$
$$= -१ - ४ - १६ - ६४ - १२८ - \ldots$$

अथवा य का योग $-\infty$ (ऋणात्मक अनंत) है। इस प्रकार एक ओर य एक निश्चित् संख्या है, तो दूसरी ओर वह अनंत है—कभी धनात्मक और कभी ऋणात्मक।

अनंत श्रेणी के इन सभी भिन्न मानों का कारण क्या है? इसका कारण है हमारा अनंत के संबंध में सान्त गणित का प्रयोग करना। अनंत की गुत्थी को यदि हम अध्याय ६ में समझ गए हैं तो हमारे लिए यह कोई अचंभे की बात नहीं है। इस श्रेणी में न केवल प्रत्येक पद अनंत होता जाता है वरन् उसका चिह्न $+-$ बदलता जाता है। इसलिए यदि हम उसके सम पदों पर विचार करेंगे तो फल कुछ पाएँगे, विषम पदों पर विचार करेंगे तो फल कुछ और। इस प्रकार की श्रेणियों का साधारण रूप से जिस अर्थ में हम संख्याओं का योग करते हैं, उस रूप में योग हो ही नहीं सकता।

एक अन्य उदाहरण देखिए।

$$\text{य} = १ - \frac{१}{२} + \frac{१}{३} - \frac{१}{४} + \frac{१}{५} - \ldots$$

इसके यदि धन और ऋण संख्याओं को अलग लिख लें तो क्या पाएँगे?

$$\text{य} = \left(१ + \frac{१}{३} + \frac{१}{५} + \frac{१}{७} + \ldots\right) - \left(\frac{१}{२} + \frac{३}{४} + \frac{१}{६} + \frac{१}{८} + \ldots\right)$$

हम निश्चय ही कह सकते हैं कि

$$० = \left(\frac{१}{२} + \frac{१}{४} + \frac{१}{६} + \ldots\right) - \left(\frac{१}{२} + \frac{१}{४} + \frac{१}{६} + \frac{१}{८} + \ldots\right)$$

इसे य में जोड़ दीजिए। पहले कोष्ठक को उसके पहले कोष्ठक में दूसरे को उसके दूसरे कोष्ठक में। जोड़ने पर हमें निम्न फल प्राप्त होगा

$$\text{य} = \left(१ + \frac{१}{३} + \frac{१}{५} + \ldots\right) + \left(\frac{१}{२} + \frac{१}{४} + \frac{१}{६} + \frac{१}{८} + \ldots\right)$$
$$- २\left(\frac{१}{२} + \frac{१}{४} + \frac{१}{६} + \frac{१}{८} + \ldots\right)$$

यदि पहले कोष्ठक के पदों को तरतीब में लगा दें तो

$$\text{य} = \left(१ + \frac{१}{२} + \frac{१}{३} + \frac{१}{४} + \ldots\right) - \left(१ + \frac{१}{२} + \frac{१}{३} + \frac{१}{४} + \ldots\right)$$

परंतु निश्चय ही य का मान शून्य नहीं है। वास्तव में

$$१ - \frac{१}{२} + \frac{१}{३} - \frac{१}{४} + \frac{२}{५} - \ldots = .६९३१४७\ldots$$ अर्थात् $\frac{१}{२}$ से
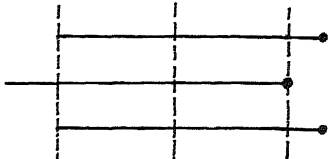
अधिक पर १ से कम है।

इस अविश्वसनीय फल के लिए भी मूल कारण $१ + \frac{१}{२} + \frac{१}{३} + \ldots$ श्रेणी के चरित्र में निहित है। इस श्रेणी का योगफल अनंत है। इसलिए $\left(\frac{१}{२} + \frac{१}{४} + \frac{१}{६} + \ldots\right) - \left(\frac{१}{२} + \frac{१}{४} + \frac{१}{६} + \ldots\right) = ०$ लिखने का अर्थ $\infty - \infty = ०$ लिखना हुआ। $\infty - \infty$ का क्या मान है, यह हम नहीं कह सकते।

सान्त गणित का उपयोग हम अनन्त संख्याओं पर नहीं कर सकते, क्योंकि 'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशियते'।

समाधान

१. केवल तीन तीतर हैं। अंतिम तीतर के आगे दो तीतर हैं, पहले तीतर के पीछे दो तीतर हैं, बीच वाले तीतर के आगे एक तीतर है पीछे एक तीतर है और बीच में भी एक तीतर है।

२. तीन तीलियों को चित्र में दिए अनुसार व्यवस्थित कीजिए और ---- चिह्नों पर तीन बार तोड़िए तो तीन बार तोड़ने में ९ टुकड़े प्राप्त होंगे।

४. गोपाल—चित्रकार व नाई
गोविन्द—अध्यापक व संगीतज्ञ
गोकुल—माली व पहलवान

५. १, ३, ९ और २७

६. बराबर

७. अंत में देखिए

८. २१,९२१ × ४१७ = ९१,४१,०५७

९. इसका एक ही हल है—भाजक २१५, भजनफल ५७३

१०. भाजक ६,६७,३३४; भाज्य ७७,५२,३४१

११. हल एक ही है—भाजक १,२५,४७३ और भजनफल—५८,७८१

१२. भाजक और भजनफल के ये चार युग्म होंगे ८४६, १४१९; ८४८, १४१८; ९४३, १४१८; ९४९, १४१६। दूसरी समस्या का हल होगा ८४६, १४१९

१३. भाज्य ३,९२६; भजनफल ६५२

समस्या ७ का हल

इस समस्या के हल में दो मुख्य चरण हैं। पहला है कि कितनी गेंदें दोनों पलड़ों में रख कर तौली जाएँ। पहले प्रवृत्ति तीन-तीन या छः-छः करके तौल करने की होती है। इसके हल के लिए हमें चार-चार गेंदें लेनी होंगी। सहूलियत के लिए दो पलड़ों को हम य और र नाम से पुकारेंगे।

पहली तौल : सबसे पहले कोई भी चार गेंदें एक पलड़े में रख लीजिए और

कोई भी अन्य चार गेंदें दूसरे पलड़े में। जब हम इन्हें तौलने के लिए उठाएँगे तो दो स्थितियाँ हो सकती हैं— (क) दोनों पलड़ों का वज़न समान हो, अथवा (ख) दोनों पलड़ों का वज़न असमान हो।

यहाँ पहली तौल समाप्त हुई, पर इसके बाद इन दोनों स्थितियों का विवेचन अलग-अलग करना होगा।

स्थिति (क) —जब प्रथम तौलान में पलड़े बराबर हों

दूसरी तौल : चूँकि दोनों पलड़े बराबर हैं, इसलिए त्रुटिपूर्ण गेंद इन आठ गेंदों में नहीं है और तुली हुई आठों गेंदें समान वज़न वाली हैं। इन गेंदों को उतार कर एक ओर रख दीजिए।

दूसरी तौल के लिए एक पलड़े य में इन आठ समान गेंदों में से कोई भी तीन गेंदें रख लीजिए। दूसरे पलड़े र में जो शेष चार गेंद अभी तक नहीं तुली हैं, उनमें से कोई भी तीन गेंदें रख लीजिए। इसके बाद उन्हें तौलिए।

यह दूसरी तौल होगी। पर इस तौल में तीन स्थितियाँ हो सकती हैं।

(क१) दोनों पलड़े समान हों;

(क२) पलड़ा र भारी हो; अथवा

(क३) पलड़ा र हलका हो।

अब तीसरी तौल में इन तीनों स्थितियों की संभावना को ध्यान में रखना होगा।

तीसरी तौल : **स्थिति (क१)**—यदि दोनों पलड़े समान हैं तो त्रुटिपूर्ण गेंद त्र दूसरी ढेरी में से बची चौथी गेंद ही होगी क्योंकि जो ११ गेंदें अब तक पलड़ों पर तौली जा चुकी हैं, वे तो समान हैं। इस प्रकार इस स्थिति में त्र गेंद तो अपने आप छट गई।

परंतु अभी यह जानना शेष है कि यह बची हुई त्रुटिपूर्ण गेंद भारी है या हल्की। इसके लिए तीसरी तौल की आवश्यकता होगी। दूसरी तौल में जो ६ गेंदें पलड़ों में हैं, उन्हें निकाल दीजिए। और समान गेंदों के ढेर में रख दीजिए। इस प्रकार एक तो ११ गेंदों का ढेर हो जाएगा जिसमें सभी गेंदें समान हैं।

तीसरी तौल के लिए एक पलड़े में अंतिम शेष गेंद को रखिए और दूसरी में ग्यारह समान गेंदों में से कोई एक। तौल करते ही हमें मालूम हो जाएगा कि त्र गेंद भारी है या हल्की। इस प्रकार इस स्थिति में समस्या का पूरा हल प्राप्त हो गया।

स्थिति (क२)—इस स्थिति में तीन नई गेंदें र पलड़े में रखी गई थीं और र पलड़ा भारी निकला। क्योंकि य पलड़े में हमने समान गेंदें रखी थीं, इसलिए उनमें त्रुटिपूर्ण गेंद के होने का प्रश्न ही नहीं खड़ा होता, इसका अर्थ है कि त्र गेंद र पलड़े की तीन गेंदों में से एक है और वह भारी है।

य पलड़ की तीन समान गेंदें फिर समान गेंदों वाली ढेरी में डाल दीजिए। अब समस्या केवल र पलड़े में रखी तीन गेंदों में से त्र गेंद जो भारी है, उसे निकालना है। इसके लिए तीसरी तौल आवश्यक है।

यह एक सरल-सी क्रिया है पर तरकीब से काम करना होगा। इन तीनों गेंदों में से कोई भी एक गेंद एक पलड़े में कोई भी दूसरी गेंद दूसरे पलड़े में रख दीजिए। तीसरी गेंद को एक ओर अलग रख लीजिए। तराज़ू उठाइए—यदि पलड़ों में रखी दोनों गेंदें बराबर हैं तो त्रुटिपूर्ण गेंद अलग है और भारी है। यदि तराज़ू उठाने पर पलड़े असमान हैं तो त्र भारी होने से भारी पलड़े में ही मिलेगी।

इस प्रकार दोनों ही स्थितियों में त्र गेंद पहचान ली गई और यह भी ज्ञात हो गया कि वह भारी है।

स्थिति (क३)—यह स्थिति बिलकुल (क२) की तरह है। इसमें र पलड़ा हलका होता है। य पलड़े में समान गेंदें रखी हैं। इसलिए त्रुटिपूर्ण गेंद र में रखी तीन गेंदों में से एक है और वह हलकी है। इस गेंद को पहचानने के लिए जैसी स्थिति (क२) में तौल की, उसी प्रकार तौल करना होगा और समस्या हल हो जाएगी।

इस प्रकार (क) स्थिति में तीन तौलों में गेंद का भारी या हलका होना तथा उसे पहचानना सभी कार्य पूरे हो गए।

परंतु (क) एक विशेष स्थिति है जब कि पहली तौल में ही ऐसी आठ गेंदें आईं, जो सभी बराबर थीं। यह सबसे सरल स्थिति है। (ख) स्थिति उससे कहीं कठिन है। इसमें पहली तौल में ही दोनों पलड़े असमान थे। उस समय तक हमें त्र गेंद भारी है या हलकी, यह ज्ञात नहीं, इसलिए हम पहली तौल के बाद यह भी नहीं कह सकते कि वह भारी पलड़े वाली चार गेंदों में होगी या हलके पलड़े की चार गेंदों में? और अब केवल दो तौल हमारे पास शेष बची हैं। प्रतीत ऐसा होता है कि पहली तौल बेकार गई। परंतु यह सत्य नहीं है। यह अवश्य है कि स्थिति कठिन है। शब्दों में इसके समाधान का विवेचन लम्बा होगा और उतना बोधगम्य भी नहीं होगा, इसलिए हम संकेतों का उपयोग करेंगे।

स्थिति (ख)—पहली तौल में मान लीजिए पलड़ा य भारी है और पलड़ा र हलका है। इन दोनों में चार-चार गेंदें रखी हैं और भूमि पर चार गेंदें पड़ी हैं। हम इन चार-चार गेंदों के तीन समूहों को सुविधा के लिए अलग-अलग नाम देते हैं। भूमि पर पड़ी गेंदों में त्रुटिपूर्ण गेंद नहीं हो सकती, इसलिए स्पष्टतः ये चारों गेंदें समान वज़न वाली हैं उन्हें हम 'स' कहेंगे। भारी पलड़े वाली को 'भ' और हलके वाली को 'ह' कहेंगे।

इस प्रकार प्रथम तौल के अन्त में स्थिति निम्न प्रकार है :

य (भारी)	र (हलका)	धरती
$भ_१$, $भ_२$, $भ_३$, $भ_४$	$ह_१$, $ह_२$, $ह_३$, $ह_४$	$स_१$, $स_२$, $स_३$, $स_४$

दूसरी तौल : दूसरी तौल के लिए दो पलड़ों में गेंदों को निम्न प्रकार बदलिए :

(भारी पलड़े की कोई एक गेंद) $भ_४ \longrightarrow र$

$य \longleftarrow ह_४$ (हलकी पलड़े की कोई एक गेंद)

$ह_१ह_२ह_३ \longrightarrow$ धरती

$र \longleftarrow स_१स_२स_३$
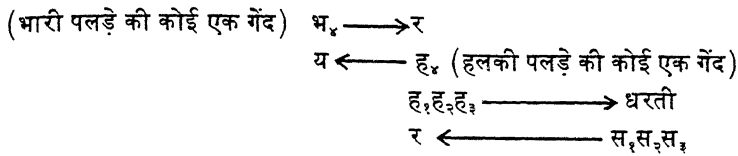
इस अदला-बदली के बाद दूसरी तौल करने के पूर्व स्थिति निम्न होगी :

य	र	ध
$भ_१, भ_२, भ_३, ह_४$	$स_१, स_२, स_३, भ_४$	$ह_१, ह_२, ह_३, स_४$

अब तराज़ू उठाइए। इस समय तीन स्थितियाँ संभव होंगी :

(ख१) य और र पलड़े बराबर होंगे।

(ख२) र पलड़ा हलका रहे जैसा कि पहली तौल के अन्त में था।

(ख३) र पलड़ा भारी हो जाए।

स्थिति (ख१)—यदि य और र बराबर हैं तो त्र गेंद के विषय में दो बातें स्पष्ट हैं—क्योंकि पलड़ों में इस समय रखी गेंदें समान हैं, इसलिए त्रुटिपूर्ण गेंद $ह_१, ह_२, ह_३$ जो तीन गेंदें हमने दूसरी तौल के पूर्व हलके पलड़े से निकाल कर धरती पर रखी थीं, उनमें से एक है। क्योंकि हलके पलड़े में वह थी इसलिए वज़न में वह औरों से हलकी है। इस प्रकार त्र की उपस्थिति को हमने तीन गेंदों के एक समूह में सीमित कर दिया और उसका हलके होने का गुण भी जान लिया। अब समस्या उसे $ह_१ह_२ह_३$ में से अलहदा करने की है जो ठीक वही स्थिति है जो (क३) की थी और उसे उसी प्रकार तीन गेंदों में से अलहदा किया जा सकता है।

स्थिति (ख२)—यदि पलड़ा र पहली तौल के अन्त जैसा हलका ही रहा तो इसका अर्थ है कि त्रुटिपूर्ण गेंद इन आठ गेंदों में से एक है। वह हलकी है या भारी यह अभी नहीं कहा जा सकता है। यदि त्र गेंद हलकी है तो हलके पलड़े 'र' में ही होनी चाहिए। परन्तु इस पलड़े में चार में से तीन गेंदें $स_१स_२स_३$ तो समान हैं क्योंकि उन्हें हम ज़मीन पर रखी चार समान गेंदों में से लाए हैं। चौथी गेंद $भ_४$ भारी पलड़े से लाई गई है इसलिए वह भी हलकी नहीं हो सकती। अर्थात् त्रुटिपूर्ण त्र का हलका होना संभव नहीं है।

तात्पर्य यह है कि त्र भारी है और य में रखी चार गेंदों में से एक होनी चाहिए। उन चार में से एक गेंद $ह_४$ हम पहली तौल के बाद हलके पलड़े से लाए थे। इसलिए वह गेंद भारी नहीं हो सकती। उसे हटा देने पर त्र अवश्य ही अन्य तीन गेंदों $भ_१$ $भ_२$ $भ_३$ में से एक है।

इस प्रकार हम पुनः इसकी तौल के बाद उस स्थिति पर आ गए जहाँ हमें गेंद का गुण (भारी होना) मालूम हो गया और उसकी उपस्थिति तीन गेंदों के समूह में निर्धारित हो गई। यह समस्या बिलकुल (क२) स्थिति के समान है और त्र गेंद अलहदा की जा सकती है।

स्थिति (**ख३**)—यदि दूसरी तौल में र पलड़ा जो पहली तौल में हलका था भारी पाया गया तो हमें इसके कारण का विश्लेषण करना होगा। र पलड़े में रखी चार गेंदों में से तीन ज़मीन पर से लाई गई हैं जो समान हैं। इसलिए उन तीन गेंदों $स_१$ $स_२$ $स_३$ के कारण तो वह भारी नहीं हो सकता। इसी प्रकार य पलड़े में रखी चार गेंदों में से तीन उसमें पहली तौल में थीं—$भ_१$ $भ_२$ $भ_३$। यदि इन तीनों में कोई त्रुटिपूर्ण गेंद होती तो वह अवश्य ही भारी होती और दूसरी तौल के बाद उस पलड़े को हलका नहीं होने देती। इसलिए त्रुटिपूर्ण गेंद $भ_१$ $भ_२$ $भ_३$ में से नहीं हो सकती है और इन तीनों गेंदों में से कोई भी उस पलड़े के हलके होने का कारण नहीं हो सकती है। इस प्रकार त्रुटिपूर्ण गेंद त्र न तो र पलड़े में तीन समान गेंदों $स_१$, $स_२$ $स_३$ में से हो सकती है और न ही य में $भ_१$ $भ_२$ $भ_३$ में से कोई। इसलिए उसे ढूँढ़ने के लिए हमें $स_१$ $स_२$ $स_३$ $भ_१$ $भ_२$ $भ_३$ के बाहर जाना होगा। पलड़ों में केवल दो गेंदें बची हैं $भ_४$ और $ह_४$, जिनकी हमने पहली तौल के बाद पलड़ों में अदला-बदली की थी। त्रुटिपूर्ण गेंद उन्हीं दो में से एक होगी।

इस प्रकार यह तो मालूम हो गया कि त्र इन दोनों ($भ_४$ $ह_४$) में से एक होगी, पर अभी यह नहीं ज्ञात हुआ कि वह कौन-सी है और भारी है या हलकी ? इसके लिए तीसरी तौल की आवश्यकता होगी।

तीसरी तौल : $स_१$ $स_२$ $स_३$ $भ_१$ $भ_२$ $भ_३$ सभी को धरती पर रख दीजिए। इस प्रकार धरती पर दस गेंदें हो गईं जो सभी समान हैं। दो शेष अभी पलड़ों पर हैं और उनमें से हमें एक तौल और करके त्र का पता लगाना है। समस्या नितान्त सरल है। इन दोनों में से किसी एक को भी धरती पर रखी दस समान गेंदों में से किसी एक के साथ तौल सकते हैं। मान लीजिए हम $ह_४$ को किसी समान गेंद से तौलते हैं। इसमें दो स्थितियाँ हो सकती हैं। पहली यह कि $ह_४$ इसके बराबर हो अर्थात् $ह_४$ भी एक सम गेंद है और त्रुटिपूर्ण गेंद त्र $भ_४$ है। निश्चय ही अन्य गेंदों से भारी है।

अथवा यदि तौलने पर $ह_४$ हलकी बैठती है तो वही स्वयं त्रुटिपूर्ण गेंद है और अन्य गेंदों से हलकी है। $ह_४$ भारी नहीं हो सकती।

इस प्रकार सभी स्थितियों में तीन तौलों में त्रुटिपूर्ण गेंद को अलहदा करना और उसका हलका या भारी होने के गुण को जानना संभव हो सका।

इस हल में दो महत्त्वपूर्ण सोपान हैं। प्रथम तो चार-चार गेंदों के समूह बनाना। उसके बाद उन्हें अदला-बदली कर तीन गेंदों के समूहों में बाँटना। तीन के समूह में से त्रुटिपूर्ण गेंद का गुण ज्ञात होने पर वह एक तौल में ही अलहदा की जा सकती है।

पस्तक में प्रयुक्त शब्दावली

१.	अंक-गणित	Arithmetic
२.	अंतः-प्रज्ञा	Intuition
३.	अंश	Numerator
४.	अणु	Molecule
५.	अतिकरणी	Ultra-radical
६.	अतिभाज्य संख्या	Highly Composite Number
७.	अतिमूलक	Ultra-radical
८.	अतिहीन	Highly Deficient Number
९.	अनुपयुक्त गणित	Applied Mathematics
१०.	अनंत	Infinity
११.	अनंत-अवरोह	Infinite Descent
१२.	अनंत श्रेणी	Infinite Series
१३.	अचर	Constant
१४.	अनामांकित विचारणा	Unnamed Thinking
१५.	अनावर्त	Non-recurring
१६.	अनावर्त सतत दशमलव	Non-recurring Continuous Decimal
१७.	जाँच और भूल सुधार विधि	Trial and Error
१८.	अपसारी श्रेणी	Divergent Series
१९.	अपरिगणनीय अनंत	Non-denumerable Infinity
२०.	अपरिमेय संख्या	Irrational Number
२१.	अपरिष्करण का सिद्धांत	Principle of Crudity
२२.	अबीजीय संख्या	Non-algebraic Number, Transcendented Number
२३.	अभाज्य (रूढ़)	Prime
२४.	अभिगृहीत	Postulate
२५.	अभिसरण	Convergence
२६.	अभिसारी श्रेणी	Convergent Series
२७.	अमूर्तीकरण	Abstraction

२८.	अरब संख्यांक	Arabic Numeral
२९.	अर्धमिति	Econometrics
३०.	अर्ध-व्यास	Radius
३१.	अवकलन गणित	Differential Calculus
३२.	अस्थायी	Instable
३३.	असंमेय	Incommensurable
३४.	अक्ष	Axis
३५.	आकाशगंगा	Milkyway
३६.	आकृति	Figure
३७.	आगम	Induction
३८.	आधार तत्त्व	Premise
३९.	आधार परिवर्त्तन	Change of Base
४०.	आधार संख्या	Base Number
४१.	आधुनिक गणित	Modern Mathematics
४२.	आपेक्षिकता संख्या	Relativity Number
४३.	आयताकार	Rectangular Number
४४.	आवर्त दशमलव	Recurring Decimal
४५.	उपपत्ति	Proof
४६.	ऊर्ध्वाधर	Vertical
४७.	एकांश भिन्न	Unit Fraction
४८.	एकैक संगति	One-one Correspondence
४९.	ऋणात्मक संख्या	Negative Number
५०.	कक्षा	Orbit
५१.	करणी	Surd, Radical
५२.	कर्ण	Hypotenuse
५३.	कलनगणित	Calculus
५४.	काल्पनिक संख्या	Imaginary Number
५५.	कोण	Angle
५६.	क्रम-अविनिमेय	Non-commulative
५७.	क्रम-गुणित	Factorial
५८.	क्रम-विनिमेय नियम	Commulative Law
५९.	क्षेत्र	Field
६०.	खगोल शास्त्र, खगोलिकी	Astronomy
६१.	गणना	Counting
६२.	गणना-संख्या	Counting Number
६३.	गणनीय अनंत	Denumerable Infinity

६४.	गणित	Mathematics
६५.	गणितज्ञ	Mathematician
६६.	गणितीय भौतिकी	Mathematical Physics
६७.	गुणक	Multiplier
६८.	गुणन-खंड	Factors
६९.	गुणा	Multiplication
७०.	गुण्य	Multiplicand
७१.	गुरुत्वाकर्षण	Gravitation
७२.	गूगल	Google $\left(10^{100}\right)$
७३.	गूगलप्लेक्स	Googleplex $\left(10^{10^{100}}\right)$
७४.	ग्रुप	Group
७५.	घन	Cube
७६.	घटाना	Substraction
७७.	घात	Power
७८.	घूर्णित	Rotated
७९.	चर	Variable
८०.	जाँच और भूल	Trial and Error
८१.	जोड़	Addition
८२.	ज्यामिति	Geometry
८३.	त्रिकोण	Triangle
८४.	त्रिकोणमिति	Trigonometry
८५.	त्रिकोणीय संख्या	Triangular Number
८६.	दशमलव	Decimal
८७.	द्रवगतिकी	Hydrodynamics
८८.	द्रव्यमान	Mass
८९.	द्वि-आधारी प्रणाली	Binary System
९०.	नर-संख्या	Male Numbers
९१.	निगमन	Deduction
९२.	नीहारिका	Nebula
९३.	पंक्ति	Row
९४.	पद	Term
९५.	परमशून्य	Absolute Zero
९६.	परिकलन	Calculation

९७	परिकलक,	Computer
९८.	परिगणनीय अनंत	Denumberable Infinity
९९.	परिधि	Circumference
१००.	परिपूर्ण संख्या	Perfect Number
१०१.	परिमेय संख्या	Rational Number
१०२.	पिण्ड	Bodies
१०३.	पिशाच माया वर्ग	Diabolic Magic Square
१०४.	पूर्णांक	Integers
१०५.	प्राकृतिक संख्याएँ	Natural Numbers
१०६.	प्रति चित्रण	Mapping
१०७.	प्रभूति संख्या	Abundant Number
१०८.	प्रमेय	Theorem
१०९.	प्रायिकता सिद्धांन्त (संभाव्यता सिद्धांत)	Theory of Probability
११०.	वल	Force
१११.	वहुगुण परिपूर्ण संख्या	Multiple Perfect Number
११२.	वीजगणित	Algebra
११३.	वीजीय संख्या	Algebraic Number
११४.	व्रह्मांड धूलि	Cosmic Dust
११५.	भाज्य	Divisible
११६.	भाग	Division
११७.	भिन्न	Fraction
११८.	भुजा	Side
११९.	भौतिक रसायन	Physical Chemistry
१२०.	मर्सेन संख्या	Mersenne Number
१२१.	मादा संख्या	Female Number
१२२.	माया-वर्ग	Magic Square
१२३.	मित्र संख्या	Amicable or Sympathetic Number
१२४.	राशि	Quantity
१२५.	रेखागणित	Geometry
१२६.	लंब रूप	Vertical
१२७.	लगभग	Approximate
१२८.	लघुखंड संख्या	Round Number
१२९.	वर्ग	Square
१३०.	वर्गमूल	Square root
१३१.	वर्गाकार	Square

१३२.	वर्गाभाज्य संख्या	Quadratfrei Number
१३३.	वास्तविक संख्या	Real Number
१३४.	विकर्ण	Hypotenuse
१३५.	विमा	Dimension
१३६.	व्यवकलन	Substraction
१३७.	व्यापकीकरण	Generalisation
१३८.	व्यास	Diameter
१३९.	शब्दांक	Word Number
१४०.	शुद्ध गणित	Pure Mathematics
१४१.	शुल्व-प्रमेय	Pythogorus Theorem
१४२.	संख्यांक	Numerals
१४३.	संख्या	Number
१४४.	संख्या सिद्धांत	Theory of Numbers
१४५.	संख्या-चिह्न	Number Symbol
१४६.	संख्या-बिंदु	Number Point
१४७.	संख्या संकेत	Number Signs
१४८.	संगत	Corresponding
१४९.	संगतता	Correspondence
१५०.	संगति	Harmony
१५१.	संयुग्मी अभाज्य	Conjugate Prime
१५२.	संवादी	Corresponding
१५३.	संवादिता	Correspondence
१५४.	सदिश विश्लेषण	Vector Analysis
१५५.	सन्निकट	Approximate
१५६.	सम्मिश्र संख्या	Complex Number
१५७.	सम	Even
१५८.	समकोण	Right Angle
१५९.	सममिति	Symmetry
१६०.	समद्विबाहु त्रिभुज	Isosceles Triangle
१६१.	समाकलन गणित	Integral Calculus
१६२.	समाधान	Solution
१६३.	समान गुणनखंड	Common Factor
१६४.	समापवर्तक	Common Measure
१६५.	समीकरण	Equation
१६६.	समुच्चय	Set
१६७.	सर्वविकर्ण	Pandiagonal